RNI : UPHIN/2008/30136

ISSN : 0974-0002

देश देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

वर्ष : 3 • अंक 5

कृतिका

जनवरी - जून 2010

साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका

इंटीग्रेटेड सेन्टर फॉर वर्ल्ड स्टडीज, उरई-जालौन (उ0प्र0) भारत के सहयोग से प्रकाशित

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN 0974-0002

देश–देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

वर्ष : 3 अंक : 5 जनवरी–जून 2010

प्रधान सम्पादक

डॉ. चन्द्रमा सिंह

मुख्य सम्पादक

डॉ. किशन यादव
डॉ. कश्मीरी देवी
डॉ. सुरेश एफ कानडे
डॉ. राधा वर्मा

कला सम्पादक

डॉ. नीना शर्मा 'हरेश'

प्रबन्ध सम्पादक

डॉ. सुरेन्द्र कुमार सिंह

सम्पादक

डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

इंटीग्रेटेड सेन्टर फॉर वर्ल्ड स्टडीज, उरई जिला–जालौन (उ. प्र.) भारत के सहयोग से प्रकाशित

RNI : UPHIN/2008/30136

ISSN 0974-0002

देश–देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

वर्ष : 3 अंक : 5 जनवरी–जून 2010

सहयोग राशि : 60 रुपये

यू. एस. 25 $ यूरो 20 $

व्यक्तिगत सदस्यों के लिये

वार्षिक सदस्यता	:	200 रुपये	(डाक व्यय सहित)
पाँच वर्ष के लिये	:	1000 रुपये	(डाक व्यय सहित)
आजीवन	:	3500 रुपये	(डाक व्यय सहित)

संस्थाओं के लिये

प्रति अंक	:	200 रुपये	(डाक व्यय सहित)
वार्षिक सदस्यता	:	400 रुपये	(डाक व्यय सहित)
पाँच वर्ष के लिये	:	2000 रुपये	(डाक व्यय सहित)
आजीवन	:	4000 रुपये	(डाक व्यय सहित)

विशेष : सभी भुगतान नकद/मनीआर्डर/बैंक ड्राफ्ट/चेक **'सम्पादक कृतिका'** के नाम Payable at Orai भेजें। कृपया चेक के साथ बैंक कमीशन के रूप में निश्चित अतिरिक्त राशि जोड़ दें।

- विधिक वादों के लिये क्षेत्र उरई न्यायालय के अधीन होंगे।
- कृतिका में प्रकाशित रचनाओं के विचारों से सम्पादक मण्डल (कृतिका परिवार) की सहमति अनिवार्य नहीं है।
- शोध पत्रिका में प्रकाशित सामग्री के पुनर्प्रकाशन के लिये सम्पादक मण्डल की लिखित अनुमति अनिवार्य है। कृतिका के सम्पादन, प्रकाशन व संचालन से जुड़े समस्त पद अवैतनिक हैं।

प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव द्वारा महक कम्प्यूटर्स एण्ड प्रिण्टर्स, 15, आजाद नगर, उरई (जालौन) से मुद्रित करवाकर 1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) से प्रकाशित।

सम्पादक – **डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव**

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN 0974-0002

देश–देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

वर्ष : 3 अंक : 5 जनवरी–जून 2010

क्षेत्रीय प्रधान सम्पादकीय कार्यालय

डॉ. चन्द्रमा सिंह
नयकागाँव, जी. टी. रोड
सासाराम (बिहार) 821115
सम्पर्क – 06184–223271, 09430895451
Email : dr.chandramasinghkritika@rediffmail.com
dr.chandramasingh2009@rediffmail.com

डॉ. सुरेश एफ कानडे
प्लाट नं. 48, साईं बंगला, प्रोफेसर कॉलोनी, विजडम
हाईस्कूल के पीछे, रामेश्वर नगर, गंगापुर रोड
नासिक 422013 (महाराष्ट्र)
सम्पर्क – 09422768141
Email : sureshkande2009@rediffmail.com

डॉ. नीना शर्मा 'हरेश'
व्याख्याता, हिन्दी विभाग
आनन्द आर्ट्स कालेज, गुजरात 250260
सम्पर्क – 09925019160
Email : dr.neenasharma2009@rediffmail.com

डॉ. कश्मीरी देवी
म. नं. 1651/21 हैफेड चौक
रोहतक (हरियाणा) 124001
सम्पर्क – 0912384888
Email : kashmiridevi2009@rediffmail.com

डॉ. राधा वर्मा
वर्मा निवास, गाहन, कमला नगर
संजौली, शिमला (हि. प्र.)
सम्पर्क – 09459262144
Email : dr.radhaverma@yahoo.com

डॉ. सुरेन्द्र कुमार सिंह
म. नं. नन्दन सदन II फ्लोर, शेरशाह रोड,
शकरी गली, पो. आ. गुलजार बाग, पटना 800007 (बिहार)
सम्पर्क – 09279211509, 09334626350
Email : drsurendra25@gmail.com

प्रधान सम्पादकीय कार्यालय

डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र. 285001 भारत
सम्पर्क – 05162–252888, 09415924888, 09670732121
Email : kritika_orai@rediffmail.com ✦ Email : virendra_kritika@rediffmail.com
Email : dr.virendrayadav@gmail.com ✦ http://kritika-shodh.blogspot.com

कृतिका : एक परिचय

शोध एवं अनुसंधान गतिविधियों के एकीकृति अध्ययन के लिये युवा शोधार्थियों, अध्येताओं को शोध के नवीन अवसरों को उपलब्ध कराने हेतु कृतिका शोध पत्रिका की परिकल्पना की गई। कृतिका, इंटीग्रेटेड सेन्टर फॉर वर्ल्ड स्टडीज, उरई जिला–जालौन (उ. प्र.) भारत के सहयोग से प्रकाशित अन्तर्राष्ट्रीय अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका है। कृतिका का सम्पादक मण्डल देश एवं विदेश के विभिन्न राज्यों के विषय विशेषज्ञों की सहभागिता के आधार पर कार्य कर रहा है। मानविकी एवं समाज विज्ञान में शोध के नवीन अवसरों की भागीरथी प्रवाहित करने के उद्देश्य से सहकारिता के आधार पर इस शोध पत्रिका का प्रचार सम्पूर्ण भारत के साथ–साथ सात समुन्दर पार यू. एस. ए., लंदन, आस्ट्रेलिया, जापान, जर्मनी, मॉरीशस आदि के शोध निदेशक एवं शोधार्थियों का कृतिका में रचनात्मक सहयोग प्राप्त है।

कृतिका शोध पत्रिका का एक दूसरा उद्देश्य मानविकी एवं समाज विज्ञान के अलावा विषयों की सीमाओं से हटकर स्वतंत्र रूप से गहन एवं मौलिक शोध की प्रवृत्ति को बढ़ावा देना है ताकि शोध पत्र न केवल गम्भीर अध्येताओं के लिये उपयोगी हो बल्कि यह जनसामान्य में नवीन जानकारी, शोध के प्रति उत्सुकता एवं जागरूकता का परिचायक भी सिद्ध हो। साथ ही यह व्यावहारिक धरातल पर अनुपयोगी भी हो। कृतिका में इन्हीं विचारों को दृष्टिगत रखते हुये साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान के विषयों के अलावा हम विज्ञान एवं अन्य विषयों के शोध पत्र भी आमंत्रित करते हैं। उत्तर आधुनिकता एवं भूमण्डलीकरण के इस दौर में वर्तमान की ज्वलंत समस्याओं से सम्बन्धित विषयों पर समय–समय पर कृतिका परिवार विषय–विशेष पर विशेषांक केन्द्रित अंक भी निकलता है जिसकी सूचना कृतिका शोध पत्रिका में एवं अलग से पत्रों के माध्यम से शोध अध्येताओं एवं जिज्ञासु युवा रचनाकर्मियों को समय–समय पर दी जायेगी।

सामान्य निर्देश

रचनाकारों/शोध अध्येताओं से विनम्र अनुरोध :

- कृतिका साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान का एक अर्द्धवार्षिक शोधपरक अनुष्ठान है जो युवा अध्येताओं, शोधार्थियों एवं खोजकर्ताओं का अपना मंच है। अपने मौलिक एवं नवीन अन्वेषणात्मक रचनाओं के सहयोग से इसे सम्बल प्रदान करें।
- मानविकी एवं समाज विज्ञान से सम्बन्धित सभी विषयों की मौलिक रचनायें विषय विशेषज्ञों की सहमति से ही इसमें प्रकाशित की जाती हैं।
- कृतिका में प्रकाशित शोध पत्र देश एवं विदेश के विषय विशेषज्ञों के पास चयन के लिए प्रेषित किये जाते हैं। इसलिये शोध पत्र/आलेख लिखते समय संदर्भों का स्पष्ट उल्लेख करें, पुस्तक का संदर्भ, पत्र–पत्रिका का संदर्भ, प्रकाशन, वर्ष एवं संस्करण का उल्लेख आवश्यक है। शोध पत्र/आलेख की शब्द सीमा दो हजार शब्दों से अधिक नहीं होनी चाहिये। यदि शब्द सीमा अधिक है तो सम्पादक मण्डल को उसमें संशोधन, संक्षिप्तीकरण का अधिकार सुरक्षित रहेगा।
- कृपया अपनी शोध रचनाएं एवं आलेख प्रेषित करते समय अपना संक्षिप्त आत्मवृत्त, छायाचित्र प्रेषित करें। रचना के शोध संक्षेप सार का उद्देश्य, वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता एवम् उपयोगिता को अवश्य दर्शायें।
- कृतिका में पुस्तक समीक्षा के लिये चर्चित एवं महत्वपूर्ण पुस्तकों/पत्रिकाओं पर समीक्षात्मक आलेख आमंत्रित हैं। समीक्षात्मक आलेख के साथ पुस्तक/पत्रिका की दो प्रतियां रजिस्टर्ड डाक से प्रेषित करें।
- स्तरीय पुस्तक की समीक्षा के लिये समीक्ष्य पुस्तक की दो प्रतियां एवं लेखक अपना संक्षिप्त आत्मवृत्त एवं छायाचित्र तथा पुस्तक का संक्षेपण पंजीयन डाक से सम्पादक के पते से प्रेषित करें। समीक्षा की स्थिति में शोध पत्रिका का अंक सम्बन्धित लेखक के पते पर भेजा जायेगा।
- किसी भी दशा में शोध पत्र/आलेख की प्रति वापस (स्वीकृति/अस्वीकृति की स्थिति में) नहीं प्रेषित की जा सकती है। इसलिये कृपया एक प्रति अपने पास सुरक्षित अवश्य रखें।
- कृतिका एक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका है। कृपया रचना प्रेषित करते समय यह भलीभाँति तय कर लें कि यह शोध पत्र/आलेख/रचना आपकी अपनी मौलिक कृति है। और कृतिका के मापदण्डों के अनुकूल है कि नही। कृतिका परिवार आपके नये अकादमिक सुझावों एवं प्रतिक्रियाओं का सदैव स्वागत करेगा।
- रचनायें कम्प्यूटर से मुद्रित अथवा कृति देव 10 में 14 फान्ट साइज में MS-Word Software में टाइप करके साथ में सीडी एवं रचना का प्रिन्ट अवश्य भेजें।
- कृतिका की गोपनीय समिति द्वारा चयनित शोध पत्रों/आलेखों में से श्रेष्ठ रचना को पारतोषिक देकर सम्मानित किया जायेगा।

— कृतिका परिवार

देश–देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की
अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

अनुक्रमणिका

	शीर्षक	लेखक	पृ. सं.
	सम्पादकीय		i-iv
	✦ **एक दुनिया और भी है**		
1.	जातीय प्रहार	भारतेन्दु श्रीवास्तव	1–5
2.	दलित विमर्श के अंतर्द्वन्द्व एवम् सामाजिक सरोकार	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	6–8
	✦ **सुलगते सवाल**		
3.	कोटा नहीं सच्चा दिल चाहिये	कु. रंजिता पुरवार	9–11
	✦ **अध्यात्म एवम् दर्शन**		
4.	आधुनिक परिप्रेक्ष्य में गीता के कर्मयोग की सार्थकता	डॉ. प्रदीप कुमार दीक्षित	12–16
5.	परोपकार की भावना	डॉ. राजेश कुमार	17–19
6.	कालिदास साहित्ये लोक कल्याणस्य भावना	डॉ. सुनीता तिवारी	20–22
7.	सर्वोदय : एक अविरल चिन्तनधारा	डॉ. राकेश कुमार शुक्ल	23–29
8.	श्रीमद्भगवद्गीता में जीवन दर्शन–एक विमर्श	डॉ. अनिल कुमार सिन्हा	30–34
9.	पातंञ्जलि योगसूत्र और हेमचन्द्र कृत मनोनुशासन का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. विनोद कुमार पाण्डेय	35–39
10.	आदर्श समाज की संरचना में श्रीमद्भगवद्गीता की भूमिका	डॉ. रंजना दुबे	40–43

11.	तान्त्रिक वाङ्मय में योग साधना	डॉ. शिवराम यादव	44–50
12.	वैदिक वाङ्मय में लोककल्याण की अवधारणा	डॉ. रामेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी	51–55
	✦ **वैदिक साहित्य में चिन्तन के विविध सन्दर्भ**		
13.	वैदिक वाङ्मय और मानवधर्म	डॉ. आशा रानी पाण्डेय	56–61
14.	वैदिक वृष्टिविज्ञान	डॉ. (श्रीमती) सुधा गुप्ता	62–67
15.	वेदों में व्यक्तित्व–विकास	डॉ. निरुपमा त्रिपाठी	68–71
16.	आधुनिक काल में वेदकालीन न्याय की प्रासंगिकता	डॉ. (श्रीमती) वन्दना दीक्षित	72–75
	✦ **राजनीति एवं प्रशासन**		
17.	राजनीति का अपराधीकरण और निर्वाचन सुधार	डॉ. पुष्पेन्द्र कुमार सिंह	76–80
18.	वर्तमान परिवेश में पुलिस की भूमिका	डॉ. मीनाक्षी व्यास डॉ. नृपेन्द्र कुमार सिन्हा	81–83
19.	भारत अमेरिका असैन्य परमाणु समझौता (123)	अरविन्द कुमार शुक्ल	84–89
20.	परमाणु निःशस्त्रीकरण की संभाव्यता	डॉ. शिवानन्द सिंह	90–95
	✦ **शैक्षिक परिदृश्य**		
21.	वैश्विक परिदृश्य में उच्च शिक्षा की भारतीय परिकल्पना	डॉ. सुनीता तिवारी	96–99
	✦ **समकालीन साहित्यिक परिदृश्य**		
22.	'वैष्णव–जन' .... सौराष्ट्र (गुजरात) के भक्तकवि श्री नरसिंह मेहता की वैश्विक–अमर कृति	डॉ. मनोज जोशी	100–103
23.	हास्य रस का शास्त्रीय विवेचन	डॉ. (श्रीमती) प्रतिभा मिश्रा	104–107
24.	डॉ. सुरेन्द्र विक्रम के बाल काव्य का वर्गीकरण	कु. स्वाती शर्मा	108–116
25.	हनुमन्नाटक का नाट्यशिल्प – कवि परिचय	डॉ. शालिनी मिश्रा डॉ. आशारानी राय	117–121
26.	उत्तर आधुनिकता के बढ़ते कदम और हिन्दी साहित्य	डॉ. उमा रानी श्रीवास्तव	122–124
27.	आधुनिक हिन्दी कविता का राष्ट्र बोध	डॉ. अमित शुक्ल	125–130
28.	समकालीन कविता में जनवादी चेतना	डॉ. उर्मिला शर्मा श्रीमती पिंकी सोलंकी	131–137

29.	कितने पाकिस्तान : एक राजनीतिक चिन्तन	अरूण बाला	138–141
30.	हिन्दी के युग प्रवर्तक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	डॉ. रजनी सिंह	142–147
	✦ भारत में कृषि व्यवस्था की भूमिका		
31.	आर्थिक विकास बनाम कृषि क्षेत्र का कम महत्व	श्रीमती उर्मिला गौड़	148–154
	✦ विकास और जनसंचार माध्यम		
32.	उद्यमिता विकास के लिये मानव संसाधन प्रबन्ध की चुनौतियाँ	डॉ. श्वेता गर्ग डॉ. सत्यदेव गर्ग	155–157
33.	ग्रामीण विकास में मास–मीडिया की भूमिका	अमित शर्मा	158–160
	✦ बालश्रम एक गम्भीर चुनौती		
34.	बाल श्रमिक एक भयावह समस्या एवं चुनौतियाँ	श्रीमती नीतू जैन	161–164
35.	इक्कीसवीं सदी में बालश्रम : चुनौती एवं समाधान	प्रभाकर कुमार द्विवेदी	165–170
	✦ कला एवं संस्कृति		
36.	साझी विरासत की अनुपम मिसाल–भारतीय समाज	डॉ. सबीहा रहमानी	171–173
	✦ ग्लोबल वार्मिंग		
37.	ग्लोबल वार्मिंग एक वैश्विक चुनौती	डॉ. शकील अहमद	174–177
	✦ पोथी की परख/समीक्षायन		
38.	दलित जीवन की इनसाइक्लोपीडिया	डॉ. सुरेश कानडे	178
39.	समकालीन ज्वलंत समस्याओं का अमर दस्तावेज	डॉ. ज्योति सिन्हा	179
40.	वर्तमान सम्बन्धों के विघटन का जीवंत यथार्थ	डॉ. दिव्या माथुर	180
41.	भारतीय मुसलमान : मिथक एक यथार्थ	डॉ. चन्द्रमा सिंह	181
42.	हिन्दी कथा साहित्य में पारिवारिक विघटन	डॉ. कुमारेन्द्र सिंह सेंगर	182
43.	बदलते परिदृश्य में नई सहस्त्राब्दी का भारत	डॉ. अजीत सिंह राही	183
44.	नई सहस्त्राब्दी का स्त्री–विमर्श : मिथक एवं यथार्थ	डॉ. हेमा देवरानी	184
45.	इक्कीसवीं सदी का भारत – मुद्दे, विकल्प और नीतियाँ	डॉ. परमात्मा शरण गुप्ता	185

सम्पादकीय

इल्म और इजाद की बुलन्दियों को हम उत्तरोत्तर छूते चले जा रहे हैं और पाताल से लेकर आकाश तक अपना इकबाल बुलन्द करते जा रहे हैं लेकिन इल्म और इज़ाद (ज्ञान और अविष्कार) के कुप्रभाव और खतरों का एहसास भी हमें होने लगा है। हम इतना सहमें हैं कि अपने भविष्य के बारे में विश्वासपूर्वक कुछ कह नहीं सकते। बस इतना ही महसूस करते हैं कि हमारे रहन–सहन का स्तर भले ही ऊंचा उठ रहा हो, लेकिन जीवन की विश्वसनीयता एवं गुणवत्ता गुम होती जा रही है। फिर भी यह मुमकिन नहीं कि दुनिया को उस मुकाम पर वापस किया जा सके जहां कभी राम–कृष्ण, बुद्ध–लाओत्से अथवा मूसा–ईसा या मुहम्मद खड़े थे। हम यदि इतना ही कर सकें कि उन महाप्राणों के शाश्वत आध्यात्मिक संदेशों के साथ नवोद्घाटित वैज्ञानिक सत्यों की सुर–संगति बिठा लें, तो मानवता शायद धन्य हो जाये। यह तभी संभव हो पायेगा जब इस दिशा में सम्मिलित चिंतन–मनन और प्रयास किये जायें क्योंकि हम सब एक अखंड मानवीय सभ्यता के अंग हैं और जीवन की इन नयी चुनौतियों का सामना एक साथ मिलकर ही सफलतापूर्वक कर सकते हैं।

विगत बीसवीं सदी को विश्व इतिहास का एक अति महत्वपूर्ण कालखंड माना जाता है क्योंकि उस सदी में विज्ञान और राजनीति, दोनों ही क्षेत्रों में ऐसे–ऐसे अद्भुत काम हुए हैं जिनके तात्कालिक परिणामों का उल्लेख करना तो सहज है, किन्तु उनके दूरगामी प्रभावों का अनुमान लगाना अत्यंत कठिन। कोई नहीं कह सकता कि अंततोगत्वा मानवजाति के लिए वे सब वरदान सिद्ध होंगे अथवा अभिशाप। हम सहमें हुए हैं, क्योंकि हमने ज्ञानियों से सुना है कि ज्ञान के भी बड़े खतरे हैं और विज्ञानियों ने हमें बताया है कि प्रत्येक पदार्थ के प्रतिपदार्थ (ऐंटि–मैटर) भी होते हैं। खैर ! बीसवीं सदी की मुख्य वैज्ञानिक उपलब्धियों में सापेक्षतावाद और क्वांटम सिद्धांत, अणु–परमाणु बम, स्पुतनिक और रॉकेट, चांद पर मनुष्य का पदार्पण, शनि–मंगल–बृहस्पति जैसे दूरस्थ ग्रहों की छानबीन, जेनेटिक इंजीनियरिंग की करामात आदि शामिल हैं। दूसरी तरफ राजनीतिक रंगमंच पर भी उन दिनों एक से बढ़कर एक रोमांचक और राक्षसी दृश्य उपस्थित होते रहे। साम्यवाद का उदय–अस्त, दो अति संहारक विश्वयुद्ध, ब्रिटिश साम्राज्य का विलोपन, संसार की दो महाशक्तियों–अमेरिका और सोवियत संघ–के बीच दीर्घकालीन शीतयुद्ध जिसके दौरान साम्यवादी सोवियत रूस को धूल चटाने की गरज से अमेरिका द्वारा इस्लामी चरमपंथियों को प्रोत्साहन जैसी अनेक शुभ–अशुभ घटनाएं बीसवीं सदी की विषय–सूची में ही सम्मिलित हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद संसार की दूसरी सबसे बड़ी सैन्यशक्ति समझे जाने वाले सोवियत रूस के प्रभुत्व और प्रसार को रोकने के लिए अमेरिका ने जो कार्यनीतियां अपनायीं, उनके कुछ तात्कालिक लाभ चाहे भले हुए हों या नहीं परन्तु हम यह गारंटी के साथ कह सकते हैं कि उनके कई दूरगामी परिणाम न तो अमेरिका के लिए अच्छे हुए, और न ही पूरी दुनिया के लिए। सोवियत संघ यदि बिखर गया तो वह मुख्यतः साम्यवादी व्यवस्था के अंतर्विरोधों और अतिरेकों के कारण बिखरा; और इसलिए बिखरा कि वहां मिखाइल गोर्बाचोव जैसे मानवतावादी पैदा हो गये थे। अमेरिका की अपनी प्रथम राजकीय यात्रा के दौरान 9 दिसम्बर, 1987 को वाशिंगटन में लेखकों और बुद्धिजीवियों को संबोधित करते हुए रूसी राष्ट्रपति गोर्बाचोव ने कहा था कि हम एक अखंड मानव सभ्यता के अंग हैं तथा विज्ञान, तकनीक, पर्यावरण और आगामी इक्कीसवीं सदी की अनजानी चुनौतियों के हल ढूंढ़ने की अनिवार्यता में परस्पर जुड़े हैं। इसलिए, चिंतन और कर्म में भी हमें परस्पर सहयोग करना होगा। अमेरिका और सोवियत संघ ने अक्सर अपनी अनैतिक नीतियों के कारण

बहुत कुछ गंवाया है" हमें इसका कोई अधिकार नहीं कि अकूत भौतिक संपदा और मानवीय संसाधनों को मानवीय जीवन की दशा सुधारने के बजाय उन्हें अस्त्र–शस्त्रों पर अपव्यय करते जायें।

पिछले तीन–चार शताब्दियों से विज्ञान की लगातार उन्नति होती जा रही है। प्रकृति के राज हर रोज वह खोलती जा रही है। विज्ञान सिद्ध अनेक तथ्य हमारी पारंपरिक धार्मिक मान्यताओं एवं रीतिरिवाजों से सीधे जा टकराये हैं। यहूदी, ईसाई, मुसलमान सभी मानते आ रहे थे कि दुनिया ईसा के जन्म से महज चार हजार कुछ सौ बरस पहले बनी थी। लेकिन विज्ञान ने अपने सघन अनुसंधान के आधार पर सृष्टि–निर्माण को लगभग तीन अरब वर्ष पुरानी घटना बताया है। इन तीनों धर्मों की धारणा थी कि पृथ्वी अंतरिक्ष के केन्द्र में स्थिर है और सूरज उसके चारों तरफ चक्कर काटता रहता है। विज्ञान ने ठीक इससे उलटी बात कही। धर्मग्रंथों ने बताया था कि मनुष्य सहित सभी प्राणियों की उत्पत्ति अमुक घड़ी में ईश्वर के आदेश के एक ही साथ हुई थी। विज्ञान ने सिद्ध कर दिया है कि पृथ्वी पर जीवोत्पत्ति एक क्रमिक विकास प्रक्रिया का परिणाम है। ये सब ऐसे आधारभूत वैज्ञानिक उद्घाटन थे जिन्हें अंततोगत्वा सभी धर्मो को स्वीकार कर लेना पड़ा। इसके बावजूद कोई धर्मानुयायी यदि उन्हें न मानना चाहे, तो न माने। कुर्आन में उचित ही कहा गया है कि इंसान को अक्ल तभी आती है जब खुदा चाहे। हम तो यही मानते हैं कि गैलीलियो, कोपरनिकस, ब्रूनो, न्यूटन, डार्विन, आइंस्टीन या हिजेनबर्ग, मैक्सप्लैंक, श्रूडिंगर जैसे वैज्ञानिक मानव समाज के उतने ही हितैषी थे जितने कोई पीर–पैंगबर या ऋषि–महर्षि। उन प्रतिभावानों की खोज भी उसी दिशा में थी जिधर उन प्रज्ञावानों की। सबकी व्याकुलता उस परमतत्त्व को जानने की है जिससे सब उत्पन्न होते हैं, जिसके द्वारा सब पोषित होते हैं और अंततः जिसमें सब विघटित हो जाते हैं। उनके प्रयत्नों में अंतर सिर्फ मार्ग, माध्यम और प्रणाली का है; लक्ष्य का नहीं। जो आज विज्ञान के द्वारा सिद्ध हो चुका है।

आधुनिक विज्ञान का उदय सोलहवीं–सत्रहवीं सदी में हुआ था। उससे पहले उसकी अपनी स्वतंत्रसत्ता नहीं थी। वह 'प्राकृतिक–दर्शन' (नेचरल फिलॉसफी) का ही अभिन्न अंग माना जाता था। जिस कारण पूर्वकालीन सभी विज्ञानियों का उल्लेख 'दार्शनिक' नाम से ही मिलता है और न्यूटन ने लैटिन भाषा में लिखी अपनी विश्व प्रसिद्ध पुस्तक का शीर्षक रखा था, 'प्राकृतिक दर्शन के गणितीय सिद्धान्त' (अंग्रेजी में, मैथिमैटिकल प्रिंसपल्स ऑफ नेचुरल फिलॉसफी)। यद्यपि इटली के पाडुआ विश्वविद्यालय का प्राध्यापक गैलीलिओ (1564–1642) पहला व्यक्ति था जिसने अपने प्रयोगों को गणितीय भाषा में प्रकट करते हुए प्रकृति के नियमों की व्याख्या की थी और उसके वैसे महत्वपूर्ण योगदान के लिए ही लोग उसे आधुनिक विज्ञान का जनक बताते हैं; तथापि, आधुनिक विज्ञान के आधारभूत स्तंभों के निर्माण का मुख्य श्रेय इंग्लैंड के फ्रांसिस बेकन (1561–1626), फ्रांसवासी रेन देकार्त (1596–1650) तथा इंग्लैंड के ही आइजक न्यूटन (1624–1727) को दिया जाता है। गैलीलीयो के सूत्रों को वैज्ञानिक प्रणाली में विकसित करने की शुरूआत बेकन ने ही की थी।

जहाँ तक मेरा मानना है कि बेकन से पहले विज्ञान का उद्देश्य मात्र इतना था कि प्रकृति की विधि–व्यवस्था को ठीक से समझ लिया जाये ताकि उनके अनुरूप ही लोग जीवन यापन करें। लेकिन बेकन के कारण विज्ञान का लक्ष्य बदलने लगा और वह प्रकृति पर मानवीय प्रभुत्त्व और नियंत्रण के लिए अधिक उत्सुक होता गया। कैपरा ने लिखा है (द टर्निंग प्वाइंट, पृ. 40) कि बेकन ने अपनी अन्वेषण प्रणाली

का जिस ढंग से उपयोग किया था, वह न केवल भावावेश से भरा था, बल्कि नितांत कटु और दुर्दांत भी था। बेकन का इरादा प्रकृति का पीछा उस हद तक करते जाना था जब तक वह अपने सारे राज उगल न दे और विवश होकर मानवीय सेवा में समर्पित न हो जाये। एक कदम बढ़ते हुए बेकन द्वारा संकलित वैज्ञानिक तथ्यों को तर्क की सहायता से दार्शनिक आयाम देते हुए देकार्त ने प्राकृतिक जगत की जो रूपरेखा प्रस्तुत की, वह एक ऐसी उन्नत मशीन की थी जो सुनिश्चित गणितीय नियमों द्वारा सुचारू रूप से संचालित होती रहती है। देकार्त भी बेकन की इस राय से सहमत था कि विज्ञान का प्रयोजन प्रकृति को मानवीय प्रभुत्त्व और नियंत्रण में रखना है। उल्लेखनीय है कि देकार्त आधुनिक पाश्चात्य दर्शन का संस्थापक माना जाता है जिनके विचारों की सुबद्धता और ताजगी की तारीफ करते हुए बर्ट्रेंड रसेल को प्लेटो और अरस्तू की याद आ गयी थी। हालांकि अपने सिद्धान्तों का केवल बाहरी खाका खींचने से ज्यादा देकार्त कुछ नहीं कर पाये थे। उनकी प्रस्थापनाओं को सुव्यवस्थित सैद्धांतिक रूप देने का श्रेय आइजक न्यूटन को दिया जाता है जिसने न केवल देकार्त, बल्कि कोपरनिकस, केपलर, बेकन तथा गैलिलीयो जैसे सभी पूर्ववर्ती वैज्ञानिकों के सिद्धांतों को परिष्कृत कर एक वैसे ठोस वैज्ञानिक सिद्धांत की प्रस्थापना कर दी जिस पर पूरे दो सौ साल तक क्लासिकी भौतिक विज्ञान निर्बाध रूप से आगे बढ़ता गया।

न्यूटन की वैज्ञानिक सोच यह थी कि सृष्टि–रचना की प्रारंभिक घड़ियों में ईश्वर ने भौतिक कणों का निर्माण कर उनमें बलशक्ति (फोर्स) भर दी और वे आधारभूत नियम भी निर्धारित कर दिये जो निरंतर उनकी गति संचालित करते रहें। उसके बाद ईश्वर ने अपना हाथ खींच लिया और तबसे एक विराट मशीन की भांति यह जगत केवल उन्हीं पूर्वनिर्धारित नियमों द्वारा संचालित होता रहा है तथा सदा संचालित होता रहेगा। न्यूटन कहा करता था कि उसके वैज्ञानिक प्रयासों का सबसे बड़ा उद्देश्य उन नियमों के प्रमाण प्रस्तुत कर देना था जिन्हें प्राकृतिक घटनाओं के संचालन हेतु ईश्वर ने प्रारंभ में ही निर्धारित कर दिये थे। इस पूरे संदर्भ में ठोस पिंडों की गति और गुरूत्वाकर्षण के नियम प्रतिपादित करते समय 'डिफरेंशिअल कैलक्यूलस' नामक जिस गणितीय विधि का न्यूटन ने प्रयोग किया था, वह उसकी सर्वथा मौलिक और सर्वाधिक महत्वपूर्ण देन थी। आइंस्टीन उससे इतना ज्यादा प्रभावित था कि उसकी राय में सोच की दुनिया में शायद ही दूसरा कोई व्यक्ति उतना बड़ा काम अकेले कर पाया हो।

बदलते परिवेश एवं परिस्थितियों तथा जमाने के तेवरों से मानवीय महत्त्वाकांक्षा, भौतिक समृद्धि की लालसा, निष्ठुर प्रतिस्पर्धा जैसी प्रवृत्तियों को बल मिलता गया। हम मानते हैं कि प्रतिस्पर्धा यदि नेकी और नैतिकता के मामले में बढ़े, तो यह मानव समाज के लिए निश्चय ही मंगलकारी है। लेकिन लोभ, स्वार्थ और अनीतियों की होड़ लग जाये तो उसका अंत अवश्य ही दुःखदायी होगा। यह उसी की देन है कि सारी सुख–सुविधाओं के बावजूद हमारा जीवन संघर्ष, कटुता और तनाव से बुरी तरह ग्रस्त हो चुका है। आज हम जिन विकट समस्याओं से जूझ रहे हैं–चाहे जनसंख्या वृद्धि हो या औद्योगिक प्रदूषण अथवा प्रकृति का निर्मम दोहन तथा पर्यावरण असंतुलन–प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में सब उसी मानसिकता के कुपरिणाम हैं। अपनी अकुलाहट में हममें से अनेक लोगों को बाइबल की बात शायद ठीक ही लगती है कि ज्ञानाधिक्य ही हमें किसी महाविपदा की ओर धकेलता जा रहा है। यह बात कुछ देर के लिए मान भी ली जाये तो भी उस संभावित विपदा से बचने का उपाय अज्ञानता की गोद में सिमट जाना नहीं है। हर मुसीबत से ज्ञान ही हमारी रक्षा कर सकेगा। असल में हमारा ज्ञान बहुत नहीं बढ़ा है। सिर्फ हमारी जानकारियां बेहिसाब बढ़

गयी हैं। जानकारियों की तो जैसे बाढ़ आ गयी हो। जिज्ञासुओं एवं विचारवानों के लिए चिंतनीय बात यह है कि इस बाढ़ में तैर कर हम कैसे पार निकल जायें। और इस काम में भी हमें ज्ञान की ही सहायता लेनी होगी। ज्ञान, जो सुविचारित जानकारियों से उत्पन्न समग्र और सम्यक बोध का नाम है और जो जगत–जीवन के प्रति हमें संतुलित दृष्टिकोण देता है। 'विजडम' अर्थात रे रसेल का अभिप्राय उसी समग्र और सम्यक बोध से है जिसे भारतीय शास्त्रों ने 'प्रज्ञा' कहा है। मानवीय समस्याएं प्रखंडित जानकारियों से सुलझने वाली नहीं हैं। विज्ञान या धर्मशास्त्र, या फिर इतिहास अथवा अर्थशास्त्र–इनमें से कोई अकेले पूर्ण और पर्याप्त नहीं। सबने जगत–जीवन के किसी क्षेत्र विशेष, किसी खास पक्ष पर ही अपना ध्यान केन्द्रित किया है। जबकि वस्तुस्थिति यह है कि अस्तित्व एक संपूर्ण घटना है और इसकी समस्याओं को समग्रता के परिदृश्य में ही ठीक से समझा और हल किया जा सकता है।

इन परिस्थितियों में व्यक्ति की दशा भी कम खराब नहीं रहती है। वह जितना ही अधिक अमीर होता है उसे उतना ही अधिक तनाव रहता है तथा नींद के लिए सोने की गोलियां खानी पड़ती हैं। सिर दर्द, रक्त–चाप, ह्रदय रोग, कैंसर, एड्स आदि रोग सामान्य बनते जा रहे हैं। विभिन्न नशे उसे आराम नहीं दे पाते हैं। अब वह भारतीय छद्म साधुओं का सहारा ले शान्ति की तलाश करना चाहता है। पर सुख उसके जीवन में दिखाई ही नहीं पड़ता है। ज्ञान–विज्ञान ने अमरीकी जीवन को नारकीय बना दिया है। यह है पंथ–निरपेक्ष तथा ज्ञान–विज्ञान का स्पष्ट प्रभाव।

एक सम्पादक के लिए अपने शुभचिंतकों, प्रशंसकों एवं पाठकों की प्रतिक्रिया ही सब कुछ होती है। इस बात को हम गर्व एवं फक्र के साथ कह–सकते हैं कि हमें इस सम्बन्ध में अपने बुद्धिजीवी मनीषी पाठकों से बहुत कुछ समय–समय पर मिल रहा है। इस सन्दर्भ में वे सम्पादित लेखों तथा सम्पादकीय में रचनात्मक और सकारात्मक बातें चिन्हित कर हमें पत्र, फोन और ई–मेल से अवगत कराते–रहते हैं सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये पाठकगण न केवल हमारी प्रशंसा और तारीफ के पुल बांधते रहते हैं बल्कि वे हमारी गलतियों को भी बताते एवं एहसास कराते रहते हैं। ये सब प्रतिक्रियाएं हमारी पूरी टीम का मार्गदर्शन कर हमें प्रोत्साहित कर नयी ताजगी एवं उर्जा का संचार कर और आगे कुछ नया करने को प्रेरित तथा उत्साहित कर हिम्मत बढ़ाती हैं और हाशिए पर कर दिए गये समुदाय के लिए नया संघर्ष करने को एक आत्मीय शक्ति भी प्रदान करती हैं। इस परिप्रेक्ष्य में मेरी व्यक्तिगत धारणा है कि जब कोई व्यक्ति स्वार्थ से परे रहकर जनहित के पक्ष में कार्य करने का संकल्प लेता है तो अदृश्य शक्तियाँ भी उसकी मदद करतीं हैं। इसी तरह से कृतिका के इस पाँचवें अंक के साथ हम कुछ नये मिथक, कुछ बुनियादी सरोकार तथा परम्परागत प्रथाओं को वर्तमान नजरिये से देखने की दृष्टि से आप सब पाठकों की अदालत में हाजिर हैं। आपके अन्तिम निर्णय को शिरोधार्य करने के साथ एक बात जरूर हम कहना चाहेंगे कि

ये और बात कि आंधी हमारे बस में नहीं।
मगर चिराग जलाना तो इख्तियार में है।।

– सम्पादक मण्डल

अपूरणीय क्षति

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग की प्रो. एवं कृतिका परिवार की मानद संरक्षक डॉ. गिरिजा राय का निधन 05 मार्च 2010 को गया है। कृतिका परिवार की ओर से भावपूर्ण हार्दिक श्रद्धांजलि।

जातीय प्रहार

✍ भारतेन्दु श्रीवास्तव

घटना दिसम्बर 17, 1980 की है। कुछ दिन पहले ही प्रसिद्ध रॉक ग्रुप ''बीटल्स'' के जौन लैनन की न्यूयार्क में हत्या हो जाने से शीत कैनाडा में भी खूब गर्मागर्मी थी। बाहर का तापक्रम – 15 डिग्री सैल्सियस था। कार के अंदर तापक होने से शीत का अनुभव तो नहीं हो रहा था। परन्तु दिख तो रहा ही था। हिमावृत भूमि से हाईवे को दोनों ओर नियौन बत्तियों का परावर्तन हृदय को आकर्षित कर रहा था। लगभग सवा 600 वर्ग किलोमीटर के टोरांटो महानगर की परिक्रमा के लिये पूर्व में सर्पाकार ''डॉन वैली पार्क वे'', पश्चिम में ''427'', उत्तर में ''401'' और दक्षिण में ''गार्डनर एक्सप्रैस वे'' ऐसी आयोजित हैं जैसे आधी किलोमीटर ऊँची ''सी एन टावर'' सहित टोरांटो आधुनिक तकनीकी का एक सुंदर तीर्थ हो। महाझील ऑंटेरियो के उत्तरी तट पर स्थित इस महानगर से भारत को भी लगाव हो गया था। वह अपनी नई ''डौज ऐसपन'' चलाते हुये भारत देश में रह रहे अपने माता, पिता, भाई, बहन, संबंधियों और मित्रों के बारे में सोच रहा था। ''जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' के प्रबल संस्कार उस पर पड़े ही थे, अतः उसे भारतवर्ष की दूरी का अभाव खटकता ही रहता था।

अचानक उसकी उधेड़बुन समाप्त हुई और उसने देखा कि एक कार पीछे से पास आकर उसका पीछा करती हुई चल रही थी। फिर वह रंगक खिड़कियों की कार बायीं लेन में आकर बराबर से चलने लगी। भारत को सन साठ के दशक का स्मरण हो आया जब अमेरिका में ''क्लू क्लैक्स क्लान'' के गोरे अमरीकी ऐसी ही रंगक खिड़कियों की गाड़ियों में बैठकर काले अमरीकियों को, जो अपने अधिकारों की माँग कर रहे थे, और उनके गोरे सहायक साथियों को गोली से मार देते थे।

''कितना अन्याय है मानव समाज में ? दक्षिण अफ्रीका में जातीय प्रथग्वासन, भारत वर्ष की जाति–पाँति विशेषतया अस्पृश्यता, ब्रिटेन में क्लास सिस्टम, अमेरिका–आस्ट्रेलिया का वर्ण भेदभाव .... छि छि .... । कितनी विडम्बना है कि धर्म तो जीव को जीव से जोड़ने और ईश्वर की प्राप्ति के लिये ऋषि, मुनियों, अवतारों और पैगंबरों ने बनाये परन्तु मजहबी मुखियों ने और संप्रदायी सरदारों ने गाँठें डाल दीं। मुसलमानों ने काफिर, ईसाईयों ने हीथन और यहूदियों ने जैन्टाइल अविष्कार करके मानव समाज में खाई खोद दी। तनिक हिन्दुओं को ही देखिए, घोष तो करते हैं ''वसुधैव कुटुम्बकम'' का परन्तु जातीयता के जाल में हिन्दू समाज को ही फाँसे बैठे हैं .... ।''

भारत के गृहमार्ग का निकास चिन्ह आने से उसने कार ''ऐक्जिट रैम्प'' पर ले ली। दूसरी कार भी इसी निकास ढलान पर आ गई। चौराहे की संकेतक बत्तियाँ लाल होने से भारत ने कार रोक ली। पीछे से

✍ 64 लांगसवर्ड, ड्राइव, स्कारवोरो ओनटारियो, कनाडा, एम. आई. वी. 3 ए. 3

रंगक खिड़कियों वाली कार से चमड़े की जैकिट और दस्ताने पहने साढ़े छह फीट का एक सुंदर युवक निकलकर भारत की कार की खिड़की थपथपाने लगा। "हाय ! क्या आप रास्ता भूल गए हैं ?" भारत ने खिड़की खोलते हुए पूछा। अचानक भारत के मुख पर एक जोर से तमाचा पड़ा और फिर बौछार होने लगी। गालियों की भी झड़ी लग गई। "बुद्धू पाजी! जहाँ से आया है लौट जा वहाँ। नाजायज पैदा होने वाले वर्णसंकर निकल इस देश से........।" गौर वर्ण के युवक के मुख से ये अपशब्द संगमरमर की संडास से बदबू आने के समान लग रहे थे। अपनी हवस निकालकर युवक स्वयं कार में लौटा और कार को दायीं ओर की लेन पर लेकर चला गया।

हक्का बक्का भारत अपना चश्मा ही ढूँढता रहा। लोगों ने हार्न बजाने प्रारंभ कर दिये। आश्चर्य था कि जब युवक भारत पर प्रहार कर रहा था, बत्तियाँ दो तीन बार हरी हुईं परन्तु सभी शीतनिद्रा में, जिसे अंग्रेजी में "हाइबरनेशन" कहते हैं, सो रहे थे और अब सभी एकदम जाग गए।

घायल भारत सदमे में था, उसे रक्त निकलने का भी ध्यान न था। वह अपने घर कार लेकर "ड्राइव वे" में घुसा। जैसे ही उसने कार गाड़ी–पथ पर रोकी, पीछे से एक कार रूकी और एक श्याम वर्णीय नौजवान बाहर आया। "अरे! आपके तो खून निकल रहा है। माफ कीजिए, मैं आपकी सहायता न कर सका, किंतु मैंने सब कुछ देखा है। कार का लाइसेंस नंबर भी नोट कर लिया है।" भारत की पत्नी, तेरह वर्षीय पुत्री और दस वर्ष का पुत्र घबराकर रोने लगे। सांत्वना देते हुए भारत ने पुलिस को फोन किया। जब तक पत्नी ने मुँह साफ करके प्रतिजीवाणु मलहम लगाया, दो कांस्टेबल आ गये।

"मैं प्रकाश जौन हूँ, मैंने सब देखा है .... "युवक ने प्रहारक की कार का लाइसेंस नंबर बता दिया। एक कांस्टेबल भारत से ब्यौरा ले रहा था, दूसरा मुख्य कार्यालय से फोन पर बात कर रहा था।

दो घंटे में अपराधी हिरासत में ले लिया गया और चार्ज कर दिया गया।

इधर भारत के पारिवारिक डाक्टर भी आ गये थे और उन्होंने तीन वैलियम की गोलियाँ भारत को खिला दी थीं। दो मित्र भृगु जी और नायर जी भी आ गये।

"अपराधी पर दस लाख डालर का मुकदमा दायर कीजियेगा," भृगु जी बोले।

"ऐसे आदमी से जूझना ठीक नहीं है," नायर जी बोले।

"भारत जी भारतीय समाज के वरिष्ठ प्रमुख व्यक्तियों में से एक हैं। कई संस्थाएँ इनकी सहायता करने में आगे आ जायेंगी," भृगु जी ने बात काटते हुये कहा।

"आप ठीक कहते हैं, पर ऐसा कार्य करना चाहिये जिससे समाज में तनाव न आये। पुलिस साथ दे रही है।" नायर जी ने कहा।

"क्या आपने अखबार नहीं पढ़ा ? कुछ दिनों पहले उसमें एक सर्वेक्षण छपा था, जिसमें करीब पचास प्रतिशत कैनाडी हम भारतवंशियों के लिये प्रतिकूल भावना रखते हैं। हमने आखिरकार इनका क्या बिगाड़ा है ? हम शिक्षित हैं, अपने व्यवसायों में कुशल हैं .... हमसे ये क्यों चिढ़ते हैं ?" भृगु जी कहते जा रहे थे।

"मेरे पास इन प्रश्नों का कोई पूर्ण उत्तर नहीं है, परन्तु यदि हमें यहाँ रहना है तो गोरों के उर में सद्भावना उत्पन्न करनी पड़ेगी।" नायर जी बोले।

एकाएक भारत का बेटा जोर जोर से रोते हुए भारत से लिपट गया।

"बेटा ! इन लोगों से भी हमें प्रेम भाव ही रखना है। कवि के दोहे न भूलना
यदि तुझको रहना पड़े अंधों के ही बीच,
कभी तो तू जाएगा आँखें होते खीज।
पर इसका हल यह नहीं, अपनी आँखें फोड़,
सींग कटा बछड़ा बने, अंधाधुंधी होड़।"

भृगु जी और नायर जी भी हाँ में हाँ मिलाने लगे। भारत पर वैलियम का प्रभाव हो चुका था।

भारतीय समाज में इस प्रहार की सूचना द्रुत गति से फैली। कुछ मित्र तो इतने व्यथित और विक्षुब्ध थे कि स्वयं भारत को उन्हें सांत्वना देनी पड़ी। लेकिन कुछ लोगों के तो रंग ही बदल गये। भारत से वे ऐसे कतराने लगे मानो उसे छूत का रोग हो। अग्रवाल जी को ही ले लीजिये, एक दिन बोले, "भाई भारत! कहीं तुमने तो उसे पहले गाली नहीं दे दी, गुस्सा तुम्हें जल्दी आ ही जाता है। गोरों की शिष्टता से अनभिज्ञ होने के कारण हम लोग गलती कर बैठते हैं ......।"

वास्तविक घटना से मित्रों का यह बर्ताव और भी कटु था। भारत की दशा नाजुक थी। चौराहे पर प्रतीक्षा करते हुये यदि कोई कार पीछे या बगल में रूकती तो भारत के रोंगटे खड़े हो जाते थे। ऐसी परिस्थिति में आठ माह बीत गये और पुलिस के केस की तारीख आ गई।

भारत अपनी पत्नी के साथ न्यायालय कक्ष में पहुँचा जहाँ दो सिपाहियों ने उसका स्वागत किया। कुछ ही समय पश्चात नीले नेत्र, काले बाल, सुगठित तन वाला लंबा युवक भी आ गया। वह चिथड़े कपड़े पहने था, जिन पर रंग बिरंगे पेन्ट के दाग लगे थे। लग रहा था जैसे पेंटों की होली खेलकर आया हो। सिपाही उसे कहीं अलग ले गये और पन्द्रह मिनट बाद लौट आये।

"कृपया हमारे साथ आप चलिये।" दोनों सिपाही भारत को लेकर एक कक्ष में घुसे और भारत के साथ अलग-अलग कुर्सियों पर बैठ गये। भारत के सामने की दीवार में महारानी ऐलिजाबेथ का चित्र लगा था। सिपाहियों और भारत के बीच एक मेज थी।

"तथाकथित अपराधी नौजवान अपना कसूर मानने को तैयार है। उसका नाम जेम्स ऐलियट है। इसका यह पहला अपराध है। अगर आप अनुमति दें तो हम उसे छोटे स्तर के कसूर में चार्ज करें।

"क्यों ?" भारत ने प्रश्नसूचक भाव में कहा।

"ऊँचे स्तर के अपराध में केस दो साल चलेगा। हम आपकी तरफ से लड़ेंगे, किन्तु जीत–हार तो वकीलों की दलीलों पर ही होगी। नीचे स्तर के कसूर में ऐलिएट को सजा तो होगी ही, रिकार्ड भी हो जायेगा। ऊँचे स्तर के जुल्म की निम्नतम सजा नीचे स्तर के जुल्म की उच्चतम सजा के बराबर ही है। नौजवान यदि फिर ऐसा करेगा तो बड़ी कड़ी सजा पायेगा। आप अपना निश्चय बताइये।" सिपाही बोल रहे थे।

सहसा ऐलिजाबेथ रहीम बन गई और चित्र से बोलने सी लगीं :–

"क्षमा बड़े को उचित है, छोटन को उत्पात,
का रहीम हरि को घटो जो भृगु मारी लात।"

गाँधी जी के शब्द "पापों से घृणा करो पापी से नहीं" कानों में भारत के गूँजने लगे। भगवान कृष्ण की गीता के सोलहवें अध्याय का निम्न श्लोक भी प्रतिध्वनि करने लगा।

"तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता,
भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत।"

जिसका हिन्दी रूपान्तर इस प्रकार होने लगा :–

"तेज, क्षमा, धृति, शौच, अवैर, निज पूज्यता भाव रिक्त,
पार्थ! ये लक्षण दैवी संपदा को प्राप्त जो व्यक्ति।"

"ठीक है" भारत बोला, "मैं उसे माफ करता हूँ। यदि उसे अपनी त्रुटि का भान हो गया तो उससे कह दें कि सब ईश्वर की संतान हैं, हमें प्रेम से रहना चाहिये। संभवतः यह प्रहार हम दोनों के लिये कुछ शिक्षादायक हो जाये।"

कोर्ट के केस की सुनवाई हुई। जेम्स ऐलियट खूब रोया। जज ने उच्चतम सजा दी और ताड़ना भी। सिपाही "पार्किंग स्थान" तक भारत व उसकी पत्नी को छोड़ने आये जो असामान्य बात थी।

कुछ दिनों बाद एक पार्टी में भारत पर लोग खूब हँसे।

"हम हिन्दुओं की बड़ी कमजोरी है कि हम तुरंत क्षमा कर देते हैं।"
"अरे साहब! क्षमा वमा कुछ नहीं डरपोक जाति है।"

"भारत जी ने तो अपने को हिन्दू भी नहीं कहा। कम से कम उस बदमाश को यह तो पता चलता कि हिन्द ही इतना उदार हो सकता है।"

"आपको माफ नहीं करना चाहिये था। नालायक 'होंकी' को ऊँचे अपराध में सजा के लिये केस लड़ना चाहिये था।" ....

व्यंग्यात्मक शब्दों की वर्षा हो रही थी। भारत वहाँ से उठ गया। भारत के हृदय में जेम्स ऐलियट के लिये कोई घृणा न थी। जातीय प्रहार का शिकार होकर भी उसमें जातीयता की भावना उत्पन्न न हुई। भारत को विश्वास हो गया था कि जातीय प्रहार का उपचार प्रतिकार नहीं वरन जातीयता पर प्रहार करना है। ऐसी गतिविधियों और संस्थानों का उत्थान करना है कि जातीयता भी गुलामी की तरह इतिहास में ही निवास करने लगे।

"जातीय प्रहार का यही सही उपचार है, "भारत का अंतःकरण अनुनाद करता ही जा रहा था।

शिक्षा में काल परिवर्तन के साथ ही शिक्षा का स्वरूप उत्तरोत्तर परिवर्तित हुआ है एवं इसका क्षेत्र भी व्यापक हो चुका है। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था की यदि हम बात करें तो यह परम्परागत पाठ्यक्रमों से इतर वैज्ञानिक, प्रौद्योगिकी, अन्वेषण आदि से सम्बद्ध अनेक नवीन एवं महत्वपूर्ण पाठ्यक्रम भी प्रारम्भ हुये हैं और इसमें निरन्तर प्रगति भी चल रही है। प्राचीन गुरूकुल पद्धति की समाप्ति के पश्चात प्रारम्भ हुए शासकीय-अर्द्धशासकीय शिक्षण-प्रशिक्षण विद्यालय एवं संस्थाओं का स्वरूप, परिवर्तन की धारा से अछूता नहीं रहा है। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था की बात करें तो आज निजीकरण व स्वायत्तता को आवश्यक माना जाने लगा है। यद्यपि इसके दुष्परिणामों के प्रति आशंकाएं शिक्षाविदों और समाज विज्ञानियों द्वारा प्रकट की जाती रही हैं। जिससे राष्ट्र में चर्चा एवं परिचर्चा का वातावरण बनता जा रहा है। कृपया उपरोक्त विषयों पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुये शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख/लेख प्रेषित कर रचनात्मक सहयोग देने की कृपा करें।

दलित विमर्श के अंतर्द्वन्द्व एवम् सामाजिक सरोकार

✍ डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

इक्कीसवीं सदी की शैशवावस्था में जब साहित्य के कुलीन साधक यथार्थ की दुनिया से पलायन कर उत्तर–आधुनिकता का घोंसला गढ़ रहे हैं, वहीं वर्तमान का दलित साहित्य मनुष्यता के लिए संघर्ष कर रहा है। भविष्य की इक्कीसवीं सदी हिन्दी साहित्य की मूल चेतना उत्तर–आधुनिकतावादी चेतना नहीं, दलित चेतना होगी, क्योंकि दलित चेतना आधुनिकता के मूल्यों को छोड़ने की नहीं, ग्रहण करने की है, उत्तर–आधुनिकतावादियों में जनतंत्र के लिए जो नकार भाव है, उसके अपने कारण हैं। जनतंत्र व्यापक रूप में अब उसके निहित स्वार्थों की रक्षा करने में असमर्थ हो गया है। समय साक्षी है कि अब इसकी सीढ़ियों पर चढ़कर काले, दलित और पिछड़े तबके के लोग सामने आ रहे हैं। विज्ञान एवं जनतंत्र से मुक्ति के साथ दलित साहित्यकार उत्तर–आधुकितावाद के नये शिगूफे को भी नजरअंदाज करता है।

दलित साहित्य संकीर्णता का साहित्य नहीं है और न ही यह कोई नया वर्णवाद गढ़ रहा है। इसका प्रमुख आदर्श विखण्डन की जगह सामंजस्य एवं सम्पूर्णता को लेकर है। दलित चेतना शब्द ही नहीं वरन् एक दृष्टिकोण का परिचायक है और यह दृष्टिकोण करुणा, आपसी भाई–चारा और समानता का विस्तृत फलक लिये हुए है, जो अपनी वर्गीय पहचान के लिए सतत् संघर्षरत् है। विश्व के जिन राष्ट्रों ने औपनिवेशिक दासता की गुलामी झेली है और जिन सामाजिक समूहों को सामंती–वर्णवादी पीड़ा झेलनी पड़ी है। ऐसी परिस्थितियों में उन्होंने सामाजिक–राजनीतिक अंतर सम्बन्धों की ज्यादा मानवीय व्याख्या प्रस्तुत की है। इसलिए वर्तमान का दलित लेखन, साहित्य की निम्न वर्गीय अभिव्यक्ति है और मेरी समझ में इसमें कोई दो राय नहीं कि यह दलित लेखक हर तरह की संकीर्णता का निषेध चाहता है।

हिन्दी साहित्य जगत की मुख्यधारा के लेखन में साधन सम्पन्न लेखकों की एक लम्बी फेहरिस्त है, ये ऐसे लेखक हैं जिनको किसी पहचान की जरूरत नहीं है, इनकी रचनाएं इनके विचारों का उद्‌गार होती हैं जिन्हें हर वर्ग के पाठक पढ़ना पसंद करते हैं, वहीं दूसरी ओर लेखकों का एक वर्ग ऐसा भी है जो अपने आत्म–सम्मान, अपनी अस्मिता की सकारात्मक छवि निर्माण के लिए लेखन कार्य में जुटा हुआ है, ये साहित्यकार अपने उद्‌गारों से कहीं बढ़कर अपने भोगे हुए पीड़ादायक अनुभवों को अपनी लेखनी में पिरोकर प्रस्तुत करने के लिए संघर्षशील हैं, भारतीय समाज में जातीय अस्मिता जातियों की एक प्रकार से सामूहिक एवं सामाजिक अस्मिता के रूप में रही है, इनकी अभिव्यक्ति विभिन्न कालखंडों में रचे गए जातीय इतिहास से होती है, इतिहास लेखन के प्रारम्भिक दौर में अन्यों से संवाद की स्थिति बनी रही, वहीं बाद में यह टकराव संवादी ढ़ांचा के रूप में उभरता है।

✍ वरिष्ठ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, डी. वी. (पी. जी.) कालेज, उरई (जालौन)

वैश्वीकरण एवम् आधुनिकता की बयार आने से वर्तमान में दलित समुदाय में अपनी पहचान निर्माण की दिशा में नई चेतना जागृत हुई है, यह समुदाय अब पूरे आत्मविश्वास के साथ अपने अतीत के अनुभवों को अपनी लेखनी द्वारा समाज में ला रहा है। दलित लेखक व साहित्यकार अपने समाज पर होने वाले अत्याचारों व जुल्मों के प्रत्यक्ष गवाह हैं। इस पीड़ादायक अनुभव को ये लेखक अपने साहित्य द्वारा प्रकाश में ला रहे हैं। इनका लेखन तकलीफ का लेखन है, ये उस वर्ग की रचनाएं हैं जिन्हें परम्परावादी समाज ने मूलभूत अधिकारों एवं शिक्षा से वंचित रखा था। इस प्रकार के दलित लोकप्रिय साहित्य का आधारभूत एजेंडा दलितों के मध्य उनकी अस्मिता की रचना करना तथा परम्परावादी साहित्य के समान्तर अपना साहित्य तैयार करना भी है, दलित समाज के बीच वर्तमान में लिखने की आकांक्षा के साथ–साथ पढ़ने की उत्सुकता भी बढ़ी है। फलतः दलितों के मध्य एक व्यापक पाठक वर्ग भी पिछले कुछ वर्षों से विकसित हुआ है।

आज दलित समाज के ये सामाजिक चिंतक एवं साहित्यकार सदियों से चली आ रही अपनी छवि को बदलने के लिए तत्पर हो उठे हैं, इस वर्ग की एक व्यावहारिक समस्या यह थी कि अब तक उन्हें उच्च वर्ग द्वारा थोपी गई दासता व पहचान के साथ जीना पड़ रहा था, परन्तु अब स्थितियाँ कालचक्र के अनुसार तेजी से दलितों के पक्ष में परिवर्तित हुई हैं। परम्परावादियों द्वारा स्थापित विश्वास व भ्रामक पहचान को तोड़कर व दलितों ने आज एक नई पहचान निर्मित करने की चुनौती को स्वीकार कर लिया है।

भारतीय वर्ण व्यवस्था के खांचे में हमेशा दलित समाज दबा रहा है, इनकी पहचान 'नीच', 'अधम', 'पंचम', 'अछूत', 'असभ्य' जैसे विशेषणों से की जाती रही है। ऐसी सामाजिक व्यवस्था के चलते दलित वर्ग शिक्षा से दूर ही रहा, अशिक्षित रहते हुए भी यह समाज सुनकर, देखकर याद करने में लगा रहा और अपनी मौखिक अभिव्यक्ति को साधन बनाकर विचार बांटता रहा। इस कड़ी में लोक साहित्य, लोककला, लोक संगीत उसे बेहद प्रिय लगे। ये लोक गायक उन्हें अपने लगते और पढ़ा–लिखा लेखक समाज उन्हें गैर लगता। यहां पर दलित समाज द्वारा जब साहित्य पढ़ा ही नहीं जा रहा था, तब समाज में परिवर्तन कैसे सम्भव था। अधिसंख्य समाज जिसे जागृत करना नितांत आवश्यक था, अशिक्षित अथवा अर्द्धशिक्षित था, ऐसे में समाज का यह दलित वर्ग अशिक्षित ही रहा, उसे पढ़ने ही नहीं दिया गया। वेदों एवं पुराणों का भय दिखाकर उनके मानसिक स्तर को दबाया गया, जिससे कागज की लेखनी वह पढ़ नहीं पाया था, फिर भी वह देखकर, सुनकर मौखिक याद कर समझने की कोशिश में लगा रहा। अतः इस वर्ग ने मौखिक ज्ञान को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। यही कारण है कि इस वर्ग में लिखित परम्परा की कमी के कारण मौखिक अभिव्यक्ति को ही वरीयता हासिल रही, जिसके चलते दलित वर्ग में लिखित ज्ञान का अभाव होता चला गया। यही कारण रहा कि दलित समुदाय अपनी अनगिनत महत्त्वपूर्ण रचनाओं को लिपिबद्ध नहीं कर पाया और जीवन का दग्धरूपी अनुभव (ज्ञान) उन्हीं के साथ खत्म होता चला गया।

धीरे–धीरे समय में बदलाव आना शुरू हुआ और समाज में शिक्षा के महत्व को बढ़ावा मिला। इसमें भी ईसाई मिशनरी और अछूतानन्द व ज्योतिबा फुले, डॉ. अम्बेडकर जैसे महापुरुषों ने विशेष प्रयास

कर दलित समुदाय में शिक्षा का प्रकाश फैलाया। फिर इस वर्ग ने शिक्षा को अपना हथियार बनाकर अपने इतिहास को लिखना शुरू किया, जैसे–जैसे शिक्षा का महत्व बढ़ता गया वैसे–वैसे अपनी पहचान निर्माण की इच्छा दलित वर्ग में और बलवती होती गई। इन्होंने अपने सम्पूर्ण गौरवमयी अतीत को लेखनी में बांधना शुरू किया और सदियों से उपेक्षित दलित समाज की पीड़ा अब साहित्य के माध्यम से सामने आ रही है।

समाज में बदलाव के लिए यह नितांत आवश्यक है कि समाज में साहित्य हो, क्योंकि साहित्य ही समाज को शिक्षित बनाता है, जागरूकता लाता है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि ये साहित्य की पुस्तकें भी उसी समाज के द्वारा लिखी गई हों। गरिमामयी पहचान के अभाव में दलित बिना जड़ के मृतप्राय पेड़ की तरह है, कोई भी व्यक्ति, समाज और ऐसा समुदाय जिसकी कोई लिखित संस्कृति परम्परा, इतिहास न हो वह जीवित होते हुए भी मृतक के समान है। साहित्य का काम समाज की संवेदनाओं को झकझोरकर उसमें प्रगतिशील चेतना का संचार करना तथा उसे एक दिशा देना है। हमें पूरा विश्वास है कि वर्तमान का दलित साहित्य इस काम को पूरी तरह अंजाम दे रहा है।

दलित विमर्श आज के युग का ज्वलंत मुद्दा ही नहीं, बल्कि यह एक राष्ट्रीय समस्या के रूप में उभरकर सामने आया है, क्योंकि साहित्य एवं साहित्येत्तर विधाओं में दलित साहित्य, दलित चिंतन, दलित चेतना, दलित समाज, दलित संस्कृति, दलित राजनीति, दलित विमर्श का मनोविज्ञान, दलित विमर्श एवं ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, दलित विमर्श की परम्परा, दलित चिंतन के सामाजिक सरोकार को लेकर विश्वव्यापी विचार विमर्श एवं चिन्तन हो रहे हैं। एक बात जो मुझे बार–बार सालती रही कि आज हम भले ही कितना दलित चिंतन एवं परम्परा के नाम पर बढ़–चढ़कर बातें करें कि यह विकास की प्रौढ़ावस्था में है और समृद्धि की ओर अग्रसर है, परन्तु विमर्श की बात तो स्वीकारी जा सकती है लेकिन प्रकाशन के नाम पर कुछ ही लेखकों की कृतियाँ दलित साहित्य पर गैर दलित साहित्यकारों के द्वारा लिखित तो उपलब्ध होती हैं, परन्तु दलित लेखकों की कृतियों का पुस्तकालयों में पूर्णतया अभाव ही नजर आता है। इसके कुछ भी कारण हो सकते हैं, इसे मैं परिभाषित करना नहीं चाहूँगा', हाँ दलित चिंतन की परम्परा में एक सकारात्मक पहलू के रूप में हमें जो देखने में आया वह यह कि आये दिन दलित साहित्य पर विमर्श और राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठियों का आयोजन हो रहा है। पत्र–पत्रिकाओं में दलित विशेषांक छप रहे हैं अर्थात् अब थोड़ा–थोड़ा स्थान प्रकाशन में भी दिखने और मिलने लगा है, परन्तु जितना स्थान मुख्य धारा के साहित्य को मिलता है वह स्थान इसे अभी नहीं मिल पा रहा है। आज इस प्रकाशन एवं वितरण व्यवस्था पर शिद्दत के साथ चिंतन एवम् मनन की आवश्यकता है।

कोटा नहीं सच्चा दिल चाहिये

✍ कु. रंजिता पुरवार

भारत एक विविधता से पूर्ण देश है। यहाँ अनेक जाति, भाषा और धर्म के लोगों का निवास है। साथ ही यहाँ अनेक सामाजिक समूह और श्रेणियाँ भी हैं जिनकी आर्थिक और सामाजिक स्थिति में भिन्नता है। कुछ लोग सम्पन्न और समाज में श्रेष्ठ है तो कुछ सामाजिक दृष्टि से निम्न और निर्धन भी हैं। यहाँ तक कि कुछ लोग गरीबी की रेखा के नीचे जीवन बिता रहे हैं। ऐसे लोगों में कुछ निम्न जाति के माने जाते हैं जिन्हें समाज में न केवल हेय दृष्टि से देखा जाता है वरन् उसके साथ तिरस्कार और छुआछूत का बर्ताव भी किया जाता है। ये दलित और दुर्बल वर्ग के लोग समाज के उच्च वर्ग के शोषण और उत्पीड़न के शिकार रहे हैं।

आजादी के बाद संविधान द्वारा मौलिक अधिकारों के माध्यम से समानता की स्थापना के प्रयास किये गये हैं और छुआछूत व जातिगत भेदभाव को दण्डनीय अपराध घोषित किया गया है। इसके बावजूद भेदभाव आज भी जारी है। आज भी छुआछूत के कारण उच्च जातियाँ इनसे एक निश्चित दूरी बनाये रखना चाहती हैं, उन्हें आज भी उनके मौलिक अधिकारों से व्यवहार में वंचित रखने की कोशिश की जाती है। बेगार लेना या उनसे जबरदस्ती काम करवाना, उनकी सम्पत्ति पर अधिकार कर लेना, छोटी मोटी बातों पर उनका उत्पीड़न, दलित स्त्रियों से बलात्कार, सामाजिक दृष्टि से उनका अपमान आदि बातें आज भी घटित हो रहीं हैं।

यद्यपि प्रशासन ने दलितों के जीवन स्तर को ऊपर उठाने के लिये अनेक योजनायें लागू की हैं। उनके लिये भूमि या घरों का आवंटन, बँधुआ प्रथा की समाप्ति, बच्चों की शिक्षा के लिये विशेष सुविधायें जैसे निःशुल्क शिक्षा, छात्रावास सुविधा, आर्थिक सहायता, बजीफे की व्यवस्था आदि पर प्रशासन जोर दे रहा है। उनके लिये प्राथमिक चिकित्सा की सुविधा और आधुनिक अस्पतालों की व्यवस्था की जा रही है। उनको दी गयी सुविधाओं में सबसे महत्वपूर्ण है आरक्षण की व्यवस्था। शैक्षणिक संस्थाओं एवं नौकरियों में आरक्षण की सुविधायें, पद के लिये निर्धारित योग्यता में छूट, आयु सीमा में छूट, यात्रा–भत्ता की सुविधायें और आसान शर्तों पर ऋण आदि के द्वारा उनकी शिक्षा के स्तर के साथ ही आर्थिक स्तर को ऊपर उठाने की कोशिश जारी है। इतना ही नही इन लोगों की जनसंख्या के अनुपात के आधार पर लोकसभा, राज्यसभा एवं विधानसभाओं में इनके लिये स्थान आरक्षित किये गये हैं। ये उपबन्ध पंचायती राज संस्थाओं में भी लागू किये जा चुके हैं।

परन्तु यदि आरक्षण का उद्देश्य गरीबी और पिछड़ेपन को दूर करना है तो व्यवहारिक रूप से यह व्यवस्था उद्देश्य पूर्ति में पूरी तरह सफल नहीं रही है। साथ ही इसके अनेक अवांछनीय परिणाम भी

✍ वेलमार एवेन्यू, डेलि सिटी, सैनफ्रान्सिको

सामने आ रहे हैं। योग्यता में छूट के कारण जहाँ अयोग्य चयन से तकनीकी संस्थाओं में अवनति हो रही है। वहीं योग्य व प्रतिभावान अनेक प्रतिभागियों को अवसर कम मिल रहे हैं। आरक्षण की अवधि 10–10 वर्षों के लिये बढ़ायी जाती रही है और व्यवस्था राजनैतिक वोट बैंक की शिकार बन गयी है। देश में जातिगत समानता की स्थापना के स्थान पर जातिगत असमानता बढ़ रही है।

दुनिया के अन्य देशों में पिछड़े, दलित या अल्पसंख्यकों के लिये योग्यता को ताक पर रखकर इस प्रकार की आरक्षण पद्धति कहीं नहीं अपनायी गयी है। उदाहरण के लिये अमेरिका में अश्वेत लोग समाज में आज भी पिछड़े हुये, निर्धन और अल्पसंख्यक हैं। ये मूल रूप से अफ्रीका के हैं जो मजदूरी करके यहाँ आये और गोरे लोगों द्वारा बन्धक और दास बना लिये गये। ये नीग्रो या हब्शी कहलाते थे जिन्हें अफ्रीका से जहाज में भरकर लाकर यहाँ गुलाम के रूप में बेच दिया जाता था। इनसे परिश्रम के काम कराये जाते थे और गोरे मालिकों द्वारा इन पर अमानवीय अत्याचार होता था।

अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पहली बार इसे एक सामाजिक बुराई के रूप में देखा गया। 1808 में एक कानून बनाकर गुलामों के आयात पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। अब्राहम लिंकन के राष्ट्रपति बनने के बाद दास प्रथा पर रोक लगाने के प्रयास तेज हुये। सितम्बर 1862 में उन्होंने 'विमुक्ति घोषणा' जारी की जिसके द्वारा दासों की आजादी की घोषणा कर दी गयी। इसके लिये सैनिक कार्यवाही भी की गयी। हजारों दासों ने मुक्ति प्राप्त की और वे सेना में शामिल होते गये पर 1864 के गृहयुद्ध के बाद ही दिसम्बर, 1865 में पारित अमेरिकी संविधान संशोधन बिल द्वारा दास प्रथा की पूर्ण समाप्ति सम्भव हो पायी। फिर भी काले–गोरे का भेदभाव यहाँ जारी रहा। समाज में अश्वेतों की स्थिति हेय बनी रही।

1954 से 1968 तक इनके द्वारा नागरिक अधिकार आन्दोलन चलाया गया। मार्टिन लुथर किंग इसके प्रमुख नेता थे। राष्ट्रपति कैनेडी एवं राष्ट्रपति जॉनसन की उदारवादी नीति के परिणामस्वरूप 1964 में नागरिक अधिकार अधिनियम पारित हुआ और सामाजिक स्तर पर भेदभाव का अन्त हुआ। 1965 में उन्हें मतदान का अधिकार प्राप्त हुआ। उनके लिये नीग्रो शब्द का प्रयोग बन्द हुआ। आज अमेरिका में वे सम्मानित नागरिक के रूप में अफ्रीकन–अमेरीकन कहलाते हैं। सामाजिक, शैक्षणिक, राजनैतिक सभी क्षेत्रों में उनके सामने अवसरों की समानता है। आज अमेरिकी प्रशासन के सर्वोच्च पद पर बराक ओबामा आसीन हैं जो अमेरिकी संघ के प्रथम अश्वेत राष्ट्रपति हैं। देश में विभिन्न क्षेत्रों में अनेक उच्च पदों पर अश्वेत लोग कार्य कर रहे हैं।

इन सबके बावजूद अनेक वर्षों की दासता और भेदभाव के कारण अफ्रीकन–अमेरीकन यूरोपियन अमेरीकन की तुलना में पिछड़े हुये हैं, शिक्षा, आवास, स्वास्थ्य की सुविधायें उनके लिये अपर्याप्त है, उनकी बस्ती अविकसित है, गरीबी के कारण उनमें अपराध–प्रवृत्ति है। यद्यपि ये अश्वेत लोग अमेरिका की कुल जनसंख्या के केवल 15% हैं, इनमें 24% गरीबी की रेखा के नीचे जीवन यापन कर रहे हैं। प्रशासन ने इनके विकास पर यद्यपि विशेष ध्यान दिया है परन्तु यहाँ आरक्षण की कोई व्यवस्था कभी लागू नहीं की

गयी है। विभिन्न पदों पर नियुक्ति, चयन आदि में कोटा की कोई व्यवस्था न होते हुये भी अश्वेत लोगों के सभी क्षेत्रों में उचित स्थान देने पर जोर दिया जाता है। हमारे देश की तरह उन्हें योग्यता या आयुसीमा में कोई छूट नहीं मिली है पर यदि श्वेत एवं अश्वेत अभ्यर्थियों में योग्यता समान हैं तो अश्वेत को ही प्राथमिकता मिलती है। बिना आरक्षण के अवसर की यह समानता उन्हें अमेरीकावासियों की ईमानदारी और निष्ठा की भावना के कारण ही मिल पाती है जिसे यह सकारात्मक कार्यवाही कहा जाता है। वास्तव में आरक्षण और पुनः उसके साथ योग्यता और आयुसीमा में छूट अपने आप में एक अनुचित और अन्यायपूर्ण धारणा है जिसे लम्बे समय तक लागू रखना दुर्भाग्यपूर्ण है। यह पिछड़े हुये को अधिकार देना नहीं उन पर दया करना है, उनके सही विकास को बाधित करना है।

भारत जैसे देश में जरूरत इस बात की है कि पिछड़े हुए लोगों की प्रतिभा का विकास करके उन्हें वास्तव में सक्षम और योग्य बनाया जाये जिससे उन्हें आरक्षण की आवश्यकता ही न पड़े। अधिक योग्य प्रतिभागी के स्थान पर कम योग्य का चयन देश की प्रगति में बाधक ही है। यदि सभी लोग सच्चे दिल, ईमानदारी और निष्ठा से प्रयास करें, सभी दल आरक्षण की आग में रोटियाँ सेंकना बन्द करें तो ऐसे में सही अर्थ में एक ऐसे राष्ट्र का निर्माण होगा जिसमें भेदभाव का कोई स्थान नहीं होगा अन्यथा आरक्षण की राजनीति देश को पतन की ओर ले जायेगी।

साक्षरता का सच यह है कि केन्द्र सरकार द्वारा सन् 1978 में चलायी गयी व अनपढ़ों को साक्षर बनाने की योजना राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम दम तोड़ता नजर आ रहा है। अधिकतर साक्षरता केन्द्रों में लगे ताले इस बात के साक्षी हैं कि निरक्षरों को साक्षर बनाने का सपना बेमानी साबित हो रहा है। कृपया उपरोक्त विषयों पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुये शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख/लेख प्रेषित कर रचनात्मक सहयोग देने की कृपा करें।

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में गीता के कर्मयोग की सार्थकता

✍ डॉ. प्रदीप कुमार दीक्षित

गीता सुगीता कर्त्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिः सृता।।[1]

सम्पूर्ण विश्व साहित्य में श्रीमद्भगवद्गीता का अनुपम स्थान है। यह साक्षात् श्री कृष्ण भगवान् के श्री मुख से निःसृत परम रहस्यमयी कल्याणकारी अलौकिक वाणी है। इसमें श्रीकृष्ण ने स्वयं अर्जुन को निमित्त बनाकर मानव जाति के कल्याण के लिए सारगर्भित उपदेश दिया है। इस लघु ग्रन्थ में भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने हृदय के बहुत ही विलक्षण भाव भर दिए हैं, जिनका आज तक कोई पार नहीं पा सका और न ही पा सकता है। गीता में संस्कृति, राजनीति, कूटनीति एवं दर्शन की ऐसी पावन गंगा प्रवाहित हो रही है जिसमें अवगाहन कर मानव अमिट संतोष, तृप्ति का अनुभव करता है।

वास्तव में श्रीमद्भगवद्गीता द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, विशुद्धाद्वैत अचिन्त्य– भेदाभेद आदि किसी वाद को अथवा किसी एक सम्प्रदाय को या किसी एक सिद्धान्त को लेकर नहीं चली है। गीता का प्रमुख लक्ष्य तो यह है कि मानव चाहे जिस वाद, सिद्धान्त या मतावलम्बी क्यों न हो, उसका प्रत्येक दशा में कल्याण हो। वह किसी भी परिस्थिति में परमात्मप्राप्ति से वंचित न रहे। वास्तव में देखा जाए तो परमात्मा से वियोग कभी हुआ ही नहीं, होना सम्भव ही नहीं। क्योंकि संसार से माने हुए संयोग के कारण परमात्मा से वियोग प्रतीत हो रहा है। संसार में माने हुए संयोग का त्याग करते ही परमात्म तत्व के इच्छुक व्यक्ति को अतिशीघ्र ही नित्योग की अनुभूति होने लगती है, और शनैः शनैः उसमें स्थायी स्थिति हो जाती है। वैसे वस्तुस्थिति तो यह है कि परमात्मा को मानने अथवा जानने में विश्व का कोई भी दृष्टान्त सम्यक् और सटीक नहीं बैठता, कारण स्पष्ट ही है – संसार को जानने अथवा मानने में तो मन, बुद्धि साथ में रहते हैं किन्तु परमात्मा की अनुभूति स्वयं से होती है। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि संसार को मानने अथवा जानने का तो आरम्भ और अन्त है, किन्तु परमात्मा का कोई आरम्भ और अन्त नहीं होता। स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि हमारा संसार के साथ सम्बन्ध है ही नहीं, जबकि परमात्मा के साथ हमारा (स्वयं का) सम्बन्ध सदैव है, और सदैव रहेगा।

श्रीमद्भगवद्गीता के योग कर्मयोग, ज्ञानयोग और सांख्ययोग – ये तीनों ही साधन करण–निरपेक्ष अर्थात् स्वयं से होने वाले हैं। कारण की क्रिया और पदार्थ अपने और अपने लिए नहीं है, अपितु दूसरों के और दूसरों की सेवा के लिए है, मैं शरीर नहीं हूँ और शरीर मेरा नहीं है। मैं ईश्वर का हूँ और ईश्वर मेरा है। इस प्रकार विवेक पूर्वक किया गया चिन्तन करण सापेक्ष अथवा अभ्यास नहीं है, क्योंकि

✍ एसो. प्रोफेसर अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, अकबरपुर कालेज, अकबरपुर (कानपुर देहात)

इसमें जड़ता से सम्बन्ध विच्छेद है। अतः कर्मयोग में स्वमेव जड़ता का त्याग होता है, ज्ञानयोग में स्वयं ही स्वयं को जानता है और भक्ति योग में व्यक्ति स्वयं ही ईश्वर की शरण में चला जाता है। कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग इन तीनों योग मार्गों में विवेक की महती आवश्यकता पड़ती है। "मैं सर्वथा शरीर से भिन्न हूँ"—इस प्रकार का विवेक होने पर ही मुक्ति की इच्छा उत्पन्न होती है। मुक्ति की बात तो दूर रही, स्वर्गादि प्राप्ति की अभिलाषा भी स्वयं को शरीर से अलग मानने पर ही उत्पन्न होती है। इसलिए तीनों योगों में विवेक की आवश्यकता निश्चित ही है। भगवान श्रीकृष्ण ने विवेक को बड़े ही सरल ढंग से समझाया है, इसमें आत्मा, अनात्मा, प्रकृति, पुरूष, ब्रह्म, अविद्या, ईश्वर, जीव, जगत, माया किसी भी दार्शनिक शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। अतः विवेक को महत्व देकर मनुष्य परमप्राप्ति कर सकते हैं। विवेक और बुद्धि में भी अन्तर है, क्योंकि नित्य और अनित्य, सत् और असत्, अविनाशी और विनाशी, शरीर को पृथक–पृथक समझने के लिए विवेक की ही आवश्यकता होती है, बुद्धि की नहीं। विवेक बुद्धि से परे है। विवेक ही बुद्धि में प्रकट होता है। यह भगवान द्वारा प्रदान किया गया विवेक मात्र प्राणियों को नित्य प्राप्त है। विवेक जाग्रत होने पर ही बुद्धि शुद्ध तथा सम हो जाती है और बुद्धि का विषम भाव मिट जाता है।

कर्मयोग में बुद्धि के एक निश्चय की प्रधानता है इस तथ्य को भगवान श्रीकृष्ण स्पष्ट रूप से प्रकट करते हैं –

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम्।।"[2]

अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण उपदेश देते हुए कहते हैं कि हे कुरुनन्दन! इस सम्बुद्धि की प्राप्ति के विषय में व्यवसायात्मिका बुद्धि एक ही होती है। अन्य व साथी मनुष्यों की बुद्धियाँ अनन्त और बहुशाखाओं वाली ही होती हैं। कर्म का जीवन से अटूट सम्बन्ध है। हाँ यह अलग बात है कि कर्म की भी अपनी श्रेणियाँ हैं। वर्ण, आश्रम, स्वभाव परिस्थित के अनुसार जो शास्त्रविहित कर्तव्य–कर्म सामने आ जाये, उसको कामना, ममता और आसक्ति का सर्वथा त्याग करके करना तथा कर्म की सिद्धि और असिद्धि में सम रहना 'कर्मयोग' है। वस्तुतः कर्म करना चाहिए किन्तु उससे प्राप्त होने वाले फल की इच्छा व्यक्ति को नहीं करनी चाहिए। भगवान कृष्ण अर्जुन को समझाते हुए कहते हैं कि –

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदायन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।।"
"योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।।"[3]

अर्थात् कर्त्तव्य कर्म करने में ही तेरा अधिकार है, फलों में कभी नहीं अतः हे अर्जुन! तू कर्मफल का हेतु भी मत बन, और तेरी अकर्मण्यता में भी आसक्ति न हो। हे धनंजय! तू आसक्ति का मोह त्याग

करके सिद्ध–असिद्ध में सम होकर योग में स्थित हुआ कर्मों को कर, क्योंकि समत्व ही योग कहलाता है। आग्नेय पुराण में भी कामना रहित होकर कर्मोद्धत व्यक्ति श्री हरि का कृपाभाजन बनता है, और उसका जीवन बाधा रहित हो जाता है –

"प्रारम्भमात्रमिच्छा वा विष्णुधर्मे न निष्फला।
न चान्य धर्माकरणात् दोषवान् विष्णु धर्मकृता।।"[4]

कुछ इसी प्रकार के भाव 'पञचरात्रागम वचन' में भी प्राप्त होते हैं, निष्कामकर्म के अनुष्ठान पूर्वक ही परमात्मदर्शन होते हैं और दर्शन से सभी विघ्न स्वतः समाप्त हो जाते हैं –

"प्रवृत्तिकालादारभ्य आत्मलाभावसानिकम्।
यत्रावकाशो विघ्नानां विद्यते न कदाचन्।।"[5]

यह बात तो निश्चित ही है कि मनुष्य कर्मयोग, ज्ञानयोग एवं भक्तियोग किसी भी मार्ग में कर्म किए बिना नहीं रह सकता है, क्योंकि (प्रकृति के) परवश हुए सभी प्राणियों से प्रकृतिजन्य गुण कर्म कराते हैं– श्रीमद्भगवद्गीता कहती है – ?

"न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ।।[6]

प्रकृतिजन्य गुण सतोगुण, रजोगुणो एवं तमोगुण ये तीन होते हैं। ये ही देहधारी को बाँधते हैं। इन्हीं गुणों के बन्धन से मुक्त होकर जीव जन्म जरा एवं मृत्यु के भय से मुक्त हो जाता है, और मोक्ष को प्राप्त होता है। कोई भी शरीरधारी सभी कर्मों का पूर्णरुप से त्याग नहीं कर सकता है। ज्ञानी पुरुष निष्काम भाव से मोक्षपर्यन्त कर्म करता है। ऐसी विचार शृंखला अश्वमेधपर्व में भी परिलक्षित होती है –

"नैष्कर्म्य न च लोकेऽस्मिन् मुहुर्तमपि लभ्यते।।[7]"

श्रीमद्भगवद्गीता का कर्मयोग शास्त्र विहित कर्म करने की ओर आकृष्ट करता है। भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को शास्त्रोक्त कर्म करने के लिए प्रेरित करते हुए कहते हैं कि –

"नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येकर्मणः।।"
तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरूषः।।"[8]

अर्थात् हे अर्जुन! शास्त्रोक्त प्रकार से बतलाये गये कर्त्तव्य कर्मों को कर, क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है, तथा कर्म न करने से तेरा शरीर – निर्वाह भी सिद्ध नहीं होगा। इसलिए हे अर्जुन! तुम निरन्तर मोहरहित होकर कर्त्तव्य कर्म का सम्यक रूप से पालन करो, क्योंकि मोहरहित होकर कर्म करता हुआ व्यक्ति परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। राजा जनक जैसे परम विद्वान भी कर्मों के माध्यम से सिद्धि को प्राप्त हुए हैं। इसलिए लोकमर्यादा को सुरक्षित रखने के लिए निष्काम भाव से कर्म करो –

"कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।
लोकसंगहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि।।"[9]

श्रीमद्भगवद्गीता में मधुसूदन ने अर्जुन को कर्म किस प्रकार से करें जिससे व्यक्ति कर्मशील रहते हुए परमात्मा को प्राप्त कर सके, लोकापवाद, पाप इत्यादि से भी मुक्ति भी पा सके। क्योंकि महर्षि पतंञजलि ने भी मन की चित्तवृत्तियों के निरोध को योग कहा है–

"योगः चित्तवृत्तिनिरोधः।"[10]

जर्नादन कृष्ण अर्जुन को कर्म हेतु प्रेरित करते हुए कर्म की महत्ता बतलाते हुए कहते हैं कि –

"तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः।।
गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते।।"[11]

अर्थात् हे महाबाहो! गुण – विभाग और कर्म – विभाग को तत्त्व से जानने वाला महापुरुष सम्पूर्ण गुण ही गुणों में बरत रहे हैं – ऐसा मानकर उसमें आसक्त नहीं होता है। जिस समय यह पुरुष कामनाओं को त्यागकर केवल अपने आपसे ही सन्तुष्ट रहने लगता है, दुःखों में दुख रहित और सुखों में स्पृहा रहित होकर जब वह राग, भय, क्रोध में लिप्त न होकर निष्काम भाव से कर्म करता है, उसी समय वह परमकल्याण को प्राप्त कर लेता है। सब कामनाएं जिस योगी में पहुँचकर समुद्र में असंख्य जल धाराओं के समान समाकर खो जाती हैं वहीं शान्ति पाता है– कामनाओं का इच्छुक शान्ति नहीं प्राप्त कर सकता। सभी कामनाओं का त्याग और निःस्पृहता ममता का अभाव तथा अहंकार की शून्यता से ही शान्ति मिलती है जिससे अन्तकाल में ब्रह्मानन्द की प्राप्ति हो जाती है।

वस्तुतः वर्तमान में ही मानव को कर्म करने की, मोक्ष प्राप्त करने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई हो ऐसा नहीं है, अपितु जब से मानव में समझ व बुद्धि आई है अथवा वह ज्ञानवान् हुआ है और उसने अपने जीवन को सुव्यवस्थित एवं प्रगतिशील बनाने हेतु विज्ञान के नये–नये चमत्कारिक आविष्कार प्रारम्भ किए हैं, उसी समय से मानव मस्तिष्क में सत्कर्मों के प्रति प्रतिबद्धता एवं मोक्ष प्राप्त करने की ललक स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। आज जो हमें विश्व का प्रत्येक क्षेत्र विकास के सोपानों पर आरूढ़ दिखाई देता है, वह कर्मशील मानव के सत्कर्मों का ही परिणाम है। कर्म की प्रेरणा सभी वेदों, शास्त्रों, स्मृतिग्रन्थों आदि से प्राप्त होती है।

श्रीमद्भगवद्गीता तो कर्मयोग की जीती जागती प्रतिमूर्ति ही है। आधुनिक समय में अति विकास की अन्धी दौड़ में जहाँ मानव–मानव न रहकर एक मशीन बन चुका है, स्वार्थपूर्ति में इतना लिप्त हो चुका है, जिससे जीवन के मूल्य समाप्तप्राय हो गये हैं। मानवता का अर्थ गौण हो गया है। ऐसी भयावह स्थिति के समय श्रीमद्भगवद्गीता हमें निष्काम कर्म हेतु पग–पग पर प्रेरित करती है, और मानव जीवन का लक्ष्य क्या है ? गीता में उस लक्ष्य को कैसे प्राप्त किया जा सकता है। उस लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु उन्मुख करती है।

वास्तव में यदि श्रीमद्भगवद्गीता का सम्यक् अध्ययन किया जाये तो निर्विवाद रूप से मनुष्य को सांसारिक माया , मोह, भ्रमजालों आदि से बड़ी सरलतापूर्वक छुटकारा मिल सकता है, और ईश्वर प्रदत्त मानव जीवन के उपहार को स्वीकार कर बड़े ही आनन्द के साथ जीवन यापन कर सकता है। वास्तव में गीता हमें निष्काम कर्म करने की प्रेरणा प्रदान करती है और साथ ही साथ अपना और लोक का कल्याण करने की शिक्षा देती हुई वास्तविक जीवन बिताने के लिए उत्साहित एवं प्रेरित करती है। आधुनिक परिप्रेक्ष्य में यद हम श्रीमद्भगवद्गीता के अनुरूप आचरण करते हुये इस नश्वर संसार में जीवन व्यतीत करते हैं। यही सच्चे अर्थों में जीवन की सार्थकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.	महाभारत	—
2.	श्रीमद्भगवद्गीता	2/41
3.	श्रीमद्भगवद्गीता	2/47 एवं 48
4.	आग्नेयपुराण	—
5.	पञ्चरात्रागम वचन	—
6.	श्रीमद्भगवद्गीता	3/5
7.	अश्वमेघ पर्व	20/7
8.	श्रीमद्भगवद्गीता	3/8 एवं 19
9.	श्रीमद्भगवद्गीता	3/20
10.	पातंञ्जलि योगसूत्र	1/2
11.	श्रीमद्भगवद्गीता	3/28

परोपकार की भावना

✍ डॉ. राजेश कुमार

मानव एक सामाजिक प्राणी है। अतः समाज में रहकर उसे अन्य प्रणियों के प्रति कुछ दायित्वों का भी निर्वाह करना पड़ता हैं। इसमें परहित या परोपकार की भावना पर आधारित दायित्व सर्वोपरि हैं। जिनके हृदय में परहित का भाव विद्यमान है। वे संसार में सब कुछ कर सकते हैं। उनके लिए कुछ भी दुर्लभ नही सर्व सुलभ है।

परहित वस जिनके मन माहीं
तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं

क्या कभी शीत में काँपती हुई किसी वृद्धा को कम्बल उड़ाते समय तुमने उसकी आँखों में झांककर देखा है अथवा भूख के बिलबिलाते बच्चे को दो रोटी देते समय उसके कोमल कपोलों पर उभरती मुस्कान को देखा है। क्या तुमने सड़क पार करने की प्रतीक्षा में खड़े वृद्ध का हाथ पकड़ कर सड़क पार कराते समय उसके चेहरे पर फैली झुर्रियों को पढ़कर देखा है। अथवा क्या तुमने ज्वर की तीव्रता में बड़बड़ाते किसी युवक को औषधि पिलाते समय उसके शान्त ओठों को बुदबुदाते हुए देखा है। कैसे असीम सुख और आह्लाद की अनुभति होती हैं। उन नेत्रों में वस्तुतः परोपकार का आनन्द ही अद्भुत होता है।

"वह शरीर क्या जिससे जग का कोई भी उपकार न हो।
वृथा जन्म उस नर का जिसके मन में दया विचार न हो"।

सभी मनुष्य समान है भगवान द्वारा बनाये गये समस्त मानव समान है। अतः इसमें परस्पर प्रेम होना ही चाहिये किसी व्यक्ति पर संकट आने पर दूसरों को उसकी सहायता करनी चाहिये। दूसरों को कष्ट से कराहते हुए देखकर भी भोग विलास में लिप्त रहना उचित नहीं है। अकेले ही भांति भांति के भोजन करना और आनन्दमय रहना तो पशुओं की प्रवृति है। मनुष्य तो वही है जो मानव मात्र हेतु अपना सब कुछ निछावर करने के लिए तैयार रहे।

"यही पशु प्रवृत्ति है कि आप आप ही चरें।
वही मनुष्य है जो मनुष्य के लिए मरे"।

सूर्य सबके लिए प्रकाश प्रकीर्ण करता है। चन्द्रमा की शीतल किरणें सभी का ताप हरती हैं। मेघ सभी के लिए जल की वर्षा करते हैं। वायु सभी के लिए जीवन दयनीय है। फूल सबके लिए सुगन्ध लुटाते

✍ प्रवक्ता, संस्कृत विभाग, गौरी शंकर द्विवेदी, महाविद्यालय, झींझक (कानपुर देहात)

हैं। वृक्ष अपने फल स्वयं नही खाते हैं। और नदियां अपने जल को संचित करके नही रखतीं। इसी प्रकार सत्पुरूष भी दूसरों के हित के लिए अपना शरीर धारण करते हैं।

"वृक्ष कबहुँ नहिं फल भखैं नदी न संचै नीर,
परमारथ के कारने साधुन धरा शरीर,

परमारथ के कारण महान व्यक्तियों ने अपने शरीर तक का त्याग कर दिया है वृत्तासुर के ताप से चारों ओर त्राहि–त्राहि मची थी उसका वध दधीचि ऋषि की अस्थियों से निर्मित बज्र से ही हो सकता था उसके अत्याचार से दुखी होकर देवराज इन्द्र दधीचि की सेवा में उपस्थिति हुये और उनसे उनके अस्थि के लिए याचना की महर्षि दधीचि ने प्राणायाम के द्वारा शरीर त्याग दिया और इन्द्र ने उनकी अस्थियों से बनाये गये वज्र से वृत्तासुर का वध किया।

इसी प्रकार महाराज शिवि ने एक कबूतर का प्राण बचाने के लिए अपने शरीर का मांस भी दे दिया। सचमुच वे महान पुरूष धन्य हैं। जिन्होंने परोपकार के लिए शरीर एवं प्राणों की भी चिन्ता नही की।

"क्षुधार्त रन्तिदेव ने दिया करस्थ थाल भी
तथा दधीचि ने दिया परार्थ अस्थि जाल भी
उषीवर क्षितीष ने स्वमांस दान भी किया
सहर्श वीर कर्ण ने शरीर चर्म भी दिया,,
अनित्य देह के लिए अनाधि जीव क्या डरे।
वही मनुष्य है जो मनुष्य के लिए मरे।

हमारे देश के अनेक महान सन्तों ने भी लोक कल्याण की भावना से प्रेरिक होकर अपना सम्पूर्ण जीवन " सर्वजनहिताय" समर्पित कर दिया। महान देश के भक्तों ने अपने प्राणों की बलि दे दी। परोपकार की भावना से मानव के आध्यात्मिकता का विकास होता है। परोपकार की भावना से ही आगे बढ़कर विश्वबन्धुत के रूप में परिणत होता है। परोपकार के द्वारा परस्पर भाई चारे की भावना तथा सभी मानव को अलौकिक आनन्द की अनुभूति होती है।

"परोपकाराय पुण्याय पापाय परपीडनम"
चार वेद छः शास्त्र में बात मिली है दोय
दुख दीन्हें दुःख होत है सुख दीन्हे सुख होय

रहीम परोपकार की महिमा का गान करते हुए लिखते हैं। परोपकारी को स्वतः ही आनन्द की उपलब्धि उसी प्रकार होती है। जिस प्रकार लगाने वाले के हाथों में मेहदी का रंग स्वयं ही आ जाता है।

रहिमन यों सुख होत है उपकारी के संग।
बाँटनवारे को लगै ज्यौं मेंहदी कौ रंग।।

परोपकारी का जीवन आदर्शवादी होता है। उनका यश चिरकाल तक स्थाई रहता है। वर्तमान युग में लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, महात्मा गांधी, पं. मदन मोहन मालवीय, डा. राजेन्द्र प्रसाद, भगत सिंह, चन्द्रशेखर, नेताजी, लाल, बाल, पाल तथा मंगल पाण्डेय आदि परोपकार एवं लोक कल्याण की भावना से प्रेरित होने के कारण जन जन के श्रद्धासुमन बने। परोपकार से राष्ट्र का चरित्र जाना जाता है। हमारा राष्ट्रीय संस्कृति आज भी प्रासंगिक है।

परहित सरिस धर्म नहि भाई। पर पीड़ा सम नहि अधिमाई।

आज शिक्षा परिदृश्य से जो सबसे महत्वपूर्ण पहलू गायब है वह है शिक्षा और शैक्षणिक अवसरों में समानता। हालाँकि प्रारम्भिक शिक्षा के लोकव्यापीकरण के नाम पर सरकार की तरफ से कई कार्यक्रम आये, कई नारे उछाले गये, लेकिन दरअसल पिछली आधी सदी की इस शिक्षा कथा में कोई फर्क नहीं आया है। चाहे यह 2001 का सरकारी सर्व शिक्षा अभियान हो या वह चाहे 2002 का 93वाँ संशोधन विधेयक या फिर 2002 में आयी बिरला-अंबानी रिपोर्ट हो या वह चाहे 1999 में बना राष्ट्रीय पाठ्यक्रम फ्रेमवर्क ही क्यों न हो समानता का पहलू साफ-साफ नदारद रहा है। आज भी देश का हर दूसरा बच्चा स्कूल से बाहर है। समतामूलक और शोषणविहीन समाज की स्थापना जो वर्तमान विषमतामूलक समाज को चुनौती दे, जिससे एक जागरूक व परोपकारी शोषणविहीन समाज की स्थापना हो इसका एक ही रास्ता है - शिक्षा। लेकिन कैसी शिक्षा ?सबको समान गुणवत्ता वाली, सार्थक और उपयोगी शिक्षा। क्योंकि शिक्षा ही सामाजिक बदलाव का औजार है। विशेष तौर पर यह औजार प्राथमिक या प्रारम्भिक शिक्षा बन सकती है।

सबको शिक्षा, समान शिक्षा के लिये भरपूर वित्तीय संसाधन (अच्छे कानूनों की तरह) आवश्यक शर्त हैं लेकिन पर्याप्त नहीं और यह पर्याप्त आयेगी विभिन्न कारकों की सामूहिक सक्रियता से। इस आधार पर कि पर्याप्तता की शर्तें क्रियान्वयन के मद्देनजर जटिल व कठिन है, आवश्यक शर्तों को ही अप्रासंगिक ठहराना, कम से कम मेरी समझ से तो, सवालों की जमीन बदलने जैसा है। निश्चित तौर पर शिक्षा तंत्र में आंतरिक खामियां मौजूद हैं। इसलिये शिक्षा के लिये वित्तीय आवंटन न बढ़ाने के पक्ष में इसे तर्क के तौर पर पेश किया जाता है। अगले सकारात्मक कदमों को रोकने के लिये क्रियान्वयन निश्चित ही बढ़ा मुद्दा है, फिर भी नीति क्रियान्वयन से पहले है किसी गलत नीति या खराब कानून को चाहे कितनी ही ईमानदारी और सक्षम तरीके से क्यों न लागू किया जाये, उससे कभी अच्छे नतीजे नहीं मिल सकते। आगे का रास्ता तो साफ नजर आता है, लेकिन क्या राजनेताओं के पास उस मंजिल तक पहुँचने की दृढ़ इच्छा शक्ति है ? कृपया उपरोक्त विषयों पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुये शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख/लेख प्रेषित कर रचनात्मक सहयोग देने की कृपा करें।

कालिदास साहित्ये लोक कल्याणस्य भावना

✍ डॉ. सुनीता तिवारी

कालिदासगिरां सारं कालिदास सरस्वती।
चतुर्मुखोऽथवा ब्रह्मा विदुर्नानये तु मादृशः।।

– मल्लिनाथ

संस्कृत साहित्य और कालिदास दोनों का सम्बन्ध अटूट है रामायण और महाभारत ये तो आर्षकाव्य सारे संस्कृत के कवियों के उपजीव्य हैं उसी प्रकार कालीदास के काव्य, नाटक उनके पश्चाद्वर्ती सभी कवियों के लिए अनुकरणीय बने हैं उपनिषद, भवदत्गीतादि धर्म शास्त्र तथा मोक्षशास्त्र के ग्रन्थ, महाभारत के अनेक पर्वो एवं पुराणों में स्वतंत्र रूप से विद्यमान अर्थशास्त्र और कामशास्त्र के ग्रन्थ ये सब कालिदास के ग्रन्थों के उपजीव्य हैं।

रघुवंश काव्य के आरम्भ में महाकवि ने रघुकुल के राजाओं का महत्व एवं उनकी योग्यता का वर्णन करने के बहाने प्राणिमात्र के लिए कितने ही प्रकार के रमणीय उपदेश दिए हैं जिस कार्य को कोई बड़ा सुधारक चारों ओर घूमकर, उपदेशों की झड़ी लगाकर कर सकता है उसे महाकवि कालिदास जी ने संसार के एक कोने में बैठकर अपनी लेखनी के बल से सदा के लिए कर दिखाया है।

सोहमाजन्मशुद्धानामाफलोदयकर्मणाम्।
आसमुद्रक्षितीशानामानाकरथवर्त्मनाम्।।

इस प्रकार रघुवंश काव्य में कालिदास ने रघुवंशी राजाओं को निमित्त बनाकर उदार चरित पुरूषों का स्वभाव समाज के समक्ष रखा है।

कामपुरूषार्थ का बहुत अच्छा चित्रण महाकवि ने अपने काव्य में किया है कामपुरूषार्थ की निसर्ग दुर्लभता और उसको प्राप्त करने के अनेक सरल सुगम उपाय तथा उस पुरूषार्थ का उपयोग करने वाले विविध व्यक्तियों के स्वभाव वर्णन आदि सब विषय आबालवृद्ध सभी को स्वभाव से ही प्रिय है तथा उनके ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं और यही उनकी उपादेयता का कारण है यथा :–

अद्यमृत्यवन्ताङ्गि तवास्मि दासः
कीतस्तपोमिरिति वादिनि चन्द्रमौलो।

– कुमार संभव, सर्ग 5, श्लोक 86

✍ रीडर संस्कृत विभाग, गुरू नानक गर्ल्स पी0 जी0 कॉलेज, कानपुर

कालिदास ने मालविकाग्निमित्र में नाटक के लिए ऐसा नायक चुना जो उनके समकालीन राजाओं में से था अग्निमित्र शुंगवंश के एक साधारण राजा थे यह उस समय का चरित्र चित्रण है और इसी को उन्होंने नाटक का प्रधान विषय बनाया है। यद्यपि महाभारत और रामायण में वर्णित राजर्षि के समान अग्निमित्र उदात्त चरित्र के नही थे तथापि नायक के सभी साधारण गुणों से सम्पन्न अवश्य थे। महाकवि कालिदास जी ने अपने दूसरे नाटक विक्रमोर्वशीय में विशिष्ट पात्रों की मनोभावनाएं सूक्ष्म से सूक्ष्म विशिष्ट संगीत विज्ञान के साथ प्रकट करके उन्होंने नाट्य कला में दूसरा प्रसंशापात्र पाया है।

शाकुन्तलम् के रूप में उनका तीसरा नाटक है यह सबसे सर्वांग सुन्दर उपदेशों से भरी हुई, मानवस्वभाव की विचित्रता को प्रदर्शित करने वाली सभी देशों और कालों के अनुरूप कमनीय अभिनय कलापूर्ण कृति अभिज्ञान शाकुन्तल के रूप में प्रकट हुई और उसने नाटक–जगत् में सदा के लिए सर्वत्र श्रेष्ठ स्थान प्राप्त कर लिया विद्वानों में यह श्लोक प्रसिद्ध ही है।

'काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला'।

अर्थात अधिक क्या कहा जाये शाकुन्तल की एक पंक्ति भी दोषग्रस्त नही है इतना ही नही प्रत्येक पंक्ति में एक न एक विशेषता है। कालिदास के तीनों काव्यों का अपना–अपना अलग वैशिष्ट्य है। कालिदास अर्धनारी नटेश्वर शंकर भगवान के उपासक थे। ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीनों के प्रति उनकी अभेद बुद्धि थी। विशिष्ट कार्यों के कारण एक परमतत्व के तीन प्रकार के अभिधान के मूल प्रकृति के गुणों के अनुसार तीन नाम है सृजन, पालन और संहरण, राजस, सात्त्विक और तामस प्रकृति के कार्य होने के कारण कार्य भेद से एक ही परतत्त्व की ब्रह्मा, विष्णु और महेश ये तीन प्रतीक मूर्तियां हैं।

कुमारसंभव में भी कालिदास ने दर्शन के उदात्त तत्त्व चैतन्य का सर्व व्यापित्व बड़ी रमणीयता से झलकाया है।

इयेष सा कर्तुमवन्ध्ययपतां
समाधिमास्थायं तपोमिरात्मनः।

— कुमार संभव, सर्ग 5/2

अर्थात कालिदास का सारा प्रयत्न प्रेम और समाधि दोनों को एक ही जगत दिखाने का था क्योंकि प्रणिमात्र का परम पुरूषार्थ अभ्युदय और निःश्रेयस इन दोनों को एकत्र पाने में ही है। यह शिक्षा कालिदास के ग्रन्थों से ही मिलती है मेघदूत काव्य भी कवि की कोरी कल्पना का फल नही है जिसके अनुपम वर्णन तथा श्रंगार सर्वस्व को कालिदास ने अपने अत्यन्त अनुकूल मन्दाक्रान्ता वृत्त में भर दिया है यक्ष की अन्तिम हार्दिक इच्छा यही है कि – हे मेघ'

माभूदेवं क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोगः।

— उत्तरमेघ, 58

अर्थात हे मेघ! इस प्रकार तुम्हारा कभी बिजली से वियोग न हो। कालिदास के काव्यों में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों का वर्णन दिखायी देता है।

कालिदास के काव्य की एक प्रमुख विशेषता है संघः पर निर्वति अर्थात् तात्कालिक परमानन्द की जो काव्यों के पढ़ने के साथ ही मिलता है। 'तथा विद्यं प्रेम पतिश्च तादृशः' यहाँ भगवान के विषय में भक्ति रूप प्रेम से परमरूप प्रभु को प्राप्त करना है। यह तपपूर्वक बिना समाधि के नहीं प्राप्त हो सकता है वही ध्वनि काव्य का उत्तम गुण व्यंजना व्यापार, कालिदास साहित्य के सभी ग्रन्थों में अनुस्यूत है इसी लोक कल्याण की भावना के कारण वे सर्व उपादेय बन गये हैं।

महाकवि भवभूति की उक्ति 'वज्रादपि कठोराणि मृदुनि कुसुमादपि।' लोकात्तराणां चेतांसि को नु विज्ञातुमर्हति।

अर्थात संसार से निराले उन महापुरूषों के मन को कौन जान सकता है जो वज्र से भी अधिक कठोर और फूल से भी अधिक कोमल होते हैं। यह उक्ति महाकवि कालिदास पर पूर्णतः चरितार्थ होती है।

शैक्षणिक प्रबन्ध तंत्र की खामियों को दूर कर गुणवत्ता बढ़ाने और शिक्षण पद्धति में सकारात्मक परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाली पैनल इन्पेक्शन की बात तो अब जमाने की बात हो गयी है। यदि होती भी है तो केवल खाना पूर्ति हेतु। यहाँ तक कि पुराने शिक्षण इस बात को भूल से गये हैं। इसके प्रत्युत्तर में जिम्मेदार अफसर कहते है कि अस्सी के दशक के बाद विधालयों का संख्यात्मक विकास हुआ है लेकिन उसके अनुपात में जिला विद्यालय निरीक्षक एवं सहायक जिला विद्यालय निरीक्षकों की तैनाती नहीं हो पायी है और यह विवशता आज भी जारी है। कृपया उपरोक्त विषयों पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुये शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख/लेख प्रेषित कर रचनात्मक सहयोग देने की कृपा करें।

अध्यात्म एवम् दर्शन

सर्वोदय : एक अविरल चिन्तनधारा

✍ डॉ. राकेश कुमार शुक्ल

संपूर्ण विश्व में भारत एक ऐसा विशिष्ट देश रहा है जिसने मानव सभ्यता और संस्कृति के आरम्भ से ही मानव–जाति के सम्मुख आचार–विचार, ज्ञान–विज्ञान, नीति एवं दर्शन का आदर्श प्रस्तुत किया है तथा वर्तमान युग में भी इसी दिशा में अग्रसर है। मन में एक प्रश्न निरन्तर उठता रहा कि वास्तव में वे कौन से तत्व और विचार रहे हैं जिनसे सम्पूर्ण मानव–जाति प्रभावित होती रही है और जिसमें सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण का भाव निहित है। एतदर्थ मुझे प्राचीन ऋषियों के अमर वाक्य 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' एवं 'बसुधैव कुटुम्बकम्' ने अपनी ओर आकृष्ट किया जो वर्तमान युग में महात्मा गांधी और उनके आध्यात्मिक शिष्य विनोबा भावे के सर्वोदयी विचारों में परिलक्षित होता है।

सर्वोदय (=सर्व+उदय) का अर्थ है– 'सबका उदय'। अर्थात "सबका उदय", "सब प्रकार से उदय" और "सबके द्वारा उदय" ही सर्वोदय है। 'सबका उदय' इसका साध्य है, 'सब प्रकार से उदय' इसकी विशेषता है और 'सबके द्वारा उदय' इसका साधन है। सब प्रकार से उदय के पीछे नैतिक एवं आध्यात्मिक भावना काम करती है जिसमें लौकिक एवं पारलौकिक उत्थान एवं अभ्युदय की सिद्धि का समावेश है।

सर्वोदय की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए महात्मा गांधी ने स्वयं कहा कि सबके भले में अपना भला है। सब सुखी हम सुखी। अतः सर्वोदय में 'सर्वभूत हिते रताः' की कल्पना का समावेश है। दादा धर्माधिकारी के अनुसार "सबका जीवन साथ–साथ सम्पन्न हो .... सबका सह – विकास हो .... एक साथ समान रूप से सबका उदय हो, यही सर्वोदय है।"

सर्वोदय किसी का उदय हो और किसी का अस्त हो, ऐसी बात नहीं करता, बल्कि यह सबके उदय की बात करता है। जैसा कि विनोबा ने कहा भी है कि "सर्वोदय कुछ लोगों का अथवा बहुत लोगों का या अधिकांश लोगों का ही उदय नहीं चाहता। हम अधिकतम संख्या के अधिकतम हित से ही संतुष्ट नहीं है। हम ऊँचे व नीचे, सबल व निर्बल, विद्वान व मूर्ख सभी के हित से ही संतुष्ट हो सकते हैं। हम केवल तभी संतुष्ट हो सकते हैं। सर्वोदय शब्द से इस उच्च तथा सर्वव्यापी भावना का बोध होता है।" अतः सर्वोदय ऊँच–नीच, अमीर–गरीब, धनी–निर्धन, सबल–निर्बल, विद्वान–मूर्ख, अगड़े–पिछड़े सभी का, शत–प्रतिशत का, उत्थान एवं कल्याण चाहने वाली विचारधारा है। इसका मानना है कि 'सबके उदय की भावना' केवल एक देश या कुछ देशों के लोगों तक ही सीमित नहीं होनी चाहिए, बल्कि इसे विश्व व्यापी अर्थात् सारे संसार का कल्याण करने वाला होना चाहिए।

✍ वरिष्ठ प्रवक्ता, राजनीति विज्ञान विभाग, के. बी. पी. जी. कालेज, मीरजापुर

सर्वोदय 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' के सिद्धान्त में विश्वास नहीं करता बल्कि यह 'सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय' के सिद्धान्त में विश्वास रखता है। इसी आधार पर यह पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन उपयोगितावाद से भिन्न और श्रेष्ठ बन जाता है क्योंकि उपयोगितावाद 'अधिकतम संख्या के अधिकतम सुख' को ही अपना लक्ष्य मानता है जबकि सर्वोदय सम्पूर्ण समाज के उदय को अपना लक्ष्य मानता है। महात्मा गांधी के ही शब्दों में "सबका उदय = सर्वोदय, 'अधिक से अधिक लोगों का अधिक से अधित हित' वाले सिद्धान्त को नहीं मानता। उसे नग्न रूप में देखें तो उसका अर्थ यह होता है कि 51 फीसदी लोगों के माने गए हित की खातिर 49 फीसदी लोगों के हितों का बलिदान कर दिया जाय। यह सिद्धान्त निर्दय है और मानव समाज को इससे बड़ी हानि हुई है। 'सब लोगों का अधिक से अधिक हित' करना ही एक सच्चा, गौरवपूर्ण और मानवोचित सिद्धान्त है।"

लेकिन सर्वोदय (सर्व+उदय= सबके उदय) की अवधारणा बिल्कुल नयी नहीं है। यद्यपि एक राजनीतिक चिन्तन एवं विचारधारा के रूप में 'सर्वोदय' विचार एक नवीन एवं आधुनिकतम भारतीय चिन्तन–धारा है जो मूल रूप से उस गांधीवादी चिन्तन पर आधारित है जिसमें समाज के प्रत्येक व्यक्ति का सर्वांगीण कल्याण एवं उत्थान का भाव सन्निहित है। लेकिन अपने आरम्भिक रूप में यह विचार अत्यन्त प्रचीन काल से ही भारतीय समाज में विद्यमान रहा है।

वैदिक कालीन ग्रन्थों से पता चलता है कि प्राचीन भारतीय समाज वर्णाश्रम व्यवस्था पर आधारित थी जिसके अन्तर्गत समाज चार वर्णों – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र–में विभक्त था। समाज का यह विभाजन कर्म पर आधारित था, न कि जन्म पर। जिसका आधार यह था कि प्रत्येक वर्ण के लोग अपने–अपने कर्त्तव्य का पालन करें, जिससे समूचे समाज का सर्वांगीण विकास हो सके।

इन चार वर्णों में ब्राह्मणों को सर्वोच्च स्थिति प्राप्त थी। ब्राह्मण का कार्य विद्या अध्ययन–अध्यापन, यजन–याजन आदि था। वह यज्ञ के माध्यम से सभी वर्णों में तेज तथा कल्याण की कल्पना करता है तथा अपने ज्ञान के द्वारा स्वयं के साथ समाज को भी सतपथ पर अग्रसर करने हेतु सचेष्ट रहता है। महाभारत में कहा गया है कि ब्राह्मण केवल वेदों के स्वाध्याय से ही कृतकृत्य होता है। वह कोई दूसरा कार्य करे या न करे, सब जीवों से मैत्री भाव रखने के कारण वह 'मैत्र' है।

क्षत्रिय का मुख्य कार्य जनता की सुरक्षा करना है। महाभारत के अनुसार, जो क्षत्रियोचित युद्ध आदि कर्म का सेवन करता है, वेदाध्ययन, दान, प्रजा की रक्षा करता है, वही क्षत्रिय है। क्षत्रिय धर्म के बारे में महाभारत में कहा गया है कि "वह दान तो करें, किन्तु दूसरों से याचना न करें, स्वयं यज्ञ करें किन्तु पुरोहित बनकर दूसरो का यज्ञ न करावें, वह अध्ययन करें किन्तु अध्यापन न करें और प्रजाजनो का सभी प्रकार से पालन करते रहें। वह लुटेरों और अत्याचारियों के वध के लिए सदा तत्पर रहें तथा रणभूमि में पराक्रम दिखावें।"

वर्ण–व्यवस्था में तीसरा स्थान वैश्य को दिया गया है। वैश्य का मुख्य कार्य व्यापार करना और खेती करना था। महाभारत के अनुसार, जो वेदाध्ययन से सम्पन्न होकर व्यापार, पशुपालन और खेती का काम करके अन्न संग्रह करने की रूचि रखता है, वह वैश्य कहलाता है। मनु ने वैश्यों के 7 कर्म पशुओं की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, पढ़ना, व्यापार करना ब्याज लेना तथा खेती करना आदि बताये हैं।

समाज का चौथा अंग शूद्र था। इसका मुख्य कार्य तीनों वर्णों की सेवा करना था। महाभारत के अनुसार, प्रजापति ने अन्य तीनों वर्णों के सेवक के रूप में शूद्र की सृष्टि की है। अतः शूद्र के लिए तीनों वर्णों की सेवा ही शास्त्र–विहीत कर्म है। इसी प्रकार मनुस्मृति एवं गीता में भी शूद्र का कार्य सेवा करना बताया गया है।

स्पष्ट है कि प्राचीन भारतीय राज्य व्यवस्था एवं समाज व्यवस्था में कार्य विशिष्टीकरण के आधार पर वर्ण–व्यवस्था लागू थी, जिसमें हर वर्ण अपने–अपने क्षेत्रों में समाज के अनिवार्य कार्य करते हुए समष्टि रूप में सामाजिक विकास में योगदान करते है, जहाँ पर समानता, सामंजस्य और सभी के उदय की भावना थी। ऐसी राज्य व्यवस्था में सभी व्यक्तियों, वर्गों तथा संस्थाओं आदि का समान कल्याण और सर्वोदय होता है। वस्तुतः प्राचीन युगीन वर्ण व्यस्था में व्यक्ति हित के साथ–साथ समष्टि हित की प्रेरणा थी जो कि सर्वोदय की भावना है।

वर्ण व्यवस्था की ही भांति सामाजिक व्यवस्था को सुव्यवस्थित बनाए रखने के लिए आश्रम व्यवस्था की स्थापना की गई थी। जहाँ वर्ण व्यवस्था सामाजिक संघटन के लिए बनी थी, वहीं आश्रम व्यवस्था व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक विकास के लिए थी। आश्रम व्यवस्था जीवन को सुव्यवस्थित एवं सुनियोजित ढंग से संचालित करने की एक सुविचारित प्रक्रिया थी। यह आश्रम व्यवस्था भी वर्ण व्यवस्था की ही भांति चार भागों–ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थ आश्रम एवं सन्यास आश्रम में, विभक्त थी। महाभारत के अनुसार ब्रह्मचर्य आश्रम साधना और अध्ययन का, गृहस्थाश्रम लोक कल्याण का, वानप्रस्थ आश्रम वेद शास्त्रों के स्वाध्याय का और सन्यास आश्रम मोक्ष साधना का समय माना गया है।" वस्तुतः आश्रम व्यवस्था व्यक्ति की आवश्यकताओं के अनुरूप उपयुक्त व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक आधार प्रदान करने वाली थी। वर्ण–व्यवस्था की ही भांति, आश्रम व्यवस्था का उद्देश्य भी व्यक्तिगत अभ्युदय के साथ–साथ सामाजिक अभ्युदय अर्थात सामाजिक सर्वोदय था। लेकिन वैदिक काल के बाद वर्ण–व्यवस्था में धीरे–धीरे परिवर्तन आने लगा और कर्मजा व्यवस्था का रूप जन्मजा लेने लगी।

प्राचीन साहित्यों में अनेक स्थान पर सर्वोदय यानि सभी प्राणियों के अभ्युदय से सम्बन्धित विचार मिलते हैं। प्राचीन ऋषियों के इस परमपुरातन आदर्श 'सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मां कश्चिद् दुःख भागभवेत्।।' में भी सभी के कल्याण यानि सर्वोदय की भावना निहित है। वेदों में भी सभी प्राणियों के उदय की बात निहित है। 'जगत में जो कुछ स्थावर–जंगम है, वह सारा ईश्वर में ही व्याप्त है। वह अन्तर्यामी ईश्वर सारे जगत् में छाया हुआ है। ईश्वर ने जो कुछ दिया है उसका त्याग

पूर्वक भोग करो तथा किसी के भी धन का लालच मत करो।' तथा संगच्छध्वं सं वदध्वं' (सभी मनुष्य भली प्रकार मिल जुलकर रहें) और शतहस्त समाहर, शहस्त्र हस्त संकीर (सौ हाथों से कमाओ, हजार हाथों से बांटो) जैसे वाक्यों में सर्वोदयी विचार मिलते हैं। महाभारत में भी 'सर्वभूत हिते रताः' (सबके हित में अपना हित देखने) की बात कही गयी है।

इसी तरह भागवत पुराण में भी सबके भले की बात कही गयी है। वस्तुतः प्रचीन भारतीय समाज में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना व्याप्त थी जो सभी का, सारे संसार का कल्याण करना चाहती है।

स्पष्ट है कि उपरोक्त सभी तथ्यों में सर्वोदय की भावना का बोध होता है लेकिन स्पष्ट रूप से सर्वोदय का पहला प्रयोग जैनाचार्य स्वामी समन्तभद्र ने सर्वोदय तीर्थ के रूप में किया था।आचार्य महावीर के इन संदेशों 'संसार में जितने भी त्रस एवं स्थावर प्राणि हैं उनमें से किसी भी प्राणी की हम मन, वचन और काया से हिंसा न करें तथा प्राणियों के प्रति वैसा ही भाव रखो, जैसा अपनी आत्मा के प्रति रखते हो' में भी सबके उदय का भाव निहित है। गौतम बुद्ध के इस उपदेश में "सब प्राणी सुखी हों, सबका कल्याण हो सभी अच्छी तरह रहें," में भी सर्वोदय की भावना निहित है ।

न केवल हिन्दू, जैन और बौद्ध साहित्यों में सर्वोदयी विचार मिलते हैं, बल्कि विदेशों से शुरू हुई यहूदी, ईसाई और मुस्लिम धर्म ग्रन्थों में भी सर्वोदयी विचार मिलते हैं। "पृथ्वी परमेश्वर की सारी भूमि न तो बेची जाय, न भूमि पर किसी की मिलकियत रहे। बीच–बीच में वह परती छोड़ दी जाय, गरीबों को चुनने के लिए, पशु–पक्षियों को चुगने चरने के लिए।" यहोवा (यहूदी धर्म से सम्बन्धित) के इस पवित्र संदेश में भी सर्वोदय की भावना निहित है। इसाई धर्म में भी 'सबसे प्रेम करने' तथा प्राणिमात्र की सेवा के लिए, अपना सर्वस्व न्यौछावर करने की बात कही गयी है। इसी तरह इस्लाम धर्म में भी सबसे भाईचारा बरतने, पसीने की कमाई खाने, सदाचार का पालन करने और नेकी करने पर बल दिया गया है। स्पष्ट है कि सभी धर्मों का सार सत्य, प्रेम और करूणा में है जिसमें सर्वोदयी भावना निहित है।

महान सम्राट अशोक एवं चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के शासन काल में समाज के प्रत्येक वर्ग के उत्थान एवं कल्याण की कामना पायी जाती है।

मध्य युग में भक्ति आन्दोलन की जो धारा बही, उसने धार्मिक सहिष्णुता के माध्यम से समाज में समन्वय और सबके कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया। सन्त कबीर ने विभिन्न धर्मों एवं जातियों में एकता और सामन्जस्य स्थापित करने पर बल दिया और मानव जाति को प्रेम का पाठ पढ़ाया। गुरूनानक ने भी भक्ति मार्ग का अनुकरण करते हुए सर्व–धर्म समन्वय पर बल दिया। उन्होंने सबसे पहला उपदेश दिया–'न कोई हिन्दू है, न कोई मुसलमान'। उनका मानना था कि 'सब घट ब्रह्म निवासा' हैं। सब बराबर हैं। कोई छोटा नहीं, कोई बड़ा नहीं। सबसे प्रेम करो। सबकी सेवा करो। अपना आचरण पवित्र रखो। हृदय को शुद्ध बनाओ। ईश्वर का नाम जपो और अपना जीवन ऊँचा उठाओ।" स्पष्ट है कि नानक देव के विचारों में सर्वोदय की भावना निहित है। इसी तरह तुलसी दास द्वारा रचित रामचरित मानस के 'परहित सरिस धर्म

नहीं भाई' तथा 'सम्पत्ति सब रघुपति कै आही' जैसे वाक्यों में भी समस्त समाज के कल्याण का भाव निहित है। इसी प्रकार दादू दयाल, मलिक मोहम्मद जायसी, रैदास, चैतन्य, नामदेव आदि कवियों एवं सन्तों ने भी सामाजिक एकता एवं साम्प्रदायिक सद्‌भावना स्थापित करने का प्रयास किया।

मुगलकाल में अकबर ने बाल–हत्या, सती–प्रथा, अधिक मद्यपान, गो–हत्या आदि बुराईयों पर प्रतिबन्ध लगाया और विधवा–विवाह जारी किया। अकबर ने हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच एकता और साम्प्रदायिक सौहार्द्र स्थापित करने का प्रयास किया और 'दीने–इलाही' नामक एक नया धर्म चलाया। वस्तुतः दीने इलाही के माध्यम से अकबर ने विभिन्न धर्मों, जातियों एवं सम्प्रदायों में सामन्जस्य स्थापित करके समाज के सभी वर्गों के अभ्युदय का मार्ग प्रशस्त करने का प्रयास किया था।

ब्रिटिश शासन काल में राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, एनीबेसेन्ट, अरविन्द घोष, बाल गंगाधर तिलक आदि ने तत्कालीन समाज की बुराईयों को दूर करने पर बल दिया तथा लोगों में स्वाभिमान जागृत करने का प्रयास किया, फिर भी इस दौरान सर्वोदय सम्बन्धी विचार लगभग लुप्तप्राय से थे। लेकिन राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान महात्मा गांधी जैसे धनी व्यक्तित्त्व ने सर्वोदय को उसके आधुनिक अर्थ में प्रतिपादित करके मानव समाज को एक नया और अमूल्य चिन्तन प्रदान किया जो कि आज समूचे विश्व का चिन्तन बन गया है। गांधी के अनुसार, "सबका उदय=सर्वोदय, 'अधिक से अधिक लोगों का अधिक से अधिक हित' वाले सिद्धान्त को नहीं मानता उसे नग्न रूप में देखें तो उसका अर्थ यह होता है कि 51 फीसदी लोगों के माने गये हितों के खातिर 49 फीसदी लोगों के हितों का बलिदान कर दिया जाय। यह सिद्धान्त निर्दय है और मानव समाज को इससे बड़ी हानि हुई है। 'सब लोगों का अधिक से अधिक हित करना ही एक सच्चा, गौरवपूर्ण और मानवोचित सिद्धान्त है।" स्पष्ट है कि गांधी जी सर्वजनहिताय, सर्वजनसुखाय के सिद्धान्त में विश्वास रखते थे और समग्र मानवता की सेवा करते हुए सबका कल्याण चाहते थे। वे सबके उदय के इतने पक्षपाती थे कि उन्होंने अंग्रेजी राज्य से भारत के मुक्त होने की बात सदा कही, पर कभी भी उन्होंने अंग्रेज जाति का बुरा नहीं चाहा और भारतीयों के साथ–साथ सदा उनके भी कल्याण की कामना की। आन्तरिक दृष्टि से भी गांधीजी भारतीयों के किसी एक वर्ग के पक्षपाती न होकर, समष्टि रूप में सब भारतीयों के कल्याण के पक्षपाती थे। इसलिए उन्होंने भारतीय जीवन के सभी पहलुओं को उन्नत बनाने की चेष्टा की। एक ओर उन्होंने यदि इस बात का प्रयास कि भारतीयों को राजनीतिक मुक्ति मिले तो दूसरी ओर उन्होंने इस बात का भी प्रयास किया कि भारतीय समाज से ऊँच–नीच, धनी, निर्धन, छूत–अछूत जैसी भावनाओं का आमूल उन्मूलन हो तथा सबका कल्याण अर्थात सर्वोदय हो। वस्तुतः सर्वोदय सम्बन्धी अवधारणा आधुनिक भारत को गांधी जी की एक अमूल्य देन है।

गांधी जी के बाद उनके अनन्य भक्त तथा बौद्धिक शिष्य आचार्य विनोबा भावे ने सर्वोदयी विचारों को और आगे बढ़ाने का कार्य किया। उन्होंने गांधी के सर्वोदयी विचार को सिद्धान्त और व्यवहार दोनों बिन्दुओं पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया। उन्होंने गांधी जी द्वारा आयोजित अनेक सामाजिक

कार्यक्रमों, जैसे – खादी, स्वराज्य, अस्पृश्यता निवारण, शराबबन्दी आदि को व्यवहारपरक बनाने में भी पूरी निष्ठा से योगदान दिया। विनोबा ने सर्वोदयी विचारों को विभिन्न आन्दोलनों एवं कार्यक्रमों जैसे– भूदान, ग्रामदान, सम्पत्तिदान, जीवनदान आदि के माध्यम से विकसित, पुष्पित एवं व्यावहारिक बनाने का प्रयास किया। विनोबा के अनुसार सर्वोदय निर्धनों एवं कमजोर वर्ग के लोगों के साथ ही साथ धनवानों और सबलों का भी समान रूप से उत्थान चाहता है क्योंकि "धनी लोग बहुत पहले से गिरे हुए हैं और निर्धन लोग कभी उठे ही नहीं हैं। परिणाम यह है कि दोनों को ही उठाना है" अर्थात् सभी को उठाना है, सभी का कल्याण करना है। अतः विनोबा का सर्वोदय ऊँच–नीच, धनी–निर्धन, सबल–निर्बल, विद्वान–मूर्ख सभी का, सारे संसार का कल्याण चाहता है। वस्तुतः गांधी जी ने जिस सर्वोदयी तत्व चिन्तन का बीजारोपण किया, विनोबा ने उस छोटे से पौधे को वृक्ष का रूप प्रदान किया। आगे चलकर जय प्रकाश नारायण भी सर्वोदयी आन्दोलन के एक बड़े नेता बने, जिन्होंने विनोबा के नेतृत्व में गांधीवाद को साकार बनाने वाले दर्शन सर्वोदय को अंगीकार किया। इसलिए कहा गया है 'सर्वोदय के त्रिविध प्रकाश, गांधी विनोबा, जय प्रकाश।' जिस प्रकार प्राचीन यूनान में राजनीतिक चिन्तन के क्षेत्र में सुकरात, प्लेटो और अरस्तू की त्रयी हुई तथा पिछली दो शताब्दियों में साम्यवादी दर्शन एवं क्रान्ति के क्षेत्र में मार्क्स, एन्जिल्स एवं लेनिन की त्रयी हुई, वैसे ही आधुनिक भारत में सबका कल्याण चाहने वाले सर्वोदयी चिन्तन में गांधी, विनोबा और जय प्रकाश की विलक्षण त्रयी हुई।

यद्यपि आज गांधी, विनोबा और जय प्रकाश में से कोई भी मौजूद नही है, धीरेन्द्र मजूमदार और आचार्य दादा धर्माधिकारी भी नहीं हैं, फिर भी नारायण देसाई, सिद्धराज चड्ढा, आचार्य राममूर्ति, प्रो0 ठाकुर दास बंग, विमला बहन, सरला बहन, विनय भाई, मेधा पाटेकर, सुन्दर लाल बहुगुणा, संदीप पाण्डेय जैसे प्रबल व्यक्तित्वों में हम किसी न किसी रूप में सर्वोदयी विचारधारा का प्रतिनिधित्व पाते हैं। वस्तुतः आज विश्व व्यापार, परमाणु अप्रसार, निःशस्त्रीकरण, आतंकवाद, मानवाधिकार, पर्यावरण संरक्षण आदि से सम्बन्धित जो मुद्दे उठाये जा रहे हैं तथा ओजोन परत में होने वाले सुराख के प्रति और जल सतह के निरन्तर नीचे चले जाने के प्रति जो चिन्ता व्यक्त की जा रही है उसमें भी सर्वोदय का विचार ही सन्निहित है।

अतः हम कह सकते हैं कि सर्वोदय का विचार भारत में प्राचीन काल से ही किसी न किसी रूप में अविरल रूप से विद्यमान रहा है जिसे आधुनिक युग में महात्मा गाँधी, विनोबा भावे और जय प्रकाश नारायण जैसे मनीषियों द्वारा प्रयुक्त किया गया है।

सन्दर्भ सूची

1. मो. क. गांधी, सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, जून 2001, पृ0 260
2. दादा धर्माधिकारी, सर्वोदय दर्शन, मार्च 1998, पृ0 14
3. Vinobaji, Sarvodaya : Its Principles and programme, p. 36.

4. विनोबा, लोकनीति, मार्च 1999, पृ0 12
5. ऋग्वेद, 10/90/12
6. अथर्ववेद, 19/32/4
7. तैत्तिरीय ब्राह्मण, 2/2/1
8. महाभारत, शान्ति पर्व, 60/12
9. शान्ति पर्व, 60/13
10. मनुस्मृति 1/90 एवं 9/326–333
11. शान्ति पर्व, 60/27–28
12. श्याम लाल पाण्डेय, वेदकालीन राज व्यवस्था, 1971, पृ0 16
13. महाभारत, शान्ति पर्व, 61/1–8
14. ईशा वास्यमिदम सर्वं, यत्किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भूंजिथाः, मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।। यजुर्वेद, 40/1
15. 'आयातुले पयासु'। – सूत्रकृतांग 1/11/3
16. श्रीकृष्ण दत्त भट्ट, बौद्ध धर्म क्या कहता है ? नवम्बर 1997, पृ0 31
17. श्रीकृष्ण दत्त भट्ट, सिक्ख धर्म क्या कहता है ? जुलाई 1981, पृ0 7
18. रा0च0मा0, 1/84/2
19. B.A. Smitt, Akbar the Great Mugal Oxford University Press, Oxford. London, 1916, PP 219-220
20. सर्वोदय जगत, अंक : 2, 1 सितम्बर 2002, पृ0 17

माध्यमिक विद्यालयों के शैक्षिक, प्रबन्धन एवं वित्तीय स्थिति को सुदृढ़ बनाने के मकसद से सरकार ने कुछ दशक पहले अभिभावक शिक्षक संघ (PTA) के गठन की तटस्थता की थी, लेकिन इस मद में कितना शुल्क लिया जायेगा। यह आज तय नहीं हो पाया है। माध्यमिक ही नहीं प्राथमिक शिक्षक पाठशालाओं में मनमाने ढंग से वसूली हो रही है। कहीं यह शुल्क 25 रूपये है तो कहीं हजार रूपये। देखा जाये तो अस्सी फीसदी विद्यालय ऐसे हैं जहाँ (P.T.A.) के नाम पर अवैध वसूली की परम्परा फल-फूल रही है। सिर्फ पाँच फीसदी विद्यालयों में यह व्यवस्था अच्छी हो सकती है। कृपया उपरोक्त विषयों पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुये शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख/लेख प्रेषित कर रचनात्मक सहयोग देने की कृपा करें।

श्रीमद्भगवद्गीता में जीवन दर्शन–एक विमर्श

✍ डॉ. अनिल कुमार सिन्हा

श्रीमद्भगवद्गीता एक विलक्षण, परम रमणीय एवं अति रहस्यमय ग्रन्थ है। यह सम्पूर्ण वेदों का सार है। वेदों के सम्बन्ध में मनु महाराज की घोषणा है – 'सर्वज्ञानमयो हि सः' अर्थात् वेद सर्वज्ञानमय हैं। यही बात यदि गीता के विषय में कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। इसकी विलक्षणता यह है कि यह ज्ञान का अपार आगार है। इसका भक्तिपूर्वक एवं एकाग्रचित्त होकर अध्ययन करने पर नित नवीन भाव उत्पन्न होते ही रहते हैं इससे वह सदा नवीन ही बना रहता है। यही इसकी रमणीयता का मूल कारण है। रमणीयता का लक्षण है– 'क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः'। अब प्रश्न यह है कि गीता की लोकप्रियता का क्या कारण है ? विचार करने पर ज्ञात होता है कि मानव जीवन की प्रायः सभी समस्याओं का समाधान श्रीमद्भगवद्गीता में उपलब्ध होता है। जीवन की नश्वरता और उसको सार्थक बनाने का सिद्धान्त, निष्काम कर्म और अनासक्त होकर कर्म करने का सिद्धान्त सभी कुछ उसमें विद्यमान है। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम गीता के सिद्धान्तों को अपनायें, उसको अपने आचरण एवं व्यवहार में लायें यही उसकी सार्थकता है।

'गीता पढ़ना है तभी सफल जब गीता जीवन में आये
चेतन और जड़ में सभी जगह जब रामहि राम नजर आये।'

वस्तुतः गीता कर्मशास्त्र है, नीतिशास्त्र है तथा धर्मशास्त्रों का भी धर्मशास्त्र है।

तस्मादधर्ममयी गीता सर्वज्ञानप्रयोजिका
सर्वशास्त्रमयी यस्मात्तस्माद् गीता विशिष्यते।

श्रीमद्भगवद्गीता उपनिषदों के मूलभूत तत्वों को अनुस्यूत कर उन्हें एक नये ही रूप में प्रस्तुत करती हैं। समस्त उपनिषद गौएँ हैं, श्रीकृष्ण दूध दुहने वाले हैं, अर्जुन बछड़ा है, परम शुद्धबुद्धि वाला प्रत्येक मनुष्य दूध पीने वाला (दूध पीने का पूर्ण अधिकारी) है और गीता का अमृत वह सुन्दर दूध है।

'सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्'।।

✍ विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग, डी. ए. वी. कालेज, कानपुर

वास्तव में गीता भगवान श्रीकृष्ण का गाया हुआ मधुर गीत है अतएव इसके चिन्तन, मनन और अनुशीलन करने पर साधारण जन के लिए वेदशास्त्र आदि ग्रन्थों के पढ़ने की आवश्यकता नहीं रहती। यह एक ऐसा अनुपमेय शास्त्र है कि जिसमें एक भी शब्द सदुपदेश से खाली नहीं है। श्री वेदव्यास जी ने महाभारत में गीता जी का वर्णन करने के पश्चात् कहा है –

'गीता सुगीता कर्त्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता' ।।

अर्थात् गीता सुगीता करने योग्य है। जो स्वयं पद्मनाभ श्रीकृष्ण भगवान के मुखारविन्द से निःसृत हुई है। पुनः अन्य शास्त्रों के विस्तार से क्या प्रयोजन।

कुरुक्षेत्र के रणक्षेत्र को लोक का प्रतीक एवं अर्जुन के निमित्त से मानव--मात्र को निष्काम कर्म से संवलित नैतिक आदर्श को समझाना ही गीता का मुख्य दार्शनिक तत्व है। गीता की एक विशेषता यह है कि यह प्रमुख जीवन दर्शन होते हुए भी काव्यात्मक है, गीत के रूप में है। गीता में विचार संघर्ष कहीं नहीं है, विचार–विमर्श है जो तत्व को समझाने के लिए आवश्यक है। व्यावहारिक पक्ष गीता की अन्य प्रमुख विशेषता है। गीता मात्र तत्वज्ञान नहीं अपितु व्यावहारिक दर्शन है। अर्जुन मानव जीवन का महाप्रश्न है और भगवान श्रीकृष्ण उसके महासमाधान हैं।

गीता का प्रारम्भ 'धर्म' शब्द से होता है –

'धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय'। (गीता 1–1)

गीता में धर्म के सारसर्वस्व को, वास्तविक तत्व को सरल एवं सुबोध रूप में प्रस्तुत किया गया है। ज्ञान अथवा भक्ति से ओतप्रोत होकर परमात्मा के साथ एक सम्बन्ध स्थापित करना, निष्काम भाव से स्वधर्मरूप कर्तव्य पालन करते रहना, सब कुछ प्रभु को अर्पण करते हुए निश्चिन्त और निर्बन्ध होकर मोक्ष प्राप्त करना अथवा प्रभु को प्राप्त हो जाना– यही धर्म का तात्पर्य है। धर्म केवल सिद्धान्त नहीं है, आचरण है– 'आचारः परमो धर्मः' धारण करने से धर्म होता है, मात्र कहने और व्याख्या करने से नहीं 'धारणाद धर्मः। धर्मो धारयति प्रजाः'। मनु महाराज ने धर्म के दस लक्षण निर्धारित किए हैं –

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः
धीर्विद्या सत्यमक्रोधः दशकं धर्मलक्षणम् ।।

जिस व्यक्ति में वे लक्षण होते हैं वही सच्चा धार्मिक व्यक्ति है।

गीता जीवनयापन के लिए एक व्यावहारिक शैली प्रस्तुत करती है, जो कीर्तव्यशास्त्र अथवा आचरणशास्त्र के रूप में मानवमात्र के लिए परम कल्याणकारी है। गीतोक्त धर्म व्यवहारपरक एवं सदाचारप्रेरक है। गीता –'धर्म' से प्रारम्भ होकर 'कुरु' (कर्म करो) की प्रेरणा देते हुए साधक को श्री, विजय और भूति तक पहुँचा देती है।

'यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम।।

(गीता 18–78)

कुरुक्षेत्र धर्मक्षेत्र है। धर्म का कर्म के साथ गहन सम्बन्ध है। 'कुरुक्षेत्र' में 'कुरु' की ध्वनि है– कर्म करो। संसार एक विशाल कुरुक्षेत्र है। यदि हम उसे धर्मक्षेत्र बनाये रखें तो हमारा और समाज का विकास, अभ्युदय एवं कल्याण होना अवश्यम्भावी है किन्तु उसे अधर्मक्षेत्र बनाने पर हम भय, चिन्ता, शोक, क्लेश और विनाश का आवाहन करते हैं। भगवान ने गीता में धर्मयुक्त कर्म करने पर बल दिया है। जीवनयात्रा को सुसम्पन्न करने के लिए धर्ममय कर्म की परम आवश्यकता होती है। जीवन दर्शन का इससे अच्छा उदाहरण अन्यत्र कहाँ मिल सकता है।

मानव का जीवन कैसा होना चाहिए इसका बड़ा ही सटीक एवं यथार्थ विवेचन श्रीमद्भगवद्गीता में किया गया है। सरल बुद्धिवाला अर्जुन मोह से उत्पन्न अपरिसीम करुणा के कारण इतना असंतुलित हो गया कि वह रणक्षेत्र में युद्ध के प्रारम्भ होने पर धनुष बाण छोड़कर बैठ गया और बच्चों की भाँति अश्रुविमोचन करने लगा। श्रीकृष्ण ने प्रारम्भ में अर्जुन को कठोर शब्द कहकर उसकी चेतना को झकझोर दिया तथा इस उपचार से उसे सचेतन करके सहृदयतापूर्वक गूढ़ तत्वों को समझाया। श्रीकृष्ण बोले– "अर्जुन, तू कैसी मूर्खता करता है, तेरी बुद्धि को क्या हो गया है? यहाँ रणप्रांगण में वीरों के समक्ष नपुंसको जैसी कायरता दिखाते हुए तुझे लज्जा नहीं आती?भगवान ने कहा –

'कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन
क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्वय्युपपद्यते
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप।।

(गीता–2)

वास्तव में मानसिक दुर्बलता मनुष्य को निकम्मा बना देती है। दुर्बल व्यक्ति जीवन में कुछ भी महान उपलब्धि नहीं कर सकता। शरीर और मन से सबल होकर ही मनुष्य जीवन में कुछ प्राप्त कर

सकता है। यहाँ तक कि दुर्बल मनुष्य आत्मा का साक्षात्कार भी नहीं कर सकता

'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः'

(मुण्डकोपनिषद, 3,2,4)

अर्जुन को प्रदत्त उपदेश के माध्यम से भगवान ने हमें सही जीवन का दर्शन का राह दिखाया है। उनके द्वारा प्रदत्त उपदेश से हमें यह शिक्षा मिलती है कि हम सब प्रकार के बल को अर्जित करें, उसका संरक्षण करें तथा आत्मकल्याण एवं जनकल्याण के लिए उसका सुदपयोग करें। कहने का आशय यह है कि जीवन में किसी भी विषम परिस्थिति को देखकर उसका विवेकपूर्वक सामना करना चाहिए, पलायन कोई उपाय नहीं है। जीवन दर्शन का इससे अच्छा उदाहरण अन्यत्र मिलना दुर्लभ है।

आगे इसी अध्याय के 15वें श्लोक में भगवान अर्जुन को निर्दिष्ट करते हुए कहते हैं कि श्रेष्ठ पुरुष अर्जुन। दुःख सुख में समान रहने वाले जिस धीर पुरुष को ये इन्द्रियां और उनके विषयों के संयोग व्याकुल नहीं करते वह मोक्ष प्राप्ति का अधिकारी होता है।

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते'।।

जीवन को सुसंयत करने का इससे अच्छा उदाहरण अन्यत्र कहाँ मिल सकता है।

मनुष्य के जीवन में अनेक प्रकार की विवशताएँ हैं जिनका कोई उपाय सम्भव नहीं है। गीता से हमें यह शिक्षा मिलती है कि विवशता के विषय में परिस्थिति के साथ समझौता करके उसे स्वीकार करना ही एकमात्र उपाय है। विवशता को परमात्मा का विधान अथवा प्रभु इच्छा मानकर सन्तोष कर लेना विवेक है। मृत्यु भी मनुष्य की एक विवशता ही है जिसे स्वीकार कर लेने पर मनुष्य भयमुक्त हो जाता है।

'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि।।' (2–27)

मानव का जीवन सफल कैसे हो सकता है इस विषय में श्रीकृष्ण अर्जुन को प्रत्येक परिस्थिति में कर्म करते हुए जीवनयापन करने का उपदेश देते हैं।

'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि'।।

यहाँ अर्जुन तो एक निमित्त मात्र है। अर्जुन को शिक्षित करने के बहाने भगवान ने समस्त मानव जाति को यह उपदेश दिया है कि हे मानव तेरा अधिकार केवल मात्र कर्म करने में है। तू कर्मों के फल की वासना वाला न हो।

आगे इसी अध्याय के अड़तालीसवें श्लोक में भगवान कहते हैं –

'योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनन्जय
सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते' ।।

अर्थात् हे अर्जुन, तू आसक्ति छोड़कर कर्म की सफलता (पूर्णता) और विफलता (अपूर्णता) में समबुद्धि रहकर योग द्वारा परमात्मा में स्थित हुआ कर्मों को कर। इससे अच्छा जीवन दर्शन का उदाहरण और क्या हो सकता है।

भगवद्गीता के प्रथम श्लोक का प्रथम शब्द – 'धर्म' तथा अन्तिम श्लोक का अन्तिम शब्द 'मम' है। 'धर्म मम' अर्थात् स्वधर्म पालन गीता का महान सन्देश है। मनुष्य स्वधर्म का सम्यक् पालन करने पर ही अपना तथा समाज का कल्याण कर सकता है।

वास्तव में गीता की ज्ञानगंगा उनके लिए विशेषतः प्रवाहित हुई है जो मार्ग से भटक गए हैं, प्रभु से बिछुड़ गए हैं और दुःखी एवं अशान्त हैं। अर्जुन भटका हुआ एवं दुःखी था। अतः उसके लिए गीता की ज्ञान गंगा प्रवाहित की गयी। भौतिकता के घनघोर अंधकार में भटकती हुई मानव जाति के त्राण के लिए गीता का आलोक ही एकमात्र उपाय है। इस प्रकार हम देखते हैं कि गीता मानवमात्र को एकता के सूत्र में बाँधने, ज्ञान–विज्ञान को सत्य की ओर उन्मुख करने, मनुष्य में नैतिकता एवं आध्यात्मिकता जगाने, जीवन में नवचेतना और ओज भरकर जीवन को उदात्त बनाने के लिए सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ है। अन्त में गीता के विषय में यदि निम्नलिखित पंक्ति 'यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्' को उद्धृत किया जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी।

पातंञ्जलि योगसूत्र और हेमचन्द्र कृत मनोनुशासन का तुलनात्मक अध्ययन

✍ डॉ. विनोद कुमार पाण्डेय

मनुष्य जीवन कर्ममय है, कर्म रहित्य जड़ता है। जीवन का कोई भी क्षण ऐसा नहीं है, जिसमें मनुष्य कोई कर्म न करता हो यथा—श्वाँस लेना, खाँसना, छींकना, देखना, बोलना, खाना—पीना इत्यादि ये सभी क्रियाएं हैं, जो निरन्तर चलती रहती हैं। इनमें से कुछ क्रियाएं जाग्रत अवस्था में तो कुछ सुषुप्तावस्था में भी चलती रहती हैं। यहाँ विचारणीय तथ्य यह है कि मनुष्य के शरीर और इन्द्रियों में यह क्रियाशीलता आती कहाँ से है ? मानव शरीर का वह संचालक अंग कौन है जिससे सम्पूर्ण शरीरावयवों को गति मिलती है ?

शरीर शास्त्रियों ने क्रियात्मक अथवा गत्यात्मक शक्ति 'मन' में स्वीकार किया है। इनके अनुसार मानव शरीर में 'मन' ही नियामक अंग है, यह अन्य अंगों का नियमन अथवा संचालन करता है अर्थात् जड़ इन्द्रियों की क्रियाशीलता में मन ही कारण है। मन संकल्प रूप है और संकल्प कर्मबीज रूप है। यहाँ यदि यह कहा जाये कि मानसिक संकल्प ही शरीर अथवा वाणी के द्वारा अभिव्यक्त होकर कर्म के रूप में परिणत होता है, तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं होगी। ऋग्वैदिक ऋषि भी इसी मत का समर्थन करता है और कहता है कि – "मन में उत्पन्न शुभ संकल्प अथवा शुभ विचार, उन्नति, विकास, प्रगति और दीर्घायुष्य का साधन है तथा मन से ही उत्पन्न अशुभ संकल्प अथवा अशुभ विचार अवनति, रोग, शोक, दैन्य और अल्पायु का साधन है। इसका अभिप्राय यह है कि मनुष्य के उन्नति—अवनति, विकास—ह्रास, रोग, शोक अल्पायु और दीर्घायु की प्राप्ति में मन ही कारण है। मन के संकल्प शक्ति के सम्बन्ध में छान्दोग्योपनिषद् में कहा है कि – "तदैक्षत बहुस्याम"[1]

अर्थात् उस परब्रह्म ने ऐसा संकल्प किया है कि मैं बहुत हो जाऊँ फलतः अपने उसी बहुभवन संकल्प के कारण वह सृष्टि की रचना की ओर उन्मुख हुआ। इस तरह जब सृष्टि की रचना में ही मन का संकल्प हेतु रूप सिद्ध हो जाता है। तब उसी सृष्टि का एक अंग विशेष मनुष्य के कर्मों में संकल्प की महत्ता स्वतः सिद्ध है।

मन का स्वरूप

महर्षि रमण ने मन के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि "मन अथवा चित्त आत्मस्वरूप में रहने वाली एक अद्भुत शक्ति है, जिसमें सकल विचारों, अथवा संकल्पों का उदय होता है। आत्मा से समस्त विचारों अथवा संकल्पों को अलग कर देने पर मन जैसी कोई वस्तु दिखाई नहीं पड़ती। सुषुप्ति में

✍ प्रवक्ता, संस्कृत विभाग, डी. ए. वी. कालेज, कानपुर

मन नहीं है केवल जाग्रत और स्वप्न में ही मन है, इसका तात्पर्य यह है कि मन जब संकल्पों से युक्त होकर आत्मस्वरूप से बाहर निकलता है तब जगत प्रतीत होता है, परन्तु उस समय आत्मा दिखाई नहीं पड़ती। इसी तरह जब आत्मा भाषित होती है तब जगत दिखाई नहीं पड़ता।[2] इसका अभिप्राय यह है कि मन का सम्बन्ध जगत से है और जगत का सम्बन्ध मन से है, इसमें आत्मा का कहीं कोई सम्बन्ध नहीं है। योगवशिष्ठ में आत्मा की संकल्प शक्ति को "मन" कहा गया है।[3] सांख्यकारिका में ईश्वर कृष्ण ने 'संकल्प विकल्पात्मको मनः'[4] कहकर मन का स्वरूप संकल्प–विकल्पात्मक बतलाया है। मन का काम संकल्पों के द्वारा विषयों की रचना करना है और विषय संसार चक्र का सम्पादन करते हैं। वस्तुतः मन के संकल्प शक्ति से विषय उत्पन्न होते हैं। जिनके उपभोग की ओर इन्द्रियाँ मन के सहायता से प्रवृत्त होती हैं। इनमें प्रीतिकर विषयभोग से "राग" और अप्रीतिकर विषयभोग से "द्वेष" उत्पन्न होता है। ये राग–द्वेष विषयभोगोत्पन्न भाव हैं, जो मन में स्थिर हो जाते हैं। इन्हीं राग द्वेषात्मक भावों के कारण हिंसा, असत्य, स्तेय, अब्रह्मचर्य और परिग्रह की ओर मनुष्य उन्मुख होता है। ये ऐसे कर्म हैं जो मनुष्य के लौकिक और आध्यात्मिक उन्नति को अवरूद्ध कर देते हैं और मनुष्य बार–बार इस दुःखमय संसार में जन्म लेने तथा मृत्यु का ग्रास बनने के लिए विवश हो जाता है।

मन से बन्धन और मुक्ति की प्रक्रिया

मन के द्वारा जीव के बंधन और मुक्ति को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है, जिस प्रकार विकार युक्त नेत्र से अथवा रंगीन दर्पण में वस्तु का यथार्थ स्वरूप दृष्टिगोचर नहीं होता उसी प्रकार विकार ग्रस्त मन के द्वारा वस्तु तत्व का यथार्थ अवलोकन नहीं हो सकता। वैसे अनादि अविद्या के कारण बंधन में पड़े हुए जीव की मुक्ति के लिए जगत के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान आवश्यक है क्योंकि तभी जीव को जगत से अपनी भिन्नता का बोध होगा। मन जगत का जो चित्र अथवा जैसा चित्र आत्मा के अवलोकनार्थ उपस्थित करेगा आत्मा उसे ही वास्तविक स्वीकार करेगी। चूँकि मन पहले रागादि से दूषित है इसलिए उसके द्वारा जगत का यथार्थ उपस्थापन सम्भव नहीं है। अतः मन के द्वारा प्रस्तुत जगत के अवास्तविक स्वरूप को वास्तविक मानना आत्मा के लिए आवश्यक हो जाता है। वस्तुतः यही मन के द्वारा आत्मा के बंधन की प्रक्रिया है। इसके विपरीत जब मन समाधिश्ट ज्ञान से सम्पृक्त होता है तब अविद्या का विकार समाप्त हो जाने से स्वच्छ दर्पण के सदृश वह जगत के यथार्थ रूप को ग्रहण करता है और उसे ही आत्मा के समक्ष प्रस्तुत करता है। इस तरह आत्मा को जगत का वास्तविक स्वरूप दर्शन होने पर उससे अपनी भिन्नता का बोध होता है। अतएव आत्मा सद्यः जगत से पृथक होकर मुक्त हो जाती है। यहाँ स्मार्तव्य है कि आत्मा का जड़ जगत से पृथक हो जाना उसके पृथक बोध से ही सम्भव है और यह तभी हो सकता है जब आत्मा को जगत के यथार्थ स्वरूप का साक्षात्कार हो जाये। चूँकि आत्मा की दृश्य शक्ति मन है अतः मन ही जगत का यथार्थ अथवा अयथार्थ स्वरूप का दर्शन करता है और आत्म को अपने दृश्य ज्ञान से संयुक्त करता है। अतः यह कहा जा सकता है कि मुख्यतः मन ही बंधन और मुक्ति का हेतु है।

योगसूत्र में बन्ध और मुक्ति की प्रक्रिया

योगसूत्रकार पतंञ्जलि कहते हैं कि पुरुष और प्रकृति का संयोग ही हेय (बन्धन) का हेतु है।[5] यहाँ यह भी कहा गया है कि पुरुष और प्रकृति के संयोग का हेतु अविद्या है।[6] चूँकि अविद्या का आश्रय स्थल है 'मन' इसलिए मुख्य रूप से मन ही बंधन का हेतु सिद्ध होता है। चूँकि पुरुष भी अनादि है और प्रकृति भी अनादि है तथा दोनों में संयोग कराने वाली अविद्या भी अनादि है। अतः बंधन भी अनादि मानना पड़ेगा। यहाँ पुरुष तो चेतन तत्व है, असंग है और कुटस्थ नित्य है तथा प्रकृति जड़ तत्व परिणामी और त्रिगुणात्मिका होने से सक्रिय है। यद्यपि ये दोनों दो भिन्न तत्व हैं तथापि जब अनादि अविद्या के कारण इनमें संयोग होता है तब जड़ तत्व (प्रकृति) में एक प्रकार का विकार उत्पन्न होता है। प्रकृति में यह विकार महत्त तत्व के रूप में उत्पन्न होता है इसे बुद्धि अथवा चित्त भी कहा जाता है। जब तक पुरुष के साथ अविद्या का सम्बन्ध बना हुआ है तब तक यह परिणाम भी बना रहेगा और पुरुष शुद्ध होते हुए भी बुद्धि की वृत्तियों के अनुसार देखने वाला द्रष्टा बना रहेगा।[7]

योगसूत्रकार के अनुसार– आत्मा दृष्टा तभी तक है जब तक दृश्य है जब दृश्य नहीं होगा तब दृष्टा का दृष्टत्व भी नहीं रहेगा। यहाँ शंका होती है कि दृष्टा और दृश्य का संयोग क्यों होता है ? इसका समाधान निम्न सूत्र से हो जाता है –

"प्रकाशक्रियास्थिततिशीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवार्थं दृश्ययम्।"[8]

अर्थात् दृश्य का प्रयोजन है पुरुष के लिए भोग और अपवर्ग का सम्पादन करना। चूँकि पुरुष निष्क्रिय है अतः वह न तो भोग के निमित्त कार्यों में प्रवृत्त हो सकता है न अपवर्ग के निमित्त कार्यों में इसलिए क्रियाशील प्रकृति के साथ उक्त कार्यों के सम्पादन हेतु पुरुष का संयोग आवश्यक है। यहाँ यह भी स्मरणीय है कि प्रकृति जड़ तत्व है उसमें विकार रूप परिणाम पुरुष के संसर्ग से ही उत्पन्न हो सकता है। पुरुष और प्रकृति के संयोग में जब तक अविद्या का अस्तित्व रहेगा तब तक प्रकृति पुरुष के लिए भोग का सम्पादन करती रहेगी परन्तु अविद्या के नहीं होने पर संयोग का आकर्षण भी नहीं रहेगा और अविद्या का विपरीत भाव विद्या (ज्ञान) के संयोग से पुरुष प्रकृति से अलग होकर कैवल्य प्राप्त कर लेगा।[9]

मनोनुशासन में बन्धन और मुक्ति की प्रक्रिया

मनोनुशासन का अभिप्राय है मन का अनुशासन, शिक्षण और संयमन। यहाँ शंका होती है कि मन का अनुशासन, शिक्षण अथवा संयमन किसके लिए ? इसका सहज उत्तर है – मुक्ति के लिए।

मनोनुशासन के व्याख्याकार आचार्य महाप्रज्ञ ने आचार्य हेमचन्द के शब्दों को उद्धृत कर बंधन और मुक्ति की प्रक्रिया को संक्षेप में किन्तु सार्थक रूप में प्रस्तुत किया है जो निम्न सूचित है–

"आस्रवो भव हेतुः स्यात् संवरो मोक्षकारणम्
इतीयमार्हती दृष्टिः सर्वमुञ्चत प्रपञ्चनम्।।"[10]

अर्थात् आस्रव बन्ध का हेतु है और मोक्ष का हेतु है संवर। वस्तुतः जैन दर्शन का इतना ही सार संक्षेप है और शेष सभी इसी का विस्तार है। आस्रव आत्मा की चैतन्य शक्ति को आवृत कर देता है, जिसके कारण जीव अपने वास्तविक स्वरूप को नहीं जान पाता। अतः अवास्तविक स्वरूप को वास्तविक मानकर तदनुसार आचरण करता हुआ दुःखी होता है। महाप्रज्ञ आगे कहते हैं कि जीवनपथ की दीर्घयात्रा में काल–विपाक के कारण कोई क्षण ऐसा आता है जब आत्मा में मुक्ति की भावना जाग्रत होती है। यद्यपि अनादि अविद्या के कारण आस्रव के द्वारा जीव का बंधन सम्पादित हो रहा है परन्तु मुक्ति का भाव आगन्तुक नहीं है अपितु वह बंधन के प्रवाह में भी अपने प्रवाह में स्थित है, ऐसा मानने पर ही संवर का भाव उदित होगा और संवर जयपूर्वक जीव बंधन का उच्छेद कर पायेगा।

जैन दार्शनिकों ने अविरति, प्रमाद, कषाय और योग को बन्ध का हेतु कहा है।[11] इन पाँच प्रकार के हेतुओं का कर्म के प्रवाह में निमित्त होने के कारण इनके समूह को आस्रव कहा जाता है। प्रथम क्षण में कर्मस्कन्धों का आगमन होता है जिसे आस्रव कहा गया तथा दूसरे क्षण में उन कर्मस्कंधों की आत्म प्रदेशों में स्थिति हो जाती है जिसे बंध कहा जाता है। तत्वार्थसूत्रकार भी कहते हैं कि– "कषाय के कारण जीव कर्म के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है वस्तुतः यही बंध है। यद्यपि लोक में पुदगलों की अनेक वर्गणाएं हैं तथापि उनमें से जो वर्गणाएँ कर्म रूप में परिणाम को प्राप्त करने की योग्यता रखती हैं केवल उन्हीं को जीव अपने आत्म प्रदेशों के साथ जोड़ता है और यही बंध है।[12]

उपर्युक्त विवेचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि जीव के बंधन में आस्रव ही हेतु है और तब यह आवश्यक हो जाता है कि आस्रव के स्वरूप पर विचार किया जाये। "कायवाङमनः कर्मयोगः स आस्रवः।[13]

अर्थात् कायिक, वाचिक और मानसिक क्रिया ही योग है और वही आस्रव है। यहाँ विचारणीय तथ्य यह है कि जो तीन प्रकार की क्रियाएं बताई गई उनमें मन की प्रमुखता हैं क्योंकि मानसिक क्रियाओं के अतिरिक्त कायिक और वाचिक क्रियाओं के सम्पादन में मन ही प्रेरक है। अतः मन मुख्य रूप से बंधन का हेतु सिद्ध होता है। वस्तुतः इसे ही ध्यान में रखते हुए मनोनुशासन नामक ग्रन्थ की रचना की गयी। चूँकि मन, बंधन और मुक्ति का हेतु है इसलिए मन के अनुशासन की आवश्यकता है। मन को अनुशासित करने के लिए जो आचरण अथवा नियम मनोनुशासनकार ने निर्धारित किए हैं वे हैं– यम, नियम, आसनं, प्राणायाम्, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।[14] इन्हें योगसूत्रकार ने अष्टांग योग कहा है।[15]

इनमें प्रथम पाँच योग के अथवा मन के अनुशासन के बाह्य साधन हैं और शेष तीन अन्तरंग साधन हैं। चूँकि मुक्ति बिना ज्ञान के सम्भव नहीं है और ज्ञान भी समाधिज ज्ञान होनी चाहिए, क्योंकि बौद्धिक ज्ञान, मन और इन्द्रियों की शक्ति तक ही सीमित है जबकि चैतन्य की शक्ति असीम है। अतः ससीम के

द्वारा असीम की प्राप्ति संभव नहीं है तब समाधिष्ट ज्ञान की आवश्यकता होती है। वस्तुतः इसी समाधिष्ट ज्ञान की प्राप्ति के लिए मनोनुशासन अथवा योग की आवश्यकता है।

साधक जब समाधि में स्थित होकर चेतना के सूक्ष्मस्तर तक चला जाता है तब उसे देह से आत्मा की पृथकता का बोध होता है, जिसके परिणामस्वरूप जीव मुक्ति प्राप्त करता है। इस तरह आत्मा का देह से अलग हो जाना उसकी कर्मशून्यता है और आत्मा का निष्कर्म हो जाना ही परम मुक्ति अथवा विदेह मुक्ति है।[16]

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन के उपरान्त निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि योगसूत्र और मनोनुशासन दोनों ही शरीरेन्द्रियों में मन की प्रमुखता को स्वीकार करते हैं। मन ही बंधन और मुक्ति का हेतु है ऐसा मानकर अष्टविध साधनों के द्वारा मन के वृत्तियों का निरोध अथवा मन के अनुशासनपूर्वक आस्रव का निरोध करने का निर्देश देते हैं जिसके परिणामस्वरूप मुक्ति लाभ होता है। इन दोनों ग्रन्थों में जो अन्तर है वह जीव के स्वरूप और मोक्ष अथवा कैवल्य प्राप्ति के बाद उसके स्वरूप को लेकर है जो स्वतंत्र शोध का विषय है।

संदर्भ सूची

1. छान्दोग्योपनिषद– 6/2/3
2. ''मैं कौन हूँ'' (महर्षि रमण) पृ0सं0–6
3. योग वाशिष्ठ–2/3
4. सांख्यकारिका–सूत्र सं0–27
5. योगसूत्र–2/17
6. योगसूत्र–2/24
7. योगसूत्र–2/20
8. योगसूत्र–2/18
9. योगसूत्र– 2/25
10. मनोनुशासन पृ0सं0 21
11. (क) मनोनुशासन–1/27 (ख) तत्वार्थसूत्र–8/1
12. तत्वार्थसूत्र– 8/2
13. तत्वार्थसूत्र– 6/1, 2
14. मनोनुशासन– 1/30
15. योगसूत्र–2/29
16. तत्वार्थसूत्र– 10/1–3

अध्यात्म एवम् दर्शन

आदर्श समाज की संरचना में श्रीमद्भगवद्गीता की भूमिका

✍ डॉ. रंजना दुबे

प्राचीन काल से भारत की संस्कृति ने सम्पूर्ण मानव जाति के आध्यात्मिक रूपान्तरण को ही अपने मूलमंत्र के रूप में स्वीकार किया है। विभिन्ता में एकता ही हमारी संस्कृति है। पुरातन काल से हमारी नित्य प्रार्थना में लोक कल्याण की भावना उक्त निहित है। सर्वेभवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः इसी विश्व कल्याण की भावना दार्शनिकों विचारकों एवं समाज सुधारकों ने पुर्नजीवित एवं पुर्नस्थापित किया है।

गीता आध्यात्मिक ज्ञान की एक अमूल्य निधि है तथा उपनिषदों एवं षट् दर्शनों का सार स्वरूप नवनीत है। यह केवल हिन्दू धर्म का ही नहीं, वरन् विश्व धर्म ग्रन्थ है, गीता में ऐसे परम तत्व का वर्णन है, जो सर्व धर्म समन्वय से परिपूर्ण है। यह भारतीय संस्कृति की आत्मा है।

गीता एक ऐसा दर्शन है जो बिना किसी कठिन क्रियाओं और साधना के गृहस्थ धर्म में रहकर भी दर्शन के प्रयोजन परमार्थ को सुलभ करता है। भारतीय संस्कृत वाड्मय में ऐसी सर्वप्रथम रचना है, जिसमें धर्म दर्शन और समाजशास्त्र पर त्रिकोणात्मक प्रकाश डाला गया है। गीता के पूर्ववर्ती न्याय, वैशेषिक सांख्य योग मीमांसा तथा वेदान्त भारतीय षड् दर्शन जटिल है. जो वर्तमान युग के अनुरूप नहीं है, अतः काल चक्र के प्रवाह में युग बदलता है साथ ही उपासना पद्धति भी बदलती है, जैसा कि मनु स्मृति में स्पष्ट है :–

"युग रूपा नुजारतः"

अतः गीता में प्राचीन एवं नवीन सभी दर्शनों का समायोजन है।

सम्पूर्ण वेदों का सार उपनिषद् है और उपनिषदों का सार गीता है, जैसे आम के वृक्ष में जड़ से लेकर पत्तों तक रस विद्यमान रहता है, पर जो रस उसके फल में है, वह अन्य में नहीं। ऐसे ही सम्पूर्ण वेदों उपनिषदों शास्त्रों का सार होने पर भी जो विलक्षणता गीता में है, वह वेदों, शास्त्रों, उपनिषदों आदि में नहीं। वेद भगवान के निःश्वास है और गीता भगवान की वाणी है।

गीता में योगी कौन या योग किसे कहते हैं, इस पर विशेष प्रकाश डाला गया है। कर्म के फल की इच्छा न रखकर जो व्यक्ति अपने कार्यों को करता है, वही योगी और सन्यासी है। सन्यास और योग एक ही है, क्योंकि मनुष्य संकल्प का त्याग करने पर कर्म में रत होने से सन्यास एवं योग को प्राप्त कर लेता है।

✍ संस्कृत प्रवक्ता, डी. ए. वी., कानपुर

अनाश्रितः कर्म फलं कार्य कर्म करोति यः।
स सन्यासी च योगी च न निरग्निन चाक्रियः।। 6/1

गीता में स्पष्ट है कि सन्यास, योग भक्ति में जीवात्मा को अपनी स्वभाविक स्थित का ज्ञान हो तदनुसार कर्म करें, जब मनुष्य माया से वशीभूत होता है, तो वह वृद्ध हो जाता है, किन्तु जब वह आध्यात्मिक शक्ति में सजग रहता है तो वह अपने सरल स्थिति में होता है। इस प्रकार जब मनुष्य पूर्ण ज्ञान में होता है तो वह समस्त इन्द्रिय तृप्ति के कार्य कलापों का परित्याग कर देता है, अतः यह अभ्यास योगी ही कर सकता है, जो इन्द्रियों को भौतिक आसक्ति से रोकते है। जब मनुष्य इन्द्रियों की तृप्ति के लिये कर्म नही करता अर्थात् इन्द्रियों को जीत लेता। इन्द्रियों योगैषणा से विचलित नहीं होता, अतः ऐसी इच्छाओं को त्यागने वाला व्यक्ति योग रूढ़ कहा जाता है।

योगस्ठस्य तस्यैव षमः कारणमुच्यते।।

वही व्यक्ति आत्म साक्षात्कार को प्राप्त तथा योगी कहलाता है, जो अपने अर्जित ज्ञान तथा अनुभूति से पूर्णतया सन्तुष्टि रहता है। ऐसा व्यक्ति अध्यात्म को प्राप्त तथा जितेन्द्रिय कहलाता है। वह सभी वस्तुओं को कंकण हो, पत्थर हो, अर्थात् सोना हो, एक समान देखता है, परम तत्व के ज्ञान के बिना कोरा ज्ञान व्यर्थ होता है।

अतः श्रीकृष्णनामादि न भवेद् ग्राह्यमिन्द्रियैः। 6/3
सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ स्वयमेंव स्फुरत्यदः।।

भक्रिरसामृत सिन्धु 2/234

जब मनुष्य समस्त सांसारिक विषयों से मुख मोड़ लेगा तभी चित्त का एकाग्र होना सम्भव है, क्योंकि चित्त इधर उधर विषय वासना आदि में चलायमान हो जाता है, जब हमारी कोई कामना इच्छा ही न हो, सब त्याग कर दें तो चित्त को अभ्यास से एकाग्र करने से योग की सिद्ध होती है। जैसे दीपक की लौ तभी तक चलायमान होती है, जब तक कहीं से वायु उस पर लगे, यदि दीपक को हवा न लगे तो वह स्वयं एकाग्र हो जायेगा। ठीक इसी प्रकार जब तक योगी में कोई कामना है, ममत्व है, तभी तक उसका मन चंचल हो सकता है और जहाँ मन को इच्छाओं की ममत्व की हवा न लगे वह स्वयं एकाग्र हो जायेगा।

अतः इस प्रकार योग साधना करते हुये चित्त शुद्ध हो जाता है, तो योगी को स्वतः उसमें शांति मिल जाती है, वह आत्मत्व को जान लेता है, उसे वो इच्छा विचलित नहीं कर सकती है। सांसारिक प्राणी तो थोड़े से दुःख में विचलित हो जाते हैं, किन्तु साधक विचलित नहीं होता, इसे भी सुख ही मानता है, उसमें ऐसी आत्म शक्ति आ जाती है।

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते।
निस्पृहः सर्वकामेम्यों युक्त इत्युच्यते तदा।। 6/18

वास्तविक योग वह है, जिसमें दुःख स्वरूप संसार का अर्थात् सांसारिक वासनाओं का योग न हो अर्थात् मन तथा इन्द्रियों को संयम कर उन्हें सांसारिक सुख लिप्सा से रोकना है, इसमें भी अनिच्छा पूर्वक ऐसा किया तो वास्तविक योग नहीं है, इसलिये मन पर नियंत्रण होना सांसारिक विषयों के प्रति मन में अनिच्छा होना चाहिये यही वास्तविक योग है।

गीता में स्पष्ट है कि जब कर्म योग में ज्ञान तथा वैराग्य की वृद्धि होती है तो यह अवस्था ज्ञान योग कहलाती है। जब ज्ञान योग में अनेक भौतिक विधियों से परमात्मा के ध्यान में वृद्धि होने लगती है, तो इसे अष्टांग योग कहते हैं तथा इस अष्टांग योग पार करके ईश्वर के निकट हो जाता है तो उसे भक्ति योग कहा जाता है। यथार्थ में भक्ति योग ही चरम लक्ष्य है।

संसार में योगी को तपस्वी, ज्ञानी, कर्मी इन तीनों से बढ़कर माना है। योगी की श्रेष्ठता स्पष्ट ही है क्योकि तपश्चर्या और कर्मकाण्ड योग साधना के लिये प्रथम सीढ़ियाँ हैं और ज्ञानी माध्यम है, वह इसलिये कि केवल ज्ञान ही पर्याप्त नहीं है, जब तक कि वह स्वयं आत्म सात न करें, पानी को देखने मात्र से प्यास नहीं बुझती है, प्यास तो पानी पीने से ही बुझेगी, ऐसे ही केवल ज्ञानी होना पर्याप्त नहीं, जब तक वह स्वयं उसका व्यवहार न करें, जो ज्ञान का व्यवहार करेगा वही ज्ञानी योगी है अतः ''योगी'' की सत्ता सर्वोपरि है, जो सिद्धि प्राप्त उसी में सन्तुष्ट न होकर इस अनन्त ज्ञन की निरन्तर खोज करना ही साधक की श्रेष्ठता है।

तपस्विम्योऽध्यिो योगी ज्ञानिम्योऽडपि मतोऽधिकः।
कर्मिस्यश्राधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन।। 6/46

योग की सर्वोच्च दशा केवल भक्ति योग से ही प्राप्त की जा सकती है, जिसकी पुष्टि वैदिक साहित्य में की गयी है।

यस्य देवे परामक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाषते महात्मनः।।

श्वेता श्वतर उपनिषद् 6/23

अतः भगवान की सेवा जो इस जीवन में या अगले जीवन के भौतिक लाभ की इच्छा से रहित करता है, वह मनुष्य अपना मन परमेश्वर में लीन कर योगावस्था को प्राप्त कर लेता है। नैष्कर्म्य का यही प्रयोजन है। अतः निष्काम कर्म, इन्द्रियों को वश में करना, योगलिप्सा से विरक्त हो ईश्वर में साधक के रूप में सर्वस्य समर्पण करना तथा सांसारिक विषादों से मुक्त होकर निर्मल मन से परमात्मा में एकाकार होना सर्वोच्च योगावस्था होती है।

संस्कृत का आधार गीता है, गीता के माध्यम से ही व्यक्ति को परम तत्व मे विलीन होने का ज्ञान प्राप्त होता है। भगवद् गीता में परम सत्य की अनुभूति तीन रूपों में होती है, निर्गुण ब्रह्म, अन्तर्यामी परमात्मा तथा भगवान श्री कृष्ण गीता में भगवान, भौतिक प्रकृति, जीव तथा निष्काम कर्म की व्याख्या की गयी है।

परमसत्य की सभी धारणायें निराकार ब्रह्म अन्तर्यामी परमात्मा है। जीव अपने मूलरूप में शुद्ध आत्मा है, वह परमात्मा का एक परमाणु मात्र है। जो साधक के रूप में उपस्थित है। अतः मनुष्य को साधक के रूप में निष्काम कर्म, भोग से विरक्त होकर इन्द्रियों को वश में कर योग की उच्चावस्था को प्राप्त करना चाहिये, यही गीता का उद्देश्य है।

अनेकचित्तविभान्ता मोहजालसमाकृताः।
प्रसक्ताः लाभमोगेशु पतन्ति नरकेऽषुचौ।।

नरक के विषय में गीता में स्पष्ट है कि अनेक प्रकार से भ्रमित चित्त वाले मोह में फंसे आसुरी स्वभाव वाले मनुष्य नरक में जाते हैं। नरक के विषय में श्रीयोगेस्वर कहते हैं कि मुझसे द्वेष रखने वाले नराहामों लो मैं बारम्बार आसुरी योनियों में गिराता हूँ। अजस्त्र आसुरी योनियों में गिराता हूँ यही नरक है। काम, क्रोध और लोभ नरक के द्वार हैं, जिसमें आसुरी सम्पद गठित होती है।

पाप के विषय में गीता में स्पष्ट है कि रजोगुण में उत्पन्न काम और क्रोध भोगों से कभी तृप्त न होने वाले महान पापी होते हैं, अतः पाप का उद्‌गम काम एवं कामनायें हैं। इन्द्रियों मन और वृद्धि इसके वास स्थान होते हैं। योगेश्वर के अनुसार इन्द्रियों, मन और बुद्धि की शुद्धि जप, यज्ञ तथा ध्यान से तथा निष्काम कर्म से ही सम्भव है।

गीता सार्वभौम है। धर्मग्रन्थों के नाम से प्रचलित विश्व के समस्त धर्मग्रन्थों में गीता का स्थान अद्वितीय है। गीता वह कसौटी है, जिस पर प्रत्येक धर्म ग्रन्थ में अनुस्यूत सत्य अनावृत हो उठता है, परस्पर विरोधी कथनों का समावेश निकल आता है। प्रत्येक धर्म ग्रन्थ में कर्मकाण्डों का बाहुल्य है तथा कर्मकाण्डों की इसी परम्परा को मानव धर्म समझने लगता है। जीवन निर्वाह की कला के लिये निर्मित पूजा पद्धतियों में देश, काल और परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन स्वाभाविक है। गीता इन क्षणिक व्यवस्थाओं से ऊपर उठकर आत्मिक पूर्णता में प्रतिष्ठित करने का क्रियात्मक अनुशीलन है, इसका प्रत्येक अंश आन्तरिक आराधना की मांग करता है। अतः गीता में कर्म, धर्म, वर्ण, ज्ञान आदि पर विशेष बल दिया गया है, गीता एक ऐसा श्रेष्ठ धर्म ग्रन्थ है, जो मानव को स्वर्ग या नरक के इन्द्र में फंसाकर नहीं छोड़ता, बल्कि उसे अमरत्व की उपलब्धि कराता है, जिसके पश्चात् जन्म–मरण का बन्धन समाप्त हो जाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. भगवत् गीता – 6/1
2. भगवत् गीता – 6/3
3. भगवत् गीता – 6/18
4. भक्तिरसामृत सिन्धु – 2/234
5. श्वेता श्वतर उपनिषद् – 6/23
6. यथार्थ गीता – 6/46

तान्त्रिक वाङ्मय में योग साधना

✍ डॉ. शिवराम यादव

भारतीय आध्यात्मिक चिन्तन की दो धाराएं अनादि काल से प्रवाहित होती चली आ रही हैं। इनमें एक वैदिक धारा है और दूसरी आगामिक। आगम और निगम परस्पर विरूद्ध न होकर एक दूसरे के पूरक हैं। ये दोनों भारतीय संस्कृति के मूल उत्स हैं। तान्त्रिक वाङ्मय से तात्पर्य शैव और शाक्त आगम ग्रन्थों से है। आगमिक साहित्य भी वेद की भाँति ही अपौरूषेय है। यह भगवान् शिव के मुख से निकली हुई वाणी है। आगम ग्रन्थ शिव और पार्वती के संवाद रूप में प्राप्त होते हैं। तन्त्र की चर्चा आने पर सबसे पहले यह प्रश्न उठता है कि, तन्त्र क्या है ?

इस प्रश्न के उत्तर में जितना भी कहा जाय, वह कम ही है। संक्षेपतः तन्त्र शब्द से तात्पर्य उस शास्त्र से है, जिसमें लोक कल्याण के मार्ग की विस्तार से चर्चा की गयी हो। अर्थात् तन्त्र और आगम अज्ञान में पड़े हुए जीवों की उद्धार का मार्ग बताते हैं। अतः स्पष्ट है कि, अभ्युदय निःश्रेयस की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्थ करने वाले शास्त्र को तन्त्र कहा जाता है। अध्यात्म भारतीय चिन्तन का प्राण है। यहाँ सब कुछ लोक कल्याण की भावना से जोड़कर देखा जाता रहा है। सभी गवेषणाओं में अध्यात्म और लोकहित का शिव रूप अवश्य दृष्टिगोचर होता रहा है।

तन्त्र शब्द तन् धातु से ष्ट्रन प्रत्यय लगाकर बनता है। तन् धातु विस्तारार्थक है। अतः तन्त्र का अभिप्राय उस शास्त्र से है, जिसके द्वारा ज्ञान का विस्तार होता है। (तन्यते विस्तीर्यते ज्ञानमनेन इति तन्त्रम्)। तन् धातु के अतिरिक्त तन्त्र शब्द त्रै (रक्षा करना) धातु से भी निष्पन्न माना जाता है। अतएव तन्त्र विपुल अर्थो का विस्तार करने के साथ–साथ तदनुसार आचरण करने वाले व्यक्तियों का त्राण भी कहते हैं। जैसा कि उक्त है–

तनोति विपुलान् अर्थान् तन्त्र मन्त्र समन्वितान्।
ताणं च कुरूते यस्मात् तन्त्रमित्यभि धीयते।।

आगम और तन्त्र के विषय में कहा गया है, कि यह भगवान् शिव के मुख से निकल कर गिरीजा के कानों में गये हैं, और वासुदेव द्वारा सम्मत होने के कारण आगम कहलाते हैं। आगम ग्रन्थों में देवी भैरवी प्रश्न कर्तृ के रूप में अवतरित मतं च वासुदेवस्य तस्मादागं उच्यते उच्यते।। सर्वोल्लास तंत्र–1/15 होकर जगत् कल्याणार्थ प्रश्न करती हैं, और भगवान् भैरव उन प्रश्नों का उत्तर देते हैं। आगम शास्त्र में सृष्टि स्थिति, प्रलय, देवार्चन, साधना, पुरश्चरण षट्कर्म साधन, तथा ध्यान योगादि का वर्णन

✍ वरिष्ठ प्रवक्ता, संस्कृत, डी. आर. पी. जी. कालेज, सेवरा (फैजाबाद)

मिलता है। मुख्यतः समस्त तान्त्रिक वाङ्मय चार विषयों का प्रतिपादन करते हैं।– ज्ञान, क्रिया, चर्या और योग।

शिव पुराण दर्शन में उक्त विषयों का लक्षण निम्न प्रकार से किया गया है –

पशु पाश पति ज्ञानं ज्ञानमित्यभिधीयते।
षडध्व शुद्धिर्विधिना गुर्वाधीना कियोच्यते।।
वर्णाश्रम प्रयुक्तस्य मयैव विहितस्य च।
ममार्चनादि धर्मस्य चर्या चर्येति कथ्यते।।
मदुक्तेन मार्गेण मययवस्थित चेतसः।
वृत्यन्तर निरोधो हि योग इत्यभिधीयते।।

अर्थात् आगम शास्त्र के अनुसार– पति, पशु और पाश के ज्ञान को ज्ञान कहा जाता है। प्रत्येक आगम ग्रन्थों में इस ज्ञान का विस्तार से वर्णन किया गया है। दीक्षा आदि के द्वारा षडध्व की शुद्धि किया है। यह गुरू कृपा से प्राप्त होती है। भगवान् शिव के द्वारा उपदिष्ट मार्ग, जो वर्णाश्रम में प्रयुक्त शिवार्चन आदि धर्मों से युक्त दिनचर्या है, उसे चर्या कहा जाता है। भगवान शिव के द्वारा बताये गये मार्ग से शिव में ही चित्त को स्थिर करके वृत्तियों का निरोध कर देना ही योग है।

अद्वैतवादी शैव आगम ग्रन्थों में शिव और शक्ति का अभेद प्रतिपादन विस्तार से वर्णित है। आगम के अनुसार भगवान् शिव इस जगत् के परम कारण हैं। छत्तीस तत्वात्मक यह जगत् शिव की इच्छा स्वातन्त्र्य का लीला विलास है। इस जगत् की पारमार्थिक सत्ता न होकर, माया और पंचकंचुकों के वश में पड़े हुए शिव की शक्तियों का संकोच ही संसार रूप में अवभासित होता है। अतः स्पष्ट है कि आगम शास्त्र का मुख्य प्रतिपाद्य विषय शिव के अद्वय स्वरूप का प्रतिपादन है।

शैव और शाक्त तन्त्र की मान्यताएँ समान हैं। अन्तर केवल यह है कि शैव मत में शिव की प्रधानता है, और शाक्त मत में शक्ति की। दोनों का लक्ष्य है शिव और शक्ति में अभेद की स्थापना। यही अभेद अवस्था शिव और शक्ति का महा मिलन या सारस्य स्वरूप है। इस स्थिति में वैषम्य या भेद नहीं रहता है। यह चिदानन्दमयी अद्वैत निष्ठा है। यही परावस्था है, किन्तु इस दशा को किसी नाम से अभिहित नहीं किया जा सकता है। यह बुद्धि विचार और ध्यान से परे अव्यक्त एवं स्वयं प्रकाश है। आत्म तत्व सर्वातीत और सर्वात्मक है। उसमें कुछ भी नही है और वह सब कुछ है। सब देश और सब कालों में ऋषि महर्षियों ने उसके विषय में डर–डर कर ही चर्चा की है। यहाँ तक की उस अद्वेय तत्व का वर्णन करने में वेद भी चकित होते हैं– 'अतद्व्यावृत्या यं चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि'।

परम प्रकाशमय चिदानन्दधन स्वरूप अद्वेय तत्व की प्राप्ति कठिन साधना का विषय है। जब साधक का अन्तः करण परम शान्त हो जाता है, और उसके चित्त की वृत्तियाँ निरूद्ध हो जाती हैं, वह एक मात्र अद्वेय तत्व के चिन्तन में लीन हो जाता है, तो उसे आत्म तत्व की पहचान हो जाती है। वह एक मात्र

अद्वेय स्वरूप परम तत्व के चिन्तन में लीन हो जाता है, तब उसे आत्म तत्व की पहचान हो जाती है। यही आत्म तत्व या शिव तत्व जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और संहार का कारक है। आगम शास्त्र में वर्णित सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोधान, और अनुग्रह रूप पंच कृत्य शिवाधीन हैं।

अतः स्पष्ट है, कि तन्त्र जगत् कल्याण का मार्ग बताते हैं। ये अभ्युदय और निःश्रेयस् की प्राप्ति में सहायक होते हैं। शैव और शाक्त तन्त्र द्वैत, द्वैताद्वैत और अद्वैत के भेद से तीन प्रकार के माने गये हैं। यहाँ अद्वैत वादी तान्त्रिक साधना से ही महत्ता को स्वीकार किया गया है। नास्तिक दर्शन भी योग की महत्ता को किसी न किसी रूप में स्वीकार करते हैं। योग मनुष्य को शरीर, इन्द्रिय, मन आदि के समस्त बन्धनों से मुक्त कराता है। यहाँ तक कि यह शरीर की पुष्ठता से लेकर अन्तः करण की शुद्धता तक के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है। मानव जीवन का परम लक्ष्य मुक्ति है, जो शुद्ध अन्तःकरण और शान्त मन से मिल सकती है। महर्षि पतंञजलि ने "योगश्चित्तवृत्ति निरोधः" कहकर योग को परिभाषित किया है। मानव अन्तः करण की चन्चलता को निरूद्ध कर देना ही योग है।

योग शब्द 'युजिर् योगे' में धञ्प्रत्यय के योग से बना है जिसका शाब्दिक अर्थ है— किसी वस्तु अथवा पदार्थ से संयोग। इस प्रकार योग शब्द का विकसित अर्थ हुआ अप्राप्त की प्राप्ति। योग साधना के द्वारा मनुष्य उस दुर्लभ वस्तु को प्राप्त कर लेता है, जो जीवन का चरम लक्ष्य है। योग की परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है। महर्षि पतंञजलि ने योग सूत्रों की रचना करके इसे सुव्यवस्थित स्वरूप प्रदान किया है। याज्ञबल्क्य स्मृति के अनुसार योग के आदिवक्ता हिरण्यगर्भ हैं। योग के बिना तान्त्रिक सिद्धियों की प्राप्ति सम्भव नहीं है। अतः विज्ञान भैरव, योग वाशिष्ठ, स्वच्छन्द तन्त्र, मालिनी विजय तन्त्र, रूद्रयामल तन्त्र प्रभृति आगम ग्रन्थों में योग के छः अंगों की विस्तार से चर्चा की गयी है। महर्षि पतंञजलि के योग दर्शन में योग के आठ अंग बताए गये हैं। अष्टांग योग चित्त की वृत्तियों को नियंत्रित करने के साथ–साथ शरीर को भी नियंत्रित करने में सहायक होते हैं। शैव, वैष्णव, और बौद्ध तन्त्र ग्रन्थों में षडँ. योग की मान्यता है । इनमें पतंञजलि योग के यम, नियम और आसन की योगाङ्ग के रूप में स्वीकार नहीं किया गया है। बौद्ध तन्त्रों में 'मनुस्मृति' को और शैव–एवं वैष्णव तन्त्रों में 'तर्क' को भी योगाङ्ग माना गया है।

अनुपाय प्रक्रिया में यह बताया गया है, कि साधक उपाय के रूप में केवल सत्तर्क को ही ग्रहण करता है। शैव,वैष्णव,बौद्ध सभी सम्प्रदायों में षडङ्ग योग की ही मान्यता है। गुह्य समाज तन्त्र में प्रत्याहार, ध्यान, प्राणायाम, धारणा, मनुस्मृति और समाधि ये छः योग के अंग माने गये हैं। मालिनी विजय और तन्त्रालोक जैसे तान्त्रिक ग्रन्थों में तर्क को श्रेष्ठ योगाङ्ग बताया गया है।

योगाङ्.गत्वे समाने डपि तर्को योगाङ्.गमुत्तमम्।

भारतीय वाङ्.मय में तर्क की प्रतिष्ठा बहुत पहले हो चुकी थी। निरूक्त में यह कहा गया है कि, ऋषियों की परम्परा का अन्त होने पर मनुष्यों ने देवताओं से प्रश्न किया कि अब हमारे बीच ऋषि का कार्य कौन करेगा ? इस प्रश्न के उत्तर में देवताओं ने मनुष्यों को तर्क शक्ति प्रदान किया और कहा कि यही तर्क

अब ऋषियों का कार्य करेगा। स्पष्ट है कि योगाङ्गों में तर्क का महत्वपूर्ण स्थान है। आगम और तन्त्र ग्रन्थों में योग के छः अंगों का वर्णन मिलता है। नेत्र तन्त्र, सर्वोल्लास तन्त्र, मृगेन्द्र तन्त्र, प्रभृति कुछ आगम ग्रन्थों में अष्टांग योग की मान्यता है, किन्तु अधिसंख्य आगमों में शषडड्.ग योग का ही उल्लेख मिलता है। प्राणायाम, धारणा, प्रत्याहार, ध्यान, तर्क और समाधि यहीं तान्त्रिक वाड्.मय में वर्णित योगाड्.ग हैं।

योग साधना की दृष्टि से प्राणायाम का अत्यधिक महत्व है। जीव की श्वास– प्रश्वास की गति सामान्य रूप से निरन्तर चलती रहती है। सामान्य रूप से चलने वाली इस गति को नियन्त्रित करना ही प्राणायाम है । इसी श्वास–प्रश्वास को आगम शास्त्र में प्राण और अपान कहा गया है। प्राण और अपान के दो आधार भूत आश्रय हैं। प्रथम अन्तर आकाश–हृदय और दूसरा वाहयाकाश–द्वादशान्त। हृदयाकाश में स्थित कमल कोशों से प्राण का और द्वादशान्त से अपान का उदय होता है। योग शास्त्र की प्रक्रिया के अनुसार–'सकल' और 'प्रलयाकल' समस्त जीवों के प्राण और अपान की पूरक, रेचक और कुम्भक दशा बिना किसी प्रयत्न साध्य के चलती रहती है। योग दर्शन के अनुसार–पूरक, कुम्भक, रेचक, केवल कुम्भक प्राणायाम के ये चार भेद बताए गये हैं। किन्तु विज्ञान भैरव नामक आगम ग्रन्थ में प्राण और अपान रूप दोनों आश्रयों के अलग–अलग–रेचक, प्रथम पूरक, द्वितीय पूरक और कुम्भक तथा वाह्य रेचक, प्रथम वाहय पूरक, द्वितीय वाहय पूरक और वाह्य कुम्भक के भेद से आठ प्रकार के प्राणायाम का उल्लेख किया गया है। ह्दय कमल से प्राण का स्वेच्छया वहिर्मुख होना रेचक कहा जाता है। प्राण हृदय कमल से बाहर निकलते समय बारह अंगुल तक अंगों के द्वारा स्पर्श किया जाता है। यही प्रथम पूरक कहलाता है। बिना किसी प्रयत्न के ही बाहर से अपान के लौटते समय अंगों से जो स्पर्श होता है वही द्वितीय पूरक कहा जाता है। अपान के ह्दय में विलीन हो जाने पर जब तक पुनः प्राण का उदय नहीं होता, तब तक की अवस्था कुम्भक कही जाती है।

जब अपान द्वादशान्त से ह्दय की ओर उन्मुख होता है, तो यह अवस्था वाह्य रेचक कही जाती है। अपान द्वादशान्त से उठकर स्थूल रूप धारण कर लेता है, तो यही अवस्था वाह्य पूरक की होती है। जब यह नासिका के अग्र भाग तक पहुँच जाता है, तो इसे द्वितीय वाह्य पूरक कहा जाता है। हृदय कमल से निकल कर प्राण का थोड़ी देर तक द्वादशान्त में विलीन हो जाना वाहय कुम्भक कहा जाता है।

अतः स्पष्ट है कि, प्राणायाम के विभिन्न भेद मिलते हैं, किन्तु साधारणतः प्राण और अपान की गति को नियन्त्रित करके अद्वेय स्वरूप परम तत्व का चिन्तन ही प्राणायाम है। विज्ञान भैरव और पतंञजलि योग दर्शन में प्राणायाम के भेदों में अत्यधिक समानता है। यद्यपि योग दर्शन में केवल प्राण को अथवा श्वास को ही आधार मानकर प्राणायाम का विभाजन किया गया है। किन्तु विज्ञान भैरव में प्राण और अपान दोनों को आधार मानकर प्राणायाम के आठ भेद किये गये हैं। विज्ञान भैरव का यह विभाजन अति सूक्ष्म है। इसका ज्ञान सामान्य जन को न होकर सिद्धि प्राप्त योगियों को ही होता है।

जब साधक चित्त को परम शुद्ध अद्वेय तत्व अथवा शुद्ध विमर्श में स्थिर करता है, तो यही अवस्था 'धारणा' नामक योग है। योग सूत्र के अनुसार धारणा का लक्षण है– "देश बन्ध चित्तस्य धारणा" अर्थात् शरीर के किसी अंग विशेष या बाह्य पदार्थ से चित्त को सम्बद्ध कर देना ही धारणा है। यही चित्त की एकाग्रता ही योग साधना का मूल मन्त्र है। इसी अवस्था का निरन्तर अभ्यास करने वाला साधक समाधिस्थ हो जाता है। शब्द स्पर्श आदि विषयों और उसके सात्विक आदि स्वरूपों में मनुष्य की चित्त वृत्तियाँ रमने लगती हैं। इस प्रकार के विकल्पात्मक विषयों से मन को हटाकर उसे शुद्ध संविद् रूप में लगाने को 'प्रत्याहार' कहा जाता है। विज्ञान भैरव में कहा गया है –

यत्र–यत्र मनो याति तत्तत् तेनैव तत्क्षणम्।
परित्यज्यानवस्थित्या निस्तरंगस्ततो भवेत्।।

इस प्रकार प्रत्याहार का निरन्तर अभ्यास करने वाला साधक समस्त पापों से मुक्त हो जाता है और परम अद्वेय तत्व में लीन होने लगता है। जब साधक बुद्धि तत्व के गुणों से ऊपर उठकर निष्कल स्वरूप, अद्धेय, व्यापक स्वयं संवेद्य, 'परम शिव' में मन को स्थिर करता है, जो यही अवस्था ध्यान है। ध्येय विषय का निरन्तर मनन करते रहने पर उसका ज्ञान हो जाता है। इस स्थिति में योगी अपने ध्येय वस्तु से तादात्म्य स्थापित कर लेता है।

आगम और तन्त्र ग्रन्थों में तर्क को सर्वश्रेष्ठ योगाड.ग के रूप में स्वीकार किया गया है। चित्त के द्वारा हेय और उपादेय वस्तुओं की आलोचना करके किया गया निश्चय ही तर्क है। तर्क के द्वारा साधक हेय विषय का त्याग करके उपादेय वस्तु में ही अन्तः करण को स्थिर करता है। अर्थात् सत् और असत् के निर्धारण को ही तर्क कहा जाता है।

समाधि अन्तिम योगाड्.ग है। यह योग की चरम अवस्था है। जब साधक का चित्त बाह्य और अभ्यन्तर विषयों में भ्रमण करते हुए किसी एक विषय में स्थिर हो जाता है, और उसी में अखण्डात्मा, अद्वेय स्वरूप, परम तत्व का दर्शन करने लगता है, तो यही समाधि की अवस्था कही जाती है। योग दर्शन में चित्त को किसी एक विषय पर देर तक लगाने या स्थिर करने को समाधि कहते हैं।–"समाधीयते एकाग्री क्रीयते चित्तं इति समाधिः" अर्थात् जिससे चित्त की प्रमाण आदि वृत्तियों का अवरोध हो जाता है, उसे समाधि कहते हैं। चित्त को एकाग्र करने के लिए योगी निरन्तर अभ्यास करता रहता है, अभ्यास करते रहने पर जब व्यक्ति का अन्तः करण ध्येय वस्तु पर अडिग हो जाता है और उसी में ब्रह्मानन्द का अनुभव करने लगता है, तो यही समाधि की अवस्था होती है। सर्वोल्लास तन्त्र में कहा गया है, कि जब शैव साधक अथवा शिव भक्त 'शिवात्मा' हो जाता है, अर्थात् उसका शिव के साथ तादात्म्य हो जाता है, और उसके मन में यह भावना विकसित होती रहती है, कि यह सम्पूर्ण जगत् मुझसे व्याप्त है, तो यह दशा समाधि कही जाती है। कहा भी गया है –

शैवोऽपि शिव भक्तष्च
शिवात्मा वै यदा भवेत्।
तदा ध्यानम सदा कार्यम्
शिव शान्त जगन्मयम।।

इसी प्रकार गीता में भी कहा गया है–

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुश्टः स्थित प्रज्ञस्तदोच्यते।।

अर्थात् जब मनुष्य अन्तः करण की समस्त कामनाओं का परित्याग करके आत्म स्वरूप में ही सन्तुष्ट रहता है, ऐसी दशा को स्थितप्रज्ञ या समाधिस्थ कहा जाता है। इस अवस्था में अन्तः करण की तरंगे निश्चल हो जाती हैं। साधक एकाग्र चित्त हो जाता है और परम तत्व का साक्षात्कार कर लेता है। विज्ञान भैरव में कहा गया है, कि चंचल मन और उसके संकल्प–विकल्पात्मक संवेदनशील, पीतादि बाह्य विषयों और सुख दुःख आदि आभ्यन्तर विषयों की ओर भागते रहते हैं। अतः चंचल मन जहाँ भी जाए, उसे वहीं उसी क्षण निस्तरंग कर देना चाहिए। क्योंकि सम्पूर्ण जगत् में जब शिव ही व्याप्त है, तो वह भाग कर कहाँ जायेगा। जैसा की उक्त है –

यत्र–यत्र मनोयाति बाहये वा आभ्यन्तरे प्रिये।
तत्र–तत्र शिवावस्था व्यापकत्वात् क्व यास्यति।।

अतः स्पष्ट है कि मन को किसी एक बिन्दु पर स्थिर करना ही समाधि है। जो योग की पूर्णावस्था है। नेत्र तन्त्र नामक आगम ग्रन्थ में पतंञजलि योग सम्मत अष्टांग योग का वर्णन मिलता है, किन्तु इन दोनों के स्वरूप में कुछ भिन्नता पायी जाती है। यद्यपि अधिसंख्य आगमों में शषडङ्ग योग का ही वर्णन मिलता है। कही– कही 'अनुस्मृति' योग भी माना गया है।

अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि योग की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। यह महर्षि पतंञजलि से पूर्व ही वैदिक और तान्त्रिक वाङ्मय में किसी न किसी रूप में प्रचलित थी। तान्त्रिक वाङ्मय में बिना योग के सिद्धि प्राप्त करना असम्भव है। तान्त्रिक सिद्ध योग साधना के द्वारा आश्चर्यजनक सिद्धि को प्राप्त करते थे। तन्त्र साधना का परम् उद्देश्य शिवावस्था की प्राप्ति है, जो स्थिर चित्त के बिना असम्भव है। योग मुद्रा अथवा समाधि ही चित्त की एकाग्रता का एक मात्र साधन है। अतएव यह कहा जा सकता है कि योग तान्त्रिक वाङ्मय का एक महत्वपूर्ण अंग है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. भारतीय दर्शन – आचार्य बल्देव उपाध्याय-- शारदा प्रकाशन मंदिर वाराणसी
2. भारतीय दर्शन– चटर्जी एवं दत्त
3. तान्त्रिक वाङ्मय में शाक्त दृष्टि– पंडित गोपी नाथ कविराज– राष्ट्र भाषा परिषद् पटना
4. पंतञजलि योग दर्शन – स्वामी ब्रह्मलीनमुनि
5. तन्त्र यात्रा – प्रो0 ब्रज बल्लभ द्विवेदी
6. विज्ञान भैरव –संपादक– प्रो0 ब्रज बल्लभ द्विवेदी
7. श्रीमद्भगवत्गीता गीता प्रेस गोरखपुर
8. भारतीय संस्कृति और साधना–डॉ0 गोपी नाथ कविराज
9. वि0 भै0– 113
10. भारतीय संस्कृति और साधना

वैदिक वाङ्मय में लोककल्याण की अवधारणा

✍ **डॉ. रामेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी**

वैदिक वाङ्मय की चिन्तन धारा लोक–कल्याण एवं जीवन–दर्शन की अवधारणा से ओत–प्रोत है। वेदों में जीवन के विविध–पक्षों को उद्घाटित किया गया है। लोक–कल्याण के अन्तर्गत मानव–जीवन के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक आदि सभी पक्षों को परिगणित किया जाता है। वेदों में न केवल आध्यात्मिक अभ्युन्नति का प्रतिपादन किया गया है बल्कि भौतिक अभ्युदय के अन्तर्गत व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र तथा लोक–कल्याण के समग्र स्वरूप का चिन्तन पदे–पदे प्राप्त होता है। वैदिक ऋषियों ने जहाँ एक ओर विश्वशान्ति एवं विश्वबन्धुत्व का मंगलभाव अभिव्यक्त किया है वहीं दूसरी ओर सर्वात्मभाव एवं समष्टिभाव की प्रेरणा प्रदान की है। द्युलोक को पिता और पृथ्वी को माता मानने वाले वैदिक ऋषियों ने अपने को विशाल विश्व का अधिवासी माना है –

> **"द्यौर्मेपिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्मे माता पृथिवी महोयम्" ऋ0 1.164.33**
> **"पृथिवी माता द्यौष्पिता।" यजु0 2.10–11**
> **" भूमिर्माता, भ्राताऽन्तरिक्षम्, द्यौर्नः पिता। अथर्व0 6.120.2**

वैदिक देवताओं का कार्यक्षेत्र विश्वव्यापी है। उनकी प्रार्थनाएँ सार्वभौम और सार्वकालिक हैं। विश्वशान्ति एवं विश्वबन्धुत्व से ओतप्रोत वैदिक ऋचाओं में लोक–कल्याण के लिए सौहार्द, मित्रता, समानता, संगठन तथा साहाभ्य की भावनाओं का व्यापक स्वरूप परिलक्षित होता है। वैदिक समाज समत्त्व का पोषक था। मानवीय समानता की भावना, मानवीय अन्तःकरण की निर्मलता का केवल आधार नहीं वरन् समस्त सद्गुणों के विकास का केन्द्र बिन्दु है। वैदिक ऋषियों ने वेदकालीन समाज के अनेक उदात्त सिद्धान्तों और विशाल आदर्शों को सामने रखकर, लोक–कल्याण को ही अपने जीवन का चरम लक्ष्य निर्धारित किया। समत्त्व भावना जहाँ एक ओर आत्म साक्षात्कार का प्रथम सोपान है, वहीं दूसरी ओर मानवमात्र में अपेक्षित भावात्मक एकता और राष्ट्रीयता का मूलभाव है। समत्त्व भावना से ओतप्रोत चित्त स्वार्थ से शून्य होने के साथ–साथ निष्ठावान् हो जाता है।

तपोवनाश्रित वैदिक ऋषियों का सम्पूर्ण चिन्तन समष्टिगत व लोक कल्याणपरक था। सृष्टि विज्ञान के प्रथम ग्रन्थ वेदों में प्राप्त अग्नि, वायु, जल पृथ्वी, आकाश, विश्वदेव तथा ब्रह्म इत्यादि से सम्बन्धित प्रार्थनाएँ विश्वशान्ति की उदात्त भाव को प्रदर्शित करती हैं –

> **"द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः**

✍ उपाचार्य एवं विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग, रामस्वरूप ग्रामोद्योग (पी. जी.) कालेज, पुखरायाँ (कानपुर देहात)

वनस्पतयः शन्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्व शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि" (यजु0 36.17)

अर्थात् द्युलोक, अंतरिक्ष लोक और पृथ्वी लोक, सुखशांतिदायक हो, जल–औषधियों और वनस्पतियाँ शान्ति देने वाली हों, समस्त देवता, ब्रह्म और सबकुछ शांतप्रद हो। जो शान्ति विश्व में सर्वत्र फैली हुई है, वह मुझे प्राप्त हो। मैं सर्वदा शान्ति का अनुभव करूँ।

ऋग्वेद में भी –

"शं नः सूर्य उरूचक्षा उदेतु
शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु" (ऋ0 7.35.8)

अर्थात् अत्यन्त विस्तृत तेज से युक्त सूर्य का उदय हम सब के लिए शान्तिदायक हो। चारों दिशाऐं हमारे लिए शांति देने वाली हों।

लोक–कल्याण की उदात्त भावनाओं से ओतप्रोत ऐसे अनेक मंत्र हमारे आर्य साहित्य में अनुस्यूत हैं। एक आदर्श जीवन की संकल्पना ही ऋषि–मुनियों की प्रार्थनाओं का अभीष्ट विषय था। उन्होंने विभिन्न देवों की स्तुतियों में अपनी समष्टि भावना को अभिव्यक्त किया है। उन्होंने दूसरों के हित में अपना हित देखा है। यह भावना सामाजिक जीवन का प्राण है। वैदिक धर्म का मूलभूत मौलिक सिद्धान्त 'समष्टि भावना' रही है। यही कारण है कि अधिकतर वैदिक प्रार्थनाएँ बहुवचनों में हैं –

"स्वस्ति नः इन्द्रोवृद्धश्रवाः स्वास्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति न स्तार्क्ष्योऽअरिष्ट नेमिः स्वतिनो बृहस्पतिर्दधातु।।" (यजु0 16.32)
"यद् भद्रं तन्न आ सुव" (यजु0 30.3)
"धियो यो नः प्रचोदयात्" (यजु0 3.35)

मधुर लोकजीवन की अभिव्यक्ति ही मन्त्र दृष्टा ऋषियों की स्तुतियों का प्रतिपाद्य था। वे स्तुति करते हुए कहते हैं कि हमारे लिए हवाएँ मधुरतापूर्ण रस बहाकर लावें, नदियों का पानी हमारे लिए मीठा तथा सारी वनस्पतियाँ भी हमारे लिए मधुरता प्रदान करें। दिन, रात्रि, ऊषा, पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्युलोक, वनस्पति, सूर्य, गायें ये सभी हमें मधुरता प्रदान करें (ऋ0 1.90, 6–8) वैदिक ऋचाओं में ऋषियों द्वारा विविध देवों से कल्याण, शान्ति, सुख तथा मंगल की सामूहिक कामनाएँ की गयी हैं –

"शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः।। ऋ0 1.90.9

इसी प्रकार निर्भयता (ऋ0 9.78.5, 8.61.13) निष्पापता (अनागास्त्वं नो अदितिः कृणातु। ऋ0 1.162.22, वा0सं0 5.36) जय (ऋ0 1.102.4) सुमति (ऋ0 3.1.23) रक्षा (ऋ0 1.36.15) धन, गौ आदि सम्पत्ति (ऋ0 1.81.7, 9.62.12), निरोगता (यथा नः सर्वामिज्जगद् अयक्ष्म वा0 स0 16.4) शुक्ल यजुर्वेद के शिव संकल्प सूक्त में मन को कल्याणकारी संकल्पों से युक्त होने की कामना की गयी है– तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु'। मन का अन्तःकरणों में प्रमुख स्थान है। मन के शुद्ध रहने पर व्यक्ति का आचरण सुसंस्कृत होता है। मन की एकाग्रता के बिना मनुष्य कोई भी कार्य सम्पादित नहीं कर सकता। इसी तरह ऋषि द्वारा 'विश्वानि देव सवितुर्दुरितानि परासुव। यद् भद्रं तन्न आसुव'– मंत्र के माध्यम से समस्त दुर्गुणों को हटाने एवं कल्याण की आकांक्षा की गयी है।

वेदों में मनुष्य के नैतिक जीवन को उच्च एवं आदर्श बनाने के लिए वैदिक ऋषियों ने मानव के इच्छाशक्ति की दृढ़ता पर बल दिया। यदि मनुष्य की इच्छाशक्ति दृढ़ है तो वह जीवन में कठिन से कठिन कार्यों को कर सकता है। ऋग्वेद में कहा गया है कि दृढ़ संकल्प के कारण मनुष्य सदा विजयी होता है तथा पर्वत जैसे विघ्न भी उसके समक्ष धराशायी हो जाते हैं–

"न पर्वतासो यदहं मनस्ये"। ऋ0 10.26.5

वैदिक ऋचाओं में मनुष्य की क्रियाशीलता पर बल दिया गया है। निरन्तर क्रियाशीलता ही जीवन है। कर्तव्य की भावना से किया गया निष्काम कर्म मनुष्य को बन्धन में नहीं डालता –

"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् शतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।। यजु0 40.2

वैदिक मनीषी त्यागवृत्ति से, अनासक्त भाव से जीवन जीने की शिक्षा मनुष्यों को देता है –

"ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंचजगत्यांजगत्।
तेन त्यक्तेन भुन्जीथा मा गृधः कस्यास्विद् धनम्।।

ईशा0 उप0 1

अथर्ववेद के कुछ सूक्तों में 'सामनस्यम्' एवं 'समचित्तता' पर बल दिया गया है[3]। द्रोह एवं संघर्ष की शांति और संघर्षरत पक्षों में समन्वय की प्रार्थना की गयी है–

"सहृदयं सामनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।– अथर्व0 3.30.1

परिवार में समन्वय की आकांक्षा की गयी है (अथर्व0 3.30) पुत्र पिता का अनुवर्ती तथा माता के समान मन वाला हो, पत्नी पति से मधुर वचन बोले। भाई–भाई से घृणा न करें और न बहन–बहन से एक चित्त होकर एक उद्देश्य में संलग्न होकर तुम प्रेम भरे वचन बोलो (अथर्व0 3.30–1–30)।

अथर्ववेद के अन्य सूक्तों में समचित्तता की महत्ता को स्वीकार कर ही अथर्ववैदिक ऋषियों ने सभी मनुष्यों में शरीर, मन, और कर्म तथा मन और हृदय की एकता पर बल दिया है –

"संज्ञपनं वो मनसोथे संज्ञापनं हृदः।" अथर्व0 6.74.2
सं वः पृच्यन्तां तन्वः सं मनांसि समुव्रता। अथर्व 6.74.1
इमांजनान्त्संमनसंस्कृधीह। तदेव 6.64.3
सहृदयं सांमनस्यमविद्वेष कृणोमि वः। तदेव 6.74.3

वैदिक ऋचाओं में किसी से द्वेष न करने को ही मानवीय व्यवहार का आदर्श माना गया है।

वेदों में सहभोज, सहपान, सहगमन तथा सहवार्ता को संगठन का सुदृढ़ आधार माना गया है। संगठन से ही लोक एवं समाज की उन्नति होती है। ऋग्वेद के अन्तिम सूक्तों में संगठन का उपदेश देते हुए कहा गया है कि– मिलकर चलो, मिलकर बोलो, तुम्हारे मन चित्त, विचार और लक्ष्य एक हों –

संगच्छध्वं सं वदध्वम्, सं वो मनांसि जानताम्। ऋ0 10.191.2
समानी मंत्रः समितिः समानी, समानं मनः सह चित्तमेषाम्। ऋ0 10.191.3

वैदिक ऋषियों ने सह–अस्तित्व की भावना को समाज के विकास में सहायक माना है। ऋग्वेद के एक मन्त्र में यह प्रार्थना की गयी है कि हमारे विचार, हृदय, और लक्ष्य एक हों, जिससे सह–अस्तित्व की भावना जागृत हो सकें –

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।। ऋ0 10.191.4

प्राणिमात्र के प्रति मैत्रीभाव से ही लोक–कल्याण सम्भव है। यजुर्वेद की ऋचाओं में यह कामना है कि सब प्राणी मुझे मित्र की दृष्टि से देखें। मैं सब प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखूँ। हम सब प्राणी परस्पर एक–दूसरे को मित्र की दृष्टि से देखें –

मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।। यजु0 36.18

अतएव मानसिक संकीर्णता का परित्याग एवं सबको समान मानना ही मैत्रीभाव का मूल कारक है। एक दूसरे के प्रति सहानुभूति सहयोग, प्रेम और उपकार के व्यवहार आचरणीय है। एक दूसरे के प्रति रक्षा का भाव और सहायता करना मनुष्य का परम कर्तव्य है –

पुमान् पुमांसं परिपातु विश्वतः। ऋ० 6.75.14

इसी प्रकार वैदिक ऋचाओं में मनुष्य मात्र के प्रति सौहार्द कल्याण भावना और सद्भावना की अनेकों अवधारणायें प्राप्त हैं –

शन्नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे। वा०सं० 36.8
स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः।। अथर्व० 1.31.4

अन्ततः यह कह सकते हैं कि वैदिक ऋचाओं में लोक–कल्याण की अवधारणा वैदिक संस्कृति की व्यापक दृष्टि का एक सुन्दर निदर्शन है। यह वैदिक आर्यों का वह महानतम प्रतिमान है जो मनुष्य जीवन के बहुपक्षीय चिन्तन को प्रकाशित करता है। वे आज भी मानवमात्र के कल्याण के लिए उतने ही प्रभावी हैं जितने कि वैदिक युग में थे। आवश्यकता है उन्हें अपने जीवन में उतारने की, समझने की तथा उसके व्यावहारिक, लोकोपयोगी तत्वों का जन–जन तक पहुँचाने की। तभी उन क्रान्तदृष्टा ऋषियों की प्रार्थनाएँ अर्थवती हो सकेंगी –

"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाग्भवेत्।।"

सन्दर्भ

1. यजु० मा०सं० 34 अध्याय, 107 कण्डिका।
2. ऋ० 5.82.5, यजु० 30.3 तैतिरीय ब्राह्मण 2.4.6.3
   तैतिरीय आरण्यक 10.10.2
3. अथर्व० 6.64,73,746.52

वैदिक वाङ्मय और मानवधर्म

✍ डॉ. आशा रानी पाण्डेय

अपने प्रतिभा चक्षुओं से साक्षात्कृत धर्म ऋषियों द्वारा अनुभूत तत्त्वों की विशाल विमल ज्ञान गंगा का नाम वेद है। ज्ञान की प्रथम राशियाँ वेद भास्कर से ही प्रस्फुटित हुई थीं। वेद संतप्त और दुःखी मानव जाति को कल्याण मार्ग बताने वाला प्रकाश स्तम्भ है तथा मनुष्य की ऐहिक और पारलौकिक उभयविध उन्नति का मार्ग प्रशस्त करता है। उसे वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय कर्त्तव्यों का ज्ञान कराकर सुख, शान्ति और आनन्द का सच्चा मार्ग बताना वेदों का पवित्र उद्देश्य है।

मनुष्य विधाता की सृष्टि की सर्वोत्तम एवं सुन्दरतम रचना है। मनुष्य जन्म अत्यंत दुर्लभ है 'दुर्लभं मनुष्यत्वम्'। वेदों का स्पष्ट आदेश है कि 'मनुर्भव' अर्थात् मनुष्य बनो, निसंदेह यह सूक्ति इस बात की परिचायक है कि मनुष्य योनि में जन्म लेने मात्र से मनुष्य, मनुष्य नहीं हो जाता, अपितु सतत् मननशील होने से वह मनुष्य बनता है। सम्पूर्ण सृष्टि के समस्त व्यापार मनुष्य रूपी केन्द्र बिन्दु के चारों ओर परिभ्रमित होते हैं – "नहि मनुषात् श्रेष्ठतरं हि किचिंत" मनुष्य के अन्दर निहित चिंतनशीलता, विवेकशीलता एवं मननशीलता तथा आत्मिक उन्नति की प्रबल भावना ही उसे सृष्टि में विद्यमान अन्य योनियों से पृथक करती हैं। जिस मानव की इतनी महत्ता है और जो विश्व की परिधि का केन्द्र बिन्दु स्वीकार किया गया है, वह यथार्थ में है क्या ? इस प्रश्न पर गम्भीरतापूर्वक विचार करें तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि वह मात्र स्थूल शरीर नहीं है। अन्नमय कोश के रूप में परिलक्षित मनुष्य और तत्जन्य क्रियाकलाप अवश्यमेव सत्य हैं, जो कि अन्य पशुओं में भी स्वभावतः दृष्टिगोचर होता है परन्तु यह तो मनुष्य का केवल पशुभाग है। विज्ञानमय एवं मनोमय कोश के रूप में मानव में देवत्व भाग भी विद्यमान है। जो उसकी श्रेष्ठता को प्रतिपादित करता है।

भारतीय संस्कृति के अनुसार मनुष्य मर्त्य और अमृत्य का संयोग हैं शरीर मर्त्य और आत्मा अमृत्व भाग है। अमृतत्व भाग का चैतन्य रूप, मन के रूप में पार्थिव शरीर में सभी कार्यों का केन्द्र है। यह मन बुद्धि से संयुक्त होकर इन्द्रियों के द्वारा कार्यों को सम्पन्न कराता है। जब तक मर्त्य और अमर्त्य दोनों भागों का एक साथ विकास नहीं होगा। तब तक मानव अतृप्त एवं अपूर्ण रहेगा। या यूँ कहना चाहिए कि दोनों के समन्वय के बिना संतुलित मानव का आविर्भाव हो ही नहीं सकता। मनुष्य को क्षुद्र स्वार्थों से ऊपर उठाकर संम्पूर्ण मानवता की भव्य संभावनाओं को देखने की सामर्थ्य का नाम मानववाद है मनुष्यों में दैवी गुण जाग्रत करना ही आध्यात्म है यही मानव धर्म है।

भोग प्रधान जीवन का वरण करने से हमारा पशु भाग अधिकाधिक क्रियाशील हो जाता है, जो अन्ततः हिंसा, द्वेष तथा विनाश की ओर ले जाता है। और जीवन को स्वार्थपरता से पूर्ण कर देता है। जब

✍ रीडर, संस्कृत विभाग, डी. जी. कालेज, कानपुर

हम इस प्रकृति प्रधान भोगमय जीवन से ऊपर उठ कर अध्यात्म के धरातल पर मानव मन को लाते हैं तो अमृत्व का विकास होता है। और हम त्यागमय चिंतन से अपना संबंध जोड़ते हैं।

पशुभाग को त्याग कर मानव को अध्यात्म के धरातल पर समन्वयात्मक जीवन जीने के लिए उसमें दैवीय गुणों का विकास करना ही आध्यात्मिक प्रगति है। सुख शान्ति का सच्चा मार्ग है। इसी मार्ग का नाम यज्ञीय–भाव है।

इन्हीं यज्ञीय भावों का विकास ही 'वसुधैव कुटुम्बकम' का भाव है। यही मनुष्यत्व है। यही मानवधर्म है। इस भाव को वेदव्यास जी के शब्दों में अवलोकित किया जा सकता है –

''आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत''।'

अर्थात् जो स्वयं के लिए अच्छा नही लगता दूसरों के लिए वैसा कर्म न करें। यही दैवीय भाव का आधार है। वर्तमान परिस्थितियाँ, जीवन चिन्तन, मानव को तीव्र गति से भोग प्रधान संस्कृति और मान्यताओं से जोड़ रही है। मानव आत्मकेन्द्रित होता जा रहा है। मनुष्य ने आज जिस धर्म स्वरूप को आत्मसात कर लिया है। वह धर्म न होकर विभिन्न प्रकार की मान्यताओं, धारणाओं, उपासना पद्धतियों, रीति रिवाजों के आधार पर मात्र जीवन पद्धतियाँ ही तो हैं, जो व्यक्ति के अन्तर्मन में एक प्रकार की संकीर्णता और अलगाववाद को जन्म देती है। प्रत्येक क्षेत्र में नेतृत्व प्रदान करने वाले अग्रणी और प्रतिष्ठित लोग स्व क्षुद्र स्वार्थ साधना हेतु सामान्य जन जीवन में घृणा का ऐसा विष घोल रहे हैं। जिससे लोग धर्म के नाम से घृणा करने लगे है इतना ही नही आज का बुद्धि एवं तर्क प्रधान मनुष्य ईश्वर की सत्ता पर भी प्रश्न चिन्ह लगाने लगा है।

वास्तविकता तो यह है कि आज हम हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, पारसी, यहूदी, बौद्ध, जैन, पुराणी, किरानी सब हैं परन्तु मनुष्य नही हैं। हमारी समस्त चेतना जड़ता से प्रभावित हो चुकी है। इसलिए मानव शरीर तो है परन्तु मानवधर्म लुप्तप्राय हो चुका है। मानवता का अधार मनुष्य की स्वस्थचित्तता विवेक मृतप्राय है।

तो धर्म एवं मानवधर्म क्या है ? आइये इस पर विचार करें। मेरी दृष्टि से धर्म सृष्टि के नियमों के अनुसार जीवन को सुचारू रूप से संचालित करते हुए आत्मोन्नति करने की विद्या का नाम है। धर्म का उद्देश्य मनुष्य को पूर्ण बनाना है। अर्थात् शरीरिक, मानसिक, आर्थिक और धार्मिक अवस्थाओं की सम्पूर्णता परन्तु प्रचलित मतमतान्तर या विभिन्न सम्प्रदाय इस तथ्य की ओर चिन्तन नहीं करते। परिणाम है भ्रम और भटकाव। आज धर्म ने ठेकेदारी का रूप धारण कर लिया है तथा विज्ञापन के आधार पर इसका भी व्यवसाय हो रहा है तथा धर्म भी अन्य वस्तुओं की भांति क्रय और विक्रय की वस्तु बन गया है। एतदर्थ समस्त विश्व मानव मूल्यों से रहित होकर हिंसा और कलह की चपेट में आ गया है। ऐसी स्थिति में धर्म की सच्ची परिभाषा क्या हो सकती है ? क्या धर्म अधर्म का स्वरूप जनमनस को स्पष्ट है ? क्या वास्तव में

वैदिक धर्म मानवधर्म के निकट है ? प्रत्येक युग में धर्म चरमराता तो अवश्य है तो सम्प्रति क्या हमारा समाज उस दौर से गुजर रहा है ? क्या आज हमारे समाज को वैदिक धर्म की आवश्यकता है या यूँ कहें कि क्या वैदिक धर्म आज की कलह, हिंसा, अनाचार, अत्याचार, कदाचार से पीड़ित स्वार्थान्ध मानव को सुख शान्ति का सच्चा प्रशस्त मार्ग दिखा सकता है इन्हीं प्रश्नों के उत्तर प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से शोधकर्ता ने अन्वेषित करने का प्रयास किया है।

धर्म शब्द का भाव है :–

"धारणात् धर्म इत्याहु धर्मोधारयते प्रजाः"[2]

अर्थात धारण किये जाने से ही धर्म का धर्मत्व है यह धर्म ही सम्पूर्ण प्रजाओं को धारण करता है अर्थवेद का स्पष्ट आदेश है कि –

"ध्रुवां भूमि पृथ्वीं धर्मणा धृताम"

अर्थात् धर्म के द्वारा धारण किया हुआ राष्ट्र ही ध्रुव होता है। यहाँ धर्म से तात्पर्य हिन्दू या मुस्लिम धर्म से नहीं है, धर्म तो वही है जो अभ्युदय और निःश्रेयस् की प्राप्ति कराए –

"यतोऽभुदयनिः श्रेयससिद्धः स धर्मः"[3]

शास्त्रकार जानते थे कि उपरोक्त धर्म का पालन अत्यन्त सहज नहीं है, वह कठोर तप की अपेक्षा करता है। तो धर्म की अत्यन्त सरल सहज परिभाषा दी गई "यथायोग्यवाद" अर्थात् जो जिसके उपयुक्त है उससे वैसा ही व्यवहार करना धर्म है –

"यस्मिन् यथा वर्तते यो मनुष्यः।
तस्मिन् तथा वर्तितव्यं स धर्मः।।"

वैदिक धर्म का मूल है यज्ञ। यज्ञ का शाब्दिक अर्थ है देवपूजा संगतिकरण एवं दान। बाह्र रूप से तो यज्ञ आहुत द्रव्य का अग्नि में प्रक्षेप है परन्तु जिस कर्म का उद्देश्य स्वार्थ नहीं परार्थ होता है जिस कर्म से आवरण क्षीण होता है वही यज्ञ है। क्योंकि इससे कर्म बुद्धि मन अहंकार की शुद्धि होकर वास्तविक कल्याण होता है। उपादेय का ग्रहण और सारहीन का त्याग ये दोनों क्रियाएं यज्ञ के स्वरूप की प्रतिपादिका हैं। धर्म के समस्त सार को अहिंसा का नाम दिया गया है – 'अहिंसा परमोधर्मः'[4] यही धर्म की वैदिक परिभाषा है।

भौतिक उन्नति हिरण्यमयी जगमगाती वस्तुओं का चाकचिक्य और अलौकिक चकाचौंध मनुष्यों को प्रतिदिन मृगमारीचिका की भाँति आकर्षित करते हैं और इन्द्रियरूपी मृगों को लुभाते हैं। निरंकुश भोग

भोगने से हम भोगों को नहीं भोगते अपितु हम ही भोगे जाते हैं "भोगा न भुक्ता वयमेव भूक्ताः" "तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा" असीमित भोग विनाशकारी है एतदर्थ ऋषियों ने त्यागपूर्वक भोग करो का उपदेश दिया है क्योंकि त्यागपूर्वक जीवन यापन करने वाला मनुष्य दुराचार के पंक में नहीं डूबता है उसका जीवन संयमी सरल और तपस्वी होता है –

"ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किं च् जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुजीज्थाः मा गृधः कस्यस्विद् धनम्।।"[5]

"यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्" ऐसे निवास कर कि सारा विश्व तेरे लिए एक घोसला बन जाए। "सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु" सभी दिशाएं मेरी मित्र बन जाएं। "मित्रस्य चक्षुषा सवार्णि भूतानि समीक्षे"[6] अर्थात् हम सभी प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखें। वेदों का उद्घोष है कि समस्त मनुष्य एक समान हैं उनमें परस्पर किसी भी प्रकार की भिन्नता नहीं है। ये सभी अपनी शक्तियों से ऊपर उठते हैं और महत्वाकांक्षा से आगे बढ़ते हैं –

"अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते, सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय।।"[7]

सबका कल्याण सोचना ही मानव धर्म होना चाहिए उसमे जातिगत या वर्णगत अन्तर कदापि नहीं करना चाहिए इसी भाव को परिपुष्ट करता हुआ निम्न वैदिक मंत्र ध्यातव्य है।

"प्रियं सर्वस्य पश्यत् उतशूद्र उतार्ये।।"[8]

हम सबके जीवन का लक्ष्य एक हो हृदय और मन एक हो ताकि परस्पर मिलकर जीवन में उस लक्ष्य को प्राप्त कर सकें –

"समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।"[9]

मानव अन्नमय है अतः वेद सहभोज की व्यवस्था प्रदान करता है "सहभक्षाः स्याम्" क्योंकि अकेले खाने वाला पाप का भागी होता है : "केवलाघोभवति केवलादी"

वैदिक चिन्तन धारा सर्वत्र भद्र का दर्शन श्रवण करने का दिव्य संदेश देती है यह भद्रभावना भोगैश्वर्य प्रसक्त इन्द्रियलोलुप या समयानुकूल अपना काम निकालने वाले आदर्शहीन व्यक्तियों की वस्तु नहीं है –

"विश्वानिदेव सवितर्दुरितानि परासुव यदभद्रं तन्न आसुव।"[10]

अर्थात् – हे समग्र ऐश्वर्ययुक्त प्रभो हमारे सम्पूर्ण दुर्गुणों दुर्व्यसनों और दुःखों को दूर कर जो कल्याण कारक गुण कर्म स्वभाव और पदार्थ हैं वे सब हमें प्राप्त कराइए। मानव का वास्तविक धर्म यह है कि वह अपनी जिव्हा के द्वारा कठोर रूखे तीखे व्यंग बाणों का प्रयोग न करे जब भी बोले शहद से भी मीठा बोलें – "जिहवा मे मधुमत्ता" संसार में, समाज में, परिवार में जो हमसे ज्येष्ठ हैं, गुणों में श्रेष्ठ हैं उनकी सेवा करना मानवधर्म है और यही सच्चा सुख है "मातृदेवोभव पितृदेवोभव आचार्यदेवोभव"[11] आदि वैदिक मंत्र इसी भाव को परिपुष्टता प्रदान करते हैं। आधुनिक युग अर्थ का युग है। संपूर्ण संसार आकण्ठ अर्थ चिंतन में निमग्न है क्योंकि "सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ते।"[12] परन्तु संप्रति अर्थ प्राप्ति के साधनों की पवित्रता नष्ट प्राय है किन्तु वैदिक ऋषि सुपथ से अर्थ प्राप्ति की कामना करते थे।

"ओ अग्नये नय सुपथा राये"[13]

धन से मनुष्य तृप्त नहीं हो सकता "न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः"[14] भौतिक इच्छाओं की पूर्ति अर्थ तो कर सकता है परन्तु शाश्वत परमानन्द की प्राप्ति नहीं करा सकता। भौतिक समृद्धि, ऐश्वर्य और पारलौकिक सुख दोनों परस्पर विरोधी नहीं है। हमारे ऋषियों ने अपने जीवन में इसे व्यवहारिक रूप से चरितार्थ कर एक अदभुत विलक्षण आदर्श उपस्थित किया है।

वैदिक धर्म के विवेचन के उपरान्त हम कह सकते हैं कि आर्यधर्म या वैदिक धर्म को ही हम सनातनधर्म या सार्वभौम मानवधर्म कह सकते हैं इसलिए इसको विभिन्न तत्कालीन वा तत् उद्देशीय संप्रदायों या मतों के साथ एक तुला में नहीं रखा जा सकता। हमारा यह विश्वास केवल भावना मूलक ही नहीं है, इसका आधार ठोस कारणों पर है। सनातन सार्वभौम मानवधर्म की कसौटी यही हो सकती है कि उसमें मानवता के उत्कृष्ट पद के लिए पूरे सम्मान व गौरव का और उसके प्रति शुद्ध न्याय तथा सत्य के व्यवहार का स्थान हो। हमारे प्राचीन साहित्य में इसी तथ्य को आनृशंस्यम इस पद से प्रकट किया गया है पर खेद का विषय है कि मानवता के प्रति सम्मान व गौरव के भावों के साथ–साथ इस पद का प्रयोग भी प्रायः हमारे वर्तमान समाज से लुप्त हो गया है।

वैदिक धर्म की यह बहुत बड़ी विशेषता है कि पृथ्वी पर प्राचीनतम धर्म दर्शन होने के साथ–साथ आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धान्तों से भी अनुमोदित हो रहा है।

अन्त में मैं सिर्फ इतना ही कहूँगी की सम्प्रति नैतिकता धर्म और श्रम निष्ठा पर आधारित वैदिक धर्म अनेक प्रकार की विषमता, वैमनस्य, कटुता से संत्रस्त मानवता की रक्षा कर सकता है। वेद समाज में सुख शान्ति एवं ऐश्वर्य की भागीरथी प्रवाहित करना चाहता है। अतः हमें सत्य सनातन आर्यधर्म के प्राणप्रद संदेशों के मौलिक सिद्धान्तों को मनसा, वाचा, कर्मणा अपनाये बिना और उनके आधार पर भारतीय समाज का पुनः निर्माण किए बिना हम उसके प्रकाशमान स्वरूप को जगत के सामने प्रकट नहीं कर सकते इन सिद्धान्तों को अपनाने की हमें नूतन दृढ़ प्रतिज्ञा इन शब्दों में करनी चाहिए।

"ओं ध्रुवा धौर्ध्रवा पृथ्वी ध्रुवं विश्वमिदं जगत् ।
ध्रुवसः पर्वता इमे ध्रुवा स्याम व्रते वयम् ।।"

सन्दर्भ सूचिका

1.	पद्मपुराण सृष्टि	—	19—355
2.	महाभारत		
3.	बुधस्मृति		
4.	मनुस्मृति	—	1—108
	एवं महाभारत	—	अनुशासनपर्व 116—28—29
5.	यजुर्वेद	—	40—1
6.	यजुर्वेद	—	36—18
7.	ऋग्वेद	—	5—60—5
8.	अथर्ववेद	—	19—62—1
9.	ऋग्वेद	—	10—191—4
	एवं		
	अथर्ववेद	—	6—64—3
10.	ऋग्वेद	—	5—82—5
	एवं		
	यजुर्वेद	—	30—3
11.	तैत्तरीयोपनिषद्	—	1—11—8
12.	नीतिशतकम्		
13.	अग्निसूक्त	—	1—4
14.	कठोपनिषद्	—	1—1—27

वैदिक वृष्टिविज्ञान

✍ डॉ. (श्रीमती) सुधा गुप्ता

वैदिक दृष्टि से वृष्टि के लिए द्युलोक, अन्तरिक्ष और पृथ्वी – इस त्रिक सन्निधान की आवश्यकता है। ऋग्वेद के एक मन्त्र में यह उल्लेख मिलता है कि समुद्र से प्राप्त जल को पृथ्वी, अग्नि के द्वारा धूम रूप में ऊपर भेजती है। अन्तरिक्ष में वायु के सहयोग से मेघों की रचना होती है और मरुत् वृष्टि के कारण होते हैं। इस प्रकार वर्षा के लिए द्युलोक, अन्तरिक्ष, पृथ्वी और चौथा समुद्र भी अपेक्षित है :–

"दिवा यान्ति मरुतो भूम्याग्निः अयं वातो अन्तरिक्षेण याति ।
अद्भिर्याति वरुणः समुद्रैः ।" – ऋग्वेद 1/161/14

वस्तुतः द्युलोक में सूर्य अपनी किरणों से समुद्र, नदी आदि के जल को भाप के रूप में ऊपर ले जाता है और वर्षा का कारण होता है। वर्षा के लिए मरुतों का बहुत बड़ा योगदान होता है। मरुत् ही वह साधन हैं, जो पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक को एक सूत्र में पिरोकर वर्षण कार्य सम्पन्न कराते हैं। समुद्र के जल को अन्तरिक्ष में ले जाना, मेघों की रचना में सहयोग और वर्षण यह सभी कार्य मरुद्गणों के ही हैं। यजुर्वेद का तो स्पष्ट कथन है कि –

'मरुतां पृशतीर्गच्छ, वशा पृश्निर्भूत्वा दिवं गच्छ, ततो नो वृष्टिमावह ।
– यजु0 2/16

समुद्रं गच्छ, अन्तरिक्षं गच्छ .... दिवं ते धूमो गच्छतु, पृथिवीं भस्मनाऽऽपृण।
– यजु0 6/21

अथर्ववेद तो मरुतों को जल का स्वामी कहता हैं। आचार्य सायण के अनुसार वायु ही सूत्रात्मा के रूप में सारे संसार को धारण किए हुए है – 'सूत्रात्मना सर्व जगद् धार्यते'। ऋग्वेद के अनुसार सूर्य और अग्नि (ऊष्मा, ताप) द्यु, भू और अन्तरिक्ष तीनों में व्याप्त है और इसीलिए इसे त्रिवृत् कहते हैं। वायु (मातरिश्वा) इन तीनों का ही संयोजक है –

घर्मा समन्ता त्रिवृतं व्यापतुः – ऋग्वेद 10/114/1

और पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक– ये ही मरूतों की वृद्धि के मुख्य स्थान हैं, क्योंकि वायु की प्रक्रिया सर्वाधिक यहीं होती है। ऋग्वेद में तो अनेकों मन्त्र ऐसे भरे पड़े हैं, जो कि मेघ निर्माण

✍ रीडर, संस्कृत विभाग, जुहारी देवी, गर्ल्स (पी. जी.) कालेज, कानपुर

और वृष्टि में सहायक इन तीनों लोको की पुष्टि करते हैं तथा मरुतों को इनका संवाहक व संयोजक बताते हैं। यथा –

'ये वावृधन्त पार्थिवा य उरावन्तरिक्ष आ । .... सधस्थे वा महो दिवः।'

– ऋग्0 5/52/7

'समु त्ये महतीरपः सं क्षोणी सं सूर्यम् । सं वज्रं पर्वषो दधुः।'

ऋग्0 8/7/22 तथा 5/53/6, 5/55/5, 8/7/4, 14 आदि

इन मरुतों की एक विशेष बात ये है कि ये हमेशा समूह में रहते हैं, समूह में चलते हैं और समूह में ही अपनी सारी क्रियाएं सम्पन्न करते हैं। इसीलिए ये गण या व्रात (समूह) के रूप में प्रसिद्ध हैं – 'व्रातं व्रातं गणं गणं' ऋग्0– 5/53/10–11 ये बहुत प्रतापी व शक्तिशाली है। वृष्टि के कर्ता–धर्ता भी ये ही हैं। इन मरुद्गणों के कार्यों को देखते हुए यजुर्वेद में इनके चार भेद या चार नाम दिये गये हैं –

'मरुद्भ्यः सान्तपनेभ्यः, गृहमेधिभ्यः, क्रीडिभ्यः, स्वतवद्भ्यः।'

– यजु0 24/16

सान्तपन, गृहमेधी, क्रीड़ी और स्वतवस्। नाम के अनुरूप ही इनके कार्य भी हैं। यथा –

1. **सान्तपन** – ये अत्यधिक ताप अर्थात् तूफान और विद्युत् के द्वारा ऊष्मा उत्पन्न करते हैं।

2. **गृहमेधी** – गृहमेधी से तात्पर्य गृह–यज्ञ से है। ये सारी घरेलू व्यवस्था करते हैं। यथा– समुद्र से जल ढ़ोकर लाना फिर उसे दूध–दही की भाँति बादलों को जमाना। पुनश्च उनमें विद्युत् का संचार करके पूर्ण परिपाक करना और फलस्वरूप वर्षण करना।

3. **क्रीडी** – ये वास्तव में बहुत अच्छे खिलाड़ी स्वरूप ही होते हैं। अच्छे खिलाड़ी की तरह ही पूर्ण उत्साह से भरे उछल–कूद करते हुए आकाश में विचरण करते हैं और एक कुशल योद्धा की तरह अस्त्र–शस्त्र लेकर गरजते हुए तूफानी हवाएँ चलाते हैं। योद्धा की ही भाँति मरते–कटते और बरसते हैं।

4. **स्वतवस्** – स्वशक्ति सम्पन्न इन मरुद्गणों की अपनी ही विद्युत्–योजना होती है, जिससे ये त्रिलोक का भरण–पोषण व लालन–पालन करते हैं।

वेदों में वृष्टिकर्ता के रूप में मित्र और वरूण का भी अत्यधिक उल्लेख प्राप्त होता है –

'मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिषादसम्। धियं घृताचीं साधन्ता।'

– ऋग्0 1/2/7

मित्र प्राणशक्ति अर्थात् धनात्मक है, जबकि वरुण अपानशक्ति अर्थात् ऋणात्मक है। ये दो प्रकार की शक्तियाँ आकाश में ऑक्सीजन व हाइड्रोजन के रूप में पायी जाती हैं, जिनके मिलने से जल बनता है। हाइड्रोजन के दो अणु और ऑक्सीजन के एक अणु के अनुपात से गैसों को मिलाने पर विद्युत् संचार होते ही जल बनता है। आकाश में स्वतः ही दोनों गैसों के मिश्रण का यह क्रम सदैव चलता रहता है और जल तैयार होता रहता है। ये ही जल बरसाकर पृथ्वी को तृप्त करते हैं, अन्न–समृद्धि देते हैं और वृक्ष–वनस्पतियों को भी जीवन प्रदान करते हैं। वरूण को जल का स्वामी कहा गया है, क्योंकि वर्षा पर उसी का आधिपत्य माना गया है। यद्यपि इन दोनों पर नियन्त्रण वायु का ही रहता है।[2]

वैज्ञानिक दृष्टि से भी किसी द्रव्य का कण (Particle) यदि थोड़ी सी भी तडित्शक्ति (Positive; k Negative electricity) वहन करते हुए घूमे तो वही charged particle ही (Ion) आयन कहलाता है। किसी भी तरल या वायवीय पदार्थ के कण यदि इसी प्रकार के वाहन बन जायें तो उस तरल या वायवीय पदार्थ को Ionised (तडित्–शक्तियुक्त) कहा जायेगा।[3] वर्षा में यज्ञ का भी विशेष महत्व है। वस्तुतः यज्ञाग्नि में आहुत द्रव्य विद्युतकणीभूत (Ionised) हो जाता है। यज्ञीय अग्निशिखाओं द्वारा दग्ध द्रव्य जब गैस बनकर ऊपर की ओर जाता है तो उसके सूक्ष्मकण (Ion) तडित्शक्तियुक्त (Charged) हो जाते हैं। इन्हीं कणों में से कुछ 'धन' (Positive) तडित् और कुछ 'ऋण्' (Negative) तडित् को वहन करते हुए बाहर निकलते हैं। इन्हें ही क्रमशः ऑक्सीजन और हाइड्रोजन के रूप में जाना जाता है, जिनका मिश्रण जल है।

अथर्ववेद के अनुसार सूर्य की सात किरणें वर्षण कराती हैं, इसीलिए सूर्य किरणों को वृष्टिवनि अर्थात् वृष्टिकर्ता या वृष्टिदाता कहा जाता है। ये किरणें ही समुद्र से जल को भाप रूप में ऊपर ले जाती हैं और वृष्टि कराती है –

'अव दिवस्तारयन्ति सप्त सूर्यस्य रष्मयः । आपः समुद्रिया धाराः।'–

– अथर्व0 7/107/1

'स्वाहा सूर्यस्य रष्मये वृष्टिवनये।'

– यजु0 38/6

यज्ञ द्वारा मेघ निर्माण व वर्षा का उल्लेख वेदों में अनेक मन्त्रों में अनेकशः हुआ है। ऋग्वेद का तो स्पष्ट कथन है कि –

अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः।

—1/164/35

यज्ञ–प्रक्रिया ही संसार का केन्द्र (Nucleus) अर्थात नाभि है। सम्पूर्ण सृष्टिक्रम एक बृहत् यज्ञ है। वर्षचक्र, ऋतुचक्र आदि सभी का आधार यज्ञ है –

बसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः षरद् हविः । – ऋग0 10/90/6

यजुर्वेद में इसी ऋतुभेद से मेघ के 6 भेदों का वर्णन प्राप्त होता है –

'वीध्र्याय, आतप्याय, मेघ्याय, विद्युत्याय, वर्ष्याय, अवर्ष्याय। – यजु0 16/38

इनमें से शारदीय मेघ वीध्र्य है, ग्रीष्मकालीन मेघ आतप्य है, वर्षाकालीन मेघ मेघ्य है, विद्युतयुक्त मेघ विद्युत्य है, बरसने वाले मेघ वर्ष्य है और न बरसने वाले मेघ अवर्ष्य हैं ।

यजुर्वेद तथा अथर्ववेद दोनों ही के अनुसार वर्षा की नाभि (केन्द्र) समुद्र है –

समुद्रे ते हृदयम् । यजु0 18/55, समुद्रे अन्तर्निहितासि नाभिः।–अथर्व01/13/3

समुद्र ही वह आधार है, जो मेघों को जन्म देता है। समुद्र से उठी भाप का ही परिवर्तित रूप मेघ है, जिससे वर्षा होती है। यजुर्वेद में इस वाष्प बनने की प्रक्रिया को मधुमय लहर कहा गया है और वर्षा को अमृत की नाभि अर्थात जीवनी शक्ति का केन्द्र –

'समुद्रादूर्मिर्मधुमान् उदारत् – अमृतस्य नाभिः। यजु0 17/89

यजुर्वेद के एक मन्त्र में कहा गया है कि पृथ्वी (वर्षा, पृश्नि) अपने प्रतिनिधि के रूप में भाप रूप होकर ऊपर जाती है और वहाँ से वृष्टि लाती है –

'मरुतां पृषतीर्गच्छ, वषा पृश्निर्भूत्वा दिवं गच्छ, ततो नो वृष्टिमावह '।–यजु02/16

अथर्ववेद भी कुछ इसी प्रकार का वर्णन करता है –

'उदीरयत मरुतः समुद्रतस्त्वेशो अर्को नभउत् पातयाथ।

वाश्रा आपः पृथ्वीं तर्पयन्तु' –

अथर्व 4/15/5

ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदों में भी वृष्टि विषयक विस्तृत सामग्री प्राप्त होती है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार वृष्टि के चार प्रमुख सहायक हैं –

1. **पुरोवात (पूर्वी हवा) 2. अभ्र (बादल) 3. विद्युत् 4. स्तनयित्नु (गर्जन)**

– शतपथ 1/5/2/18

बृहदारण्यक और छान्दोग्य उपनिषदें अग्नि के तीन रूपों का वर्णन करते हुए तीनों लोकों के सहयोग से वर्षा का सौंपिपौं. वर्णन प्रस्तुत करती हैं। ये तीन अग्नियाँ क्रमशः 1. द्युलोक में आदित्य (सूर्य) 2. अन्तरिक्ष में पर्जन्य (मेघ, विद्युत) और पृथ्वी पर अग्नि है। वर्षा के उपकरण – वायु, अभ्र, विद्युत, अषनि, घनगर्जन और सोमीय द्रव्य है, जो कि प्रत्येक अग्नि की समिधा, धूम, अर्चिस् (लपट), अंगार, विस्फुलिंग (चिनगारी) तथा हव्य के रूप में वर्णित है –

'पर्जन्यो वाव गौतमाग्निः, तस्य वायुरेव समिद्, अभ्रं धूमो, विद्युदर्चिः, अषनिरङ्गाराः, ह्रादुनयो विस्फुलिंगाः।' – बृहदा0 6/2/9, छान्दो0 5/4/5

तैत्तिरीय आरण्यक के अनुसार सात प्रकार के पर्जन्य (मेघ, बादल) वर्षा के द्वारा पृथ्वी को तृप्त करतें हैं –

'वराहवः, स्वतपसः, विद्युन्महसः, धूपयः, ष्वापयः, गृहमेधाः, अषिमिविद्विशः पर्जन्याः सप्त0 । – 1/9/4–5

ये भेद वर्षा के सुखद–असुखद, कम–अधिक, बिजली की कम या अधिक चमक तथा घने–हल्के आदि भेदों के आधार पर किये गये हैं।

वेदों में मेघों के गर्भाधान, पुष्टि और प्रसव आदि के साथ–साथ यज्ञ से कृत्रिम वर्षा कराने का भी उल्लेख प्राप्त होता है। ऋग्वेद के अनुसार सूर्य की किरणें पृथ्वी को उर्वराशक्ति देने वाले वर्षा के जल को साढ़े छह मास अर्थात् 195 दिन रोक कर रखती है। इस अन्तराल में वे आकाश मे चारों ओर फैले रहते हैं और बाद में वर्षा के द्वारा पृथ्वी को तृप्त करते हैं। भाप को मेघरूप में परिवर्तित होने में 195 दिन का समय लगता है। मेघों के गर्भाधान से लेकर प्रसव तक की इस अवधि में मेघ–भ्रूण का सम्यक् परिपाक होने से वृष्टि उत्तम कोटि की होती है। अन्यथा गर्भपात व गर्भस्राव होने से अवृष्टि, अतिवृष्टि व उपलवृष्टि आदि हानिकारक वर्षा होती है।

ऋग्वेद का एक पूरा सूक्त कृत्रिम वर्षा कराने का विधान 12 मन्त्रों में बतलाता है।[4] अन्यत्र यज्ञ में 99 हजार आहुतियाँ देने से शीघ्र वर्षा होती है।[5] तिस्रो वाच :– आदि ऋग्वेद के 7/101/1–6 मन्त्रों का भूखे रहकर 5 दिन तक लगातार जप करने से एवं वर्षकाम यज्ञ करने से

वर्षा होती है। यज्ञ से मेघ और मेघ से वर्षा होती है।[6] कारीरी इष्टि अथवा वर्षकाम इष्टि का विधान भी वर्षा के निमित्त ही किया जाता है।

मत्स्य पुराण[7], वायु पुराण[8] और विष्णु पुराण[9] आदि में भी वृष्टि विज्ञान सम्बन्धी कुछ सामग्री प्राप्त होती है, जिनमें मेघ निर्माण का प्रारम्भ, बादलों के विभिन्न भेद एवम् वर्षा आदि का वर्णन है। वर्षा में सूर्य के योगदान पर भी विस्तृत चर्चा हुई है। सूर्य की किरणें कब समुद्र आदि से जल वाष्प के रूप में ऊपर ले जाती है ? सूर्य का वर्षा पर क्या प्रभाव पड़ता है ? कब वर्षा होती है ? आदि–आदि।

सन्दर्भ सूची

1. अथर्व0 4/27/2–5 ।
2. ऋग्0 5/24/5, 5/62/3, 7/64/2, 7/64/4, यजु0 14/24
3. वेद व विज्ञान, स्वामी प्रत्यगात्मानन्द, पृ0 218, 219
4. ऋग्0 10/98/1–12
5. ऋग्0 10/98/10
6. ऋग्0 8/14/5
7. मस्त्यपुराण 124/29–34
8. वायुपुराण 51/13–16
9. विष्णुपुराण 2/9/8–12

वेदों में व्यक्तित्व–विकास

✍ डॉ. निरुपमा त्रिपाठी

पंञ्चमहाभूतों से निर्मित परमात्मा की सम्पूर्ण सृष्टि में सर्वश्रेष्ठ है मनुष्य। प्रत्येक मनुष्य का अपना पृथक्–पृथक् व्यक्तित्व होता है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार व्यक्तित्व एक ऐसा तंत्र है जिसके मानसिक तथा शारीरिक दोनों ही पक्ष होते हैं। इस तन्त्र के संवेग (Emotion), आदत (Habit), ज्ञान–शक्ति (Intellect), चित्त–प्रकृति (Temperament) तथा चरित्र (Character) आदि मानसिक गुण हैं जो शरीर पर आधारित होते हैं। व्यक्ति के विकास में उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। व्यक्तित्व–निर्माण में आनुवांशिक कारकों के साथ–साथ कुछ ऐसे भी कारक होते हैं जिनका सम्बन्ध मनुष्य के वातावरण, समाज या संस्कृति से होता हैं। मनोवैज्ञानिक आलपोर्ट के अनुसार -- 'Personality is the dynamic organization within the individual of those psychological systems that dettermine his unique adjustments of his environment'.

मानव–जीवन के प्रत्येक पक्ष से सम्बन्ध रखने वाले ज्ञान–भण्डार वेदों में व्यक्तित्व–निर्माण के भी अनेक उपाय निहित हैं। मनुष्य जिस पृथ्वी पर जन्म लेता है उसे उस अखण्ड पृथ्वी पर समभाव से निवास करने का सन्देश देते हैं वेद। उनमें वर्णित पृथ्वी का वैभव अखण्ड, विराट् विश्व के प्रत्येक प्राणी के लिए हैं। अथर्ववेद यह उद्घोष करता है कि नाना प्रकार की बोली एवं भाषा का प्रयोग करने वाले तथा अपने विचारों को भिन्न–भिन्न प्रकार से अभिव्यक्त करने वाले लोगों को पृथ्वी ने धारण किया है –

जनं विभ्रती बहुधा विवाचसं नाना धर्माणं पृथिवी यथौकसम्।
सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती।।

वेदों में वर्णित पृथ्वी का वैभव विराट् विश्व के प्रत्येक प्रत्येक प्राणियों के लिये है। ऋषि कामना करता है कि हमारी ऐसी मातृभूमि जिसमें जल की धाराएं प्रमादरहित होकर दिन–रात बह रही हैं, हमें तेजी से सींचें।

हमारे ऋषियों ने जिस सुखशान्तिमय वातावरण में 'हिरण्यवक्षा' पृथ्वी पर निवास करते हुए आत्मिक विकास की चर्चा की है वह परिवर्तित परिदृश्य वाली वर्तमान सृष्टि में कहीं भी दृष्टिगत नहीं होता। सर्वथा अशान्ति व्याप्त है जो व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक वैश्विक हर स्तर पर है। इसका परिणाम स्पष्ट है, कलहपूर्ण अशान्त वातावरण से उपजा अवसाद और नैराष्य जिसने न्यूनाधिक मात्रा में प्रत्येक आयुवर्ग के व्यक्ति को पीड़ित कर रखा है। मानव भौतिक दृष्टि से तो विकास के चरम तक पहुँचने

✍ असिस्टेन्ट प्रोफेसर (संस्कृत), कानपुर विद्या मन्दिर महिला (पी. जी.) महाविद्यालय, स्वरूपनगर, कानपुर

को उद्यत है परन्तु उसका आत्मिक विकास कहीं न कहीं अवरुद्ध हो रहा है। वैदिक साहित्य में इस प्रकार की समस्याओं के निवारण हेतु अनेकानेक समाधान प्राप्त होते हैं। आवश्यकता है उस दृष्टि से अवलोकन की।

किसी भी व्यक्ति के विकास की गति अधिक सीमा तक इस पर निर्भर है कि उसका पारिवारिक वातावरण कैसा है, शैशवास्था के अनुभव व्यक्तित्व–विकास के महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं। जिस बालक को माता–पिता अथवा परिवार से स्नेह नहीं मिलता वह आत्मकेन्द्रित हो जाता है क्योंकि उसकी भावनात्मक अनुक्रियाओं की आवश्यकता अपूर्ण रह जाती है। परिवार में सुख–शान्ति व्याप्त रहे इसका सुन्दर उपाय वेद में है कि पुत्र पिता के अनुकूल कर्म करें, माता के प्रति उत्तम भावनाओं को रखे, धर्मपत्नी से शान्तिमय भाषण करे। इतना ही नहीं भाई–भाई से द्वेष न करें, बहनों में भी परस्पर सामंजस्य हो।

परिवार से इस प्रकार के सामञ्जस्यपूर्ण व्यवहार का अभ्यास रखने वाला व्यक्ति ही मानव मात्र से सहभाव स्थापित कर सकेगा। इसके लिए मानसिक शक्ति को दृढ़ बनाते हुए मन एवं आत्मा को शुद्ध रखने की आवश्यकता है। शुभ संकल्पो वाले मन से संयुक्त व्यक्ति मर्यादाओं का पालन करते हुए सुखी हो सकता है। अनाचरण में लिप्त दुष्कर्म करने वाले कभी ऋत के मार्ग पर नहीं चल सकते –

ऋतस्य पंथा न तरन्ति दुष्कृतः।

'शिवसङ्कल्प सूक्त' में उत्तम ज्ञान, चित्त धैर्य, प्रजाओं के आन्तरिक प्रकाश रूप मन के लिए शुभसङ्कल्पों वाला होने की कामना की गयी है, जिसके बिना कोई कर्म सम्भव नहीं है। मन ही अच्छे सारथि के समान मनुष्यों को नियन्त्रित करता हुआ सन्मार्ग पर ले जाता है। अतः उसका शुभ सङ्कल्पयुक्त होना अत्यावश्यक है –

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।

मन को शान्त एवं सन्तुलित रखने में शुभ एवं कल्याणप्रद वाणी सर्वथा सहायक होती है। इस मर्म से परिचित ऋषि ने पूषा से कल्याणकारिणी वाणी की कामना की है। वाणी की महत्ता को समझ कर ही वैदिक मन्त्रों में न केवल मानव अपितु मानवेतर प्राणियों से भी शुभ एवं मङ्गल सूचक वचन बोलने की प्रार्थना की गयी है जिससे दुष्ट व्यक्ति का प्रभुत्व न हो सके। कटु वचन घोर मानसिक संताप का कारण है इसीलिए वेद में मधुर वाणी के प्रयोग का निर्देश प्राप्त हुआ है –

वाचं वदतु शान्तिवाम्।

व्यक्ति में संयमित मन एवं वाणी के साथ ही साथ सद्बुद्धि का होना भी अत्यावश्यक है। अच्छी बुद्धि ही उसे सन्मार्ग पर ले जा सकती है। ऋग्वेद में सर्वजन हितकारिणी शोभन बुद्धि प्रदान करने की प्रार्थना की गई है –

या ते अग्ने पर्वतस्येव धरासश्चन्ती पीपयद् चित्रा।
तामस्मभ्यं प्रमतिं जातवेदो वसो रास्व सुमतिं विश्वजन्याम्।

शोभन भावना केवल व्यक्तिगत न हो अपितु प्रत्येक व्यक्ति अपने मित्र के लिए भी कल्याण भावना से युक्त हो इसके लिए भी प्रेरणा स्वरूप मन्त्र प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद के एक मन्त्र में अग्नि से इसी प्रकार की प्रार्थना की गयी है। वैदिक उदात्त भावों में तो शत्रुओं के विनाश हेतु भी कल्याण का आश्रय लेने का सन्देश प्राप्त होता है। 'हे मरुतों हम लोग कल्याण द्वारा पाप का परित्याग करके निन्दक शत्रुओं को जीतें। इस प्रार्थना में इसी प्रकार का भाव परिलक्षित हो रहा है।

मानव जीवन रूप जटिल तन्त्र में शारीरिक ऊर्जा तथा मानसिक ऊर्जा दोनों ही होती है। शारीरिक ऊर्जा से शारीरिक क्रियाएँ एवं गतिविधियाँ नियन्त्रित होती हैं तथा मानसिक ऊर्जा से वह चिन्तन आदि मानसिक कार्य करता है। कभी–कभी विपरीत परिस्थितियों के कारण व्यक्ति अवसाद से ग्रसित हो जाता है। ऐसी दशा में आत्महत्या आदि के विचार उसके मन में आने लगते हैं अथवा कभी–कभी तो यह आपराधिक कृत्य वह कर भी बैठता है। मानसिक तनाव से उपजा आत्महत्या का यह विचार पाप है। यजुर्वेद में वर्णित है कि आत्महत्या करने वाला व्यक्ति अन्धकारमय लोक को प्राप्त होता है –

असुर्य्या नाममामते लोकाः अन्धेन तमसावृताः।
तान्स्ते प्रत्यापि गच्छन्ति येकेचात्महानोजनाः।।

दीर्घायु के लिए सदा प्रयासरत रहना चाहिए। वैदिक समाज में 'जीवेम शरदः शतम्' की भावना प्रत्येक व्यक्ति में विद्यमान थी। अथर्ववेद के एक मन्त्र के अनुसार दीर्घायु प्राप्त किए बिना मृत्यु को प्राप्त होना पाप है –

प्राणेन प्राणतां प्राणहैव भव मा मृथाः।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा।।

अथर्ववेद में ही यह कामना की गई है कि जिस प्रकार वर्षा होने से वृक्ष और वनस्पति आदि उगते हैं और निरन्तर वृद्धि प्राप्त करते हैं उसी प्रकार हम भी दीर्घायु प्राप्त करें –

आ पर्जन्यस्य वृष्ट्योदस्थामामृता वयम्।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा।।

पृथ्वी पर परमात्मा ने प्राणियों के लिए सभी प्रकार के सुख की व्यवस्था की है। व्यक्ति को जिस धन की कामना होती है यह पृथ्वी उसे सब ओर से प्रदान करती है। पृथ्वी की गुफाएं भी अनेक प्रकार के धन और मणियों को धारण किए हुए हैं –

निधिं विभ्रती बहुधा ग्रहा वसु मणिं हिरण्यं पृथ्वी ददातु मे।
वसूनि नो वसुदा रासमाना देवी दधातु सुमनस्यमाना।।

धन ही नहीं भौतिक शरीर की मूलभूत आवश्यकता अन्न भी पृथ्वी प्रदान करती है –

यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पञ्च कृष्टयः।
भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे।।

इस प्रकार की सृष्टि में योग्यता के अनुकूल पुरुषार्थ करते हुए उत्तम भावनाओं से युक्त व्यक्ति अपने प्राप्य तक सहज ही पहुँच सकता है। वेदों में निहित जीवनोत्कर्ष हेतु निर्देशों का पालन करते हुए पाप के अन्धकार से मुक्त रहकर सूर्य की भाँति चमकने की पूर्ण सम्भावना सदा विद्यमान है –

यथा सूर्यो मुच्यते तमसस्परि रात्रिं जहात्युषसश्च केतून्।
एवाहं सर्वं दुर्भूतं कर्त्रं कृत्याकृता कृतं हस्तीव रजो दुरितं जहामि।।

आधुनिक काल में वेदकालीन न्याय की प्रासंगिकता

✍ डॉ. (श्रीमती) वन्दना दीक्षित

भारतीय न्याय व्यवस्था का प्रथम परिचय वैदिक साहित्य में प्राप्त होता है। "वैदिक साहित्य में सर्वोच्च न्यायकर्त्ता या न्यायाधीश के रूप में वरुण प्रतिष्ठित हैं। वे दूरदर्शी एवं हजारों आँखों वाले हैं। वे अपने महल में बैठकर सभी कर्मों का पर्यालोचन करते हैं। वरुण के चर उनके आसपास बैठते हैं। वे सम्पूर्ण विश्व को देखते हैं। वरुण का प्रधान कार्य है प्रकृति के तत्त्वों का सम्यक् संचालन। देवता उनकी व्यवस्था को स्वीकार करते हैं। वरुण सर्वत्र देखते हैं–वे मानव के सत् और असत् की जाँच करते हैं। कोई प्राणी उनके संज्ञान के बिना पलक भी नहीं मार सकता है। इनकी व्यवस्था को भंग करना पाप समझा जाता है। पापियों के प्रति वरुण की क्रोध भावना है तथा दण्ड देते हैं। वरुण पाश द्वारा पापियों को बन्धन युक्त करते हैं। जो मनस्ताप कर लेते हैं उनके पाप को वरुण क्षमा दृष्टि से देखते हैं। जो भूलवश पाप हो जाते हैं उन्हें वरुण क्षमा करते हैं।"[1]

वरुण के उपर्युक्त वर्णन से वैदिक न्याय प्रक्रिया के सम्बन्ध में ज्ञात होता है कि उस समय राजा स्वयं न्याय करता था। वह स्वयं ही छद्म वेष इत्यादि द्वारा देखा करता था कि राज्य में कौन दण्डनीय है। राजा के द्वारा नियुक्त 'चर' विशेष रूप से प्रजा के कार्यों की पाप और पुण्यमयी प्रवृत्तियों का निदर्शन करके राजा को उनकी सत्य सूचना देते थे। सामाजिक व्यवस्था हेतु राजकीय नियमावली थी। उन नियमों का उल्लंघन करने पर दण्ड का विधान था। साधारण परिस्थितियों में अपराधियों के प्रति राजा क्रोध करता था। उनको पाश से बांधकर नियन्त्रित करना दण्ड का साधारण स्वरूप था। अज्ञानतावश अपराध हो जाने तथा अपराध पर पश्चाताप करने वाले अपराधियों को क्षमादान करने की भी रीति थी।

वैदिक समाज में विविध प्रकार के अपराधों के लिए दण्ड व्यवस्था थी और साथ ही लोगों के परस्पर विवाद उपस्थित होने पर न्यायाधीश से न्याय प्राप्त करने की रीति प्रचलित रही। इस समय "न्यायालय के लिए 'सभा' शब्द का प्रयोग होता आ रहा है।"[2] न्यायालय के लिए सामान्यतः 'सभा' और न्यायाधीशों के लिए 'सभासद्' शब्द का प्रयोग मिलता है। 'गौतम धर्म सूत्रकार' के अनुसार "यदि लोक व्यवहार की हानि होती है तो उसका दोश साक्षियों, सभासदों राजा और अपराधी सभी पर जाता है। जहाँ पर राजा द्वारा नियुक्त होकर ऋक् यजु और सभा के ज्ञाता तीन ब्राह्मण बैठते हैं उसे आचार्य मनु ने 'सभा' कहा है।"[3]

सर्वप्रथम गौतम धर्म सूत्रकार ने अभ्यर्थी को विनम्रतापूर्वक न्यायालय में न्यायाधीश के पास जाने का निर्देश किया है, "क्योंकि किसी भी मुकद्दमे का प्रारम्भ वादी, अर्थीया अभियोग्यता द्वारा प्रार्थनापत्र

✍ रीडर, समाजशास्त्र विभाग, ज्वाला देवी विद्या मंदिर (पी. जी.) कालेज, कानपुर

प्रस्तुत करने पर होता था, जिसमें वर्ष, मास, पक्ष, दिन, नाम, तिथि, जाति, पता आदि का सम्पूर्ण विवरण होता था, जिसे उसकाल की न्यायिक भाषा में भाषा–वाद कहा जाता था। सर्वप्रथम न्यायाधीश प्रार्थना पत्र का मनोयोग पूर्वक निरीक्षण करता था और यदि वह अभियोग की श्रेणी में आता था तो उसे स्वीकार करता था और जो अभियोग की सीमा में नहीं आते थे उसे अस्वीकृत कर दिया जाता था''।[4] इसके बाद न्यायाधीश या प्रतिवादी के सामने उसके कथन को लिखा जाता था, इसे 'प्रतिज्ञापत्र' कहते थे। इसके बाद प्रतिवादी या अभियुक्त प्रत्युत्तर देता था, उसे 'उत्तरपाद' कहा जाता था। शुक्रनीतिसार में उल्लेख मिलता है कि जिस व्यक्ति पर मुकद्दमा दायर किया गया है, उसे मुहर लगे राजकीय पत्र द्वारा सेवक भेजकर न्यायालय में न्यायाधीश के सामने उपस्थित होने को कहा जाता है। इसके बाद साक्षी के साक्ष्य की प्रक्रिया आती थी, जिसे 'सिद्धिपाद' कहा जाता था। अन्त में न्यायाधीश के द्वारा दिए गये निर्णय को 'निर्णयपाद' कहा जाता था।

''वैदिक काल में राजा के अतिरिक्त सभा भी न्याय करती थी।''[5] संभव है सभा के द्वारा नियुक्त उपसमिति न्याय–विभाग का उत्तरदायित्व विशेष रूप से करती हो। ''गाँवों में ग्राम्य वासी न्याय करते थे।''[6] न्याय के लिए भूमि, खेल में धोखा–धड़ी, ऋण उगाहना, उत्तराधिकार चोरी, आक्रमण और हत्या सम्बन्धी विषय आते थे। ''जुए में ऋणी होने पर दास बनने का दण्ड भोगना पड़ता था''।[7] न्याय की प्रक्रिया सरल थी। साक्षियों का महत्त्व कम था। शपथ लेकर अपने को निर्दोष सिद्ध करने की रीति थी। कभी–कभी नागरिक भी अपराधी को अपनी ओर से दण्ड दे सकते थे। ऋण देने वाला ऋणी को द्रुपद नाम के खम्भे से बाँध कर उसे अथवा उसके सम्बन्धियों को शीघ्र ही ऋण चुकाने के लिये बाध्य कर सकता था। चोर भी बाँधे जाते थे। छान्दोग्य उपनिषद् में एक स्थल पर उल्लेख मिलता है कि ''चोर को न्यायाधीश के पास पकड़कर लाया जाता था तथा परशु को शीघ्र ही अग्नि में तपाया जाता था और अभियोगी को उसे हाथ में लेना पड़ता था। यदि अभियोगी जल जाता था तो उसे मार दिया जाता था और न जलने की स्थिति में उसे छोड़ दिया जाता था''।[8] लोगों की धारणा थी कि सत्यदेव ही उस व्यक्ति के सच्चे होने पर उसकी रक्षा करते हैं। हत्या के अभियोगों 10 गाय से 1000 गाय और एक बैल का दण्ड हत्यारे को देना पड़ता था। इसका नाम वैरदेय था।[9]

वैदिक न्याय व्यवस्था को कठोर न्याय व्यवस्था कह सकते हैं। कौटुम्बिक परिधि से लेकर राजकीय परिधि तक सर्वत्र कठोर दण्ड का प्रावधान था। प्रजा की भेड़ों को मार डालने वाले ऋज्राश्व की आँखें उसी के पिता ने फोड़ दीं थीं। सजा से विद्रोह करने की स्थिति में पुरोहित को मृत्यु दण्ड दिया जाता था। इस युग में दैवीय दण्ड विधान भी प्रचलित था। किन्तु यह तभी कार्य करता था, जब साधारण विधि से अपराधी को दण्ड देना कठिन या असम्भव हो। कुछ इसी प्रकार का उल्लेख अथर्ववेद में भी प्राप्त होता है–''इन्द्र उन सभी लोंगो के हृदय में अग्निदाह उत्पन्न करता है, जो ब्राह्मण को मृदु समझकर उसे मार डालते हैं, जो देवताओं की निन्दा करते हैं अथवा अनुचित धन की कामना करते हैं। ऐसे व्यक्ति से पृथ्वी और आकाश घृणा करते हैं।''[10]

वैदिक काल में राजा देश का सर्वोच्च पदाधिकारी, सेनापति तथा न्यायाधीश होता था। राजा राज की सम्पूर्ण सत्ता का केन्द्र बिन्दु था। उस समय यह प्रथा थी कि मारे गये व्यक्ति के सम्बन्धियों को धन देकर उसके प्राण के बदले में उऋण हुआ जा सकता था। एक स्थान पर एक व्यक्ति के प्राणों के मूल्य के रूप में सौ गायों के दिए जाने का उल्लेख है।[11] यद्यपि मृत्यु दण्ड भी प्रचलित था तथापि अधिकांश मामलों में शारीरिक दण्ड ही उपयुक्त समझा जाता था। ऋण न देने पर बहुधा ऋणी को ऋणदाता का दासत्व स्वीकार करना पड़ता था।

वैदिक काल में राष्ट्र कई प्रशासनिक इकाइयों में बँटा था। ये प्रशासनिक इकाइयाँ थीं–ग्राम, जन, विश एवं राष्ट्र। विभिन्न गृहों के समुदाय को, जो सुरक्षा की दृष्टि से एक दूसरे के पास–पास बनाए गये होते थे, ग्राम कहा जाता था। ग्राम प्रशासन की सबसे छोटी इकाई थी और उसका प्रमुख 'ग्रामणी' कहलाता था। राज्य की दूसरी बड़ी प्रशासनिक इकाई 'जनपद' थी। इसमें एक विशेष समुदाय के लोग होते थे। राज्य की सबसे बड़ी इकाई राष्ट्र था जिसका शासक राजा होता था। एक राष्ट्र में कई जनपद होते थे। अनेक जनपदों से मिलकर राष्ट्र बनता था। राष्ट्र के सभी लोगों को 'विश' कहा जाता है। ऋग्वेद में 'आर्यविश' (10–11–4) और दासीविश् (3–34–9) का उल्लेख मिलता है। इस प्रकार वैदिक न्याय व्यवस्था राजा के इर्द–गिर्द घूमती नजर आती है। राजा को ही सर्वोच्च व ईश्वर का प्रतिनिधि मानते थे।

सामायिक सन्दर्भ में वैदिक कालीन न्याय व्यवस्था बहुत उपयोगी एवं प्रासंगिक है। आज न्याय का आधार कानून है। तत्कालीन समय में न्याय का आधार धर्म था। धर्म के विपरीत कार्य करने वाले को पापी समझा जाता था और उसे सजा दी जाती थी तथा धर्म का साथ देने वाले को राजा द्वारा पुरस्कृति किया जाता था। वास्तव में आज हम न्याय व्यवस्था को धर्म एवं नैतिकता से अलग नही देख सकते। वर्तमान समय में कानून का जो स्वरूप विद्यमान है उसका भी आधार कहीं न कहीं धर्म, अध्यात्म एवं परम्पराएं ही हैं।

वैदिक साहित्य के एक सूक्त में प्रजापति की जुड़वाँ पुत्रियों के नाम सभा एवं समिति का उल्लेख मिलता है। यह सभा एवं समिति नामक संस्थाएं न्याय पालिका एवं न्याय परिषद की ओर संकेत करती हैं। आज भी भारत सहित विश्व के अनेक राष्ट्रीय राज्यों में धर्म पालक संस्थाएं विद्यमान हैं, जो न्याय देने का कार्य करती हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि आज की न्याय व्यवस्था वैदिक न्याय व्यवस्था का ही प्रतिरूप है और वह कभी भी धर्म के प्रतिकूल नहीं हो सकती। यद्यपि आज व्यक्तियों को दण्ड के भय से न्याय का पालन कराया जाता है। उस समय लोग स्वतः ही न्यायप्रिय होते थे क्योंकि उनको यह पता होता था कि अधर्म का पालन करने पर वे नरक के भागीदार होंगे। ऐसे में आज वैदिक कालीन न्याय व्यवस्था जो कि धर्म के नजदीक थी महती आवश्यकता है। यदि व्यक्ति उन्ही संस्कारों से सुसज्जित हो स्वतः न्यायप्रिय हो जाये तो हमारे लिए दण्ड के विधान की आवश्यकता ही न के बराबर होगी।

वास्तव में आज भी न्यायाधीश न्याय देते समय धर्म व अधर्म के विवेक से कानून की व्यवस्था करता है एवं परस्थितिपरक न्याय एवं दण्ड का विधान करता है। कहना मात्र इतना ही है कि हम अनुशासित होगें तो किसी अनुशासक की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी वैदिक न्याय व्यवस्था की पृष्ठभूमि को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि हमें 'स्वत' संयमित अनुशासित एवं न्यायप्रिय हो जाना चाहिए जो स्वतः वैदिक न्याय व्यवस्था की उपादेयता को सिद्ध करती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका – रामजी उपाध्याय–पृष्ठ–598
2. ऋग्वेद 1–124–7
3. गौतमधर्म सूत्र – 2–4–11 तथा मनुस्मृति–8–11
4. धर्मशास्त्र का इतिहास – भाग–2, पृष्ठ–725 काणे।
5. ऋग्वेद 10–71–10
6. मैत्रायणी संहिता – 2.2.1
7. ऋग्वेद – 10–34
8. छान्दोग्योपनिषद् – 6.16
9. वैदिक इण्डेक्स वैर
10. अथर्ववेद – 5.18–19
11. ऋग्वेद संहिता – 2,32,4

राजनीति का अपराधीकरण और निर्वाचन सुधार

✍ डॉ. पुष्पेन्द्र कुमार सिंह

लोकतान्त्रिक मूल्यों में आस्था रखने वाले विश्व के अधिकांश राष्ट्र भारत के सशक्त लोकतन्त्र की शैली एवं प्रजातान्त्रिक प्रणालियों से प्रेरणा लेते हैं। लोकतान्त्रिक राष्ट्रों में इसे स्थिर लोकतन्त्रों में शुमार किया जाता है। यहाँ के लोकतन्त्र पर हुआ हल्का प्रहार न केवल भारतीय जन मानस को, वरन संसार की समस्त लोकतान्त्रिक व्यवस्थाओं को प्रभावित करता है। 'भारत तो लोकतन्त्र का नखलिस्तान है, समसामयिक इतिहास की सच्चाई' यह महत्वपूर्ण टिप्पणी लक्ष्मी चरण सेन और अन्य बनाम ए0के0एम0 हसनुज्जमा और अन्य के मामले में भारत के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गयी थी।[1] लेकिन बाद के निर्वाचनों में भारतीय राजनीति में नैतिक एवं चारित्रिक पतन स्पष्ट दिखाई देने लगा है। पैनी दृष्टिपात से यह कभी विशाल पैमाने के गंभीर आर्थिक अपराध की ओर तो कभी अस्थिरता की और उन्मुख दिखाई देती है।

राजनीतिक दलों से लोकतन्त्र में प्राण–प्रतिष्ठा होती है। स्वस्थ लोकतन्त्र का आधार स्वस्थ चरित्र वाले राजनीतिक दल होते हैं, जिनका निर्माण स्वस्थ राजनीतिक सिद्धान्तों के आधार पर होता है, किन्तु शीघ्र ही ये सिद्धान्तवाद के मार्ग से विमुख होकर व्यक्तिवाद की ओर उन्मुख हो जाते हैं। निजी स्वार्थों की पूर्ति के लिए राष्ट्रहित की अनदेखी अब सामान्य बात हो गयी है। पद, प्रतिष्ठा व सत्ता प्राप्ति हेतु वे सिद्धान्तों की सुगमता से तिलांजलि दे देते हैं। ऐसे आपराधिक चरित्र वाले राजनेताओं की सक्रियता के चलते वर्तमान राजनीति का स्वरूप विकृत हो चुका है। दलीय सिद्धान्त के बजाय नेतृत्व की निकटता प्राप्त कर सत्ता हासिल करने के अनेक उदाहरण हैं। वस्तुतः राजनीतिक दल सामाजिक आधारों और दलीय सिद्धान्तों से ऊपर उठने में असमर्थ रहे हैं। धन के बढ़ते प्रभाव ने राजनीति और चुनाव को और भी कलुषित किया है। अब हमारी चुनाव प्रणाली तीन 'एम' मसल पावर (बाहुबल), मनी पावर (धनशक्ति), और मिनिस्टरियल पावर (सरकारी तन्त्र का दुरूपयोग) से ग्रस्त है। इसे तीन 'सी' भी कह सकते हैं – कैश (पैसा), क्रिमिनल्स (अपराधी) और करप्सन (भ्ष्टाचार)। 2009 के आम चुनाव में एक दर्जन अरबपति और 1205 करोड़पति प्रत्याशी थे। इसमें दो उद्योग पति सांसद ऐसे थे जिनकी सम्पत्ति पिछले चुनाव से अब तक 2000 गुना तक बढ गयी।[2] क्या ऐसा नहीं कह सकते हैं कि पिछले पांच वर्षों में उन्होंने राजनीति का उपयोग अपना आर्थिक साम्राज्य बढाने के लिए किया ? अधिकांश सांसदों की सम्पत्ति में पिछले पांच वर्षों में अप्रत्याशित बढोत्तरी से क्या सिद्ध होता है ? इसी प्रकार 1114 दागी व्यक्ति भी चुनाव मैदान में उतरे, जिनके खिलाफ चोरी, जालसाजी, दिनदहाड़े हत्या से लेकर अराजकता फैलाने के आरोप थे। ये आंकड़े तब हैं जब निर्वाचन आयोग द्वारा आदर्श चुनाव आचार संहिता पर सख्ती और सत्तारूढ़ दल द्वारा सरकारी शक्ति के दुरूपयोग पर कड़ी नजर रखी गयी। आयोग के निर्देशों द्वारा राजनीति दलों के चुनावी खर्चों पर

✍ असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष राजनीति विज्ञान विभाग, ब्रह्मवर्त पी. जी. कालेज, मंधना, कानपुर

अनेक प्रतिबन्ध लगाये गये हैं। यह स्थिति समूचे राष्ट्र के लिए चिन्ता का विषय है। कहना न होगा कि अपराधियों और असामाजिक तत्वों की राजनीति में बढते प्रभाव के पीछे राजनेताओं द्वारा उनको दिया जाता रहा संरक्षण है। अपराधियों की दृष्टि में राजनीति सर्वोत्तम व्यवसाय बन गयी और शरणगाह भी।

अपराधी की परिभाषा भी बड़ी विवादास्पद है। कोई व्यक्ति तब तक निर्दोष होता है जब तक न्यायालय द्वारा दोषी न ठहराया जाय। किन्तु कानून और पश्चिम से प्रेरित भारतीय न्याय प्रणाली से जनमत इत्तफाक नहीं रखता है। वह नही चाहता कि हत्या, बलात्कार, फिरौती, डकैती, भ्रष्टाचार जैसे घृणित अपराधों का आरोपी न्यायिक निर्णय आने से पूर्व ही विधायी निकाय का प्रतिनिधि बन जाय। वर्तमान कानून लोगों की अपेक्षाओं को पूरा करने में सक्षम नहीं हैं। वर्तमान काननू के अनुसार किसी व्यक्ति को संसद अथवा विधानसभा का चुनाव लड़ने से केवल उस समय आयोग्य घोषित किया जा सकता है, जब वह अपराधी करार दिया जा चुका हो।[3] जन प्रतिनिधित्व कानून 1951 की धारा 8 की सामान्य दफा में अपराधी करार दिये जाने और कम से कम दो वर्ष की कैद की सजा के बाद ही अयोग्य घोषित किये जाने का प्राविधान है। इस धारा को लेकर 1997 से अनेक तर्क दिये जाते रहे। इस दौरान अनेक न्यायिक निर्णय भी आये। प्राथमिक अदालत द्वारा अपराधी ठहराये जाने की तिथि से ही आयोग्य करार दिये जाने के सम्बन्ध में निर्वाचन आयोग ने 28 अगस्त 1997 को जो घोषणा की थी, उस दृष्टिकोण को सर्वोच्च न्यायालय ने बी0आर0 कपूर बनाम तमिलनाडु राज्य और अन्य[4] तथा के0 प्रभाकरण बनाम टी0 जयराजन[5] मान्यता प्रदान की, किन्तु सर्वोच्च न्यायालय ने ही बाद में नवजोत सिंह सिद्धू बनाम पंजाब राज्य[6] मामले में कहा कि यदि अपीली अदालत ने न केवल सजा देने पर रोक लगा दी है और जमानत दे दी है बल्कि अपील की सुनवाई के दौरान अपराधी ठहराये जाने पर रोक लगा दी है तो अपराध के कारण अयोग्यता पर भी तब रोक लगी रहेगी।

यद्यपि चुनावी मुकाबलों के सुधार के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अनेक प्रशंसनीय योगदान किया गया है। उनमे से एक चुनाव आयोग को दिया गया है यह निर्देश है कि वह विधायी निकाय का प्रतिनिधि बनने के इच्छुक उम्मीदवारों से उनकी परिसम्पत्तियों, देनदारियों और शैक्षिक योग्यता के साथ–साथ अपराधों की पूर्ववर्ती जानकारी, यदि कोई हो तो, हलफनामे में प्राप्त कर उसे सार्वजनिक करे। यूनियन आफ भारतीय संघ बनाम एसोसिएशन फार डिमोक्रेटिक रिफार्म्स एण्ड अदर्स[7] और पीपुल्स यूनियन फार सिविल लिबर्टीज बनाम यूनियन आफ इण्डिया एण्ड अदर्स[8] मामलों में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि लोकतन्त्र में सूचना प्राप्त करने के अधिकार को सभी जगह मान्यता प्राप्त है और इसे लोकतन्त्र की धारणा से प्रवाहित प्राकृतिक अधिकार माना जाता है और यह कि मतदाता का संसद या विधानसभा के अपने उम्मीदवार के आपराधिक अतीत सहित पुराने इतिहास को जानने का अधिकार, लोकतन्त्र के बने रहने के लिए कही अधिकार मौलिक और बुनियादी है। आम आदमी को कानून तोड़ने वालों को कानून बनाने वाले के रूप में चुनने के पहले सोचने का अवसर मिलना चाहिए।

इन परिस्थितियों में, जब तक कानून में संशोधन नहीं हो जाता, आयोग बहुत कुछ नहीं कर सकता। आयोग द्वारा राजनीतिक दलों से राजनीतिक शुचिता कायम रखने हेतु स्वच्छ छवि वाले उम्मीदवारों को ही टिकट देने की अनेकों अपील की गयीं किन्तु आम चुनाव 2009 के आंकड़े चुनाव आयोग के उस अपील के प्रभाव की झलक दिखाते हैं। देश की राजनीति मूल्यों पर आधारित रहकर क्रियाशील रहे, लोकतान्त्रिक पद्धति की विश्वसनीयता एवं पवित्रता कायम रहे, यह तभी सम्भव है जब लोकतन्त्र के आधार स्तम्भ राजनीतिक दलों की सैद्धान्तिक निष्ठा, मूल्यवत्ता तथा संरचना के जनतान्त्रिक मानक सुदृढ हों। आज भारतीय प्रजातन्त्र की स्थिति बड़ी भयवाह हो गयी है। संसदीय गरिमा में बड़ी द्रुत गति से गिरावट आ रही है। तात्कालिक स्वार्थ राष्ट्रीय एवं जनहित सम्बन्धी मुद्दों पर हावी हो गये हैं।

09 नवम्बर 2009 को महाराष्ट्र विधान सभा में जो भी हुआ भारतीय राजनीति और लोकतन्त्र के लिए इससे अधिक शर्मनाक और कुछ भी नहीं हो सकता है कि एक विधायी सदन में कोई राजनेता हिन्दी भाषा में शपथ लेने के कारण पीटा जाय। अबू आजमी की पिटाई से जितना हिन्दी का निरादर हुआ उससे अधिक भारतीय संविधान का[9]। समाज में गुण्डागर्दी का पर्याय बन चुके आज के नेता जब सत्तासीन होते हैं तो उनका कार्यकाल झारखण्ड के अल्पकालीन मुख्यमंत्री रह चुके मधु कोड़ा जैसे लोगों के उदाहरण से भिन्न सिद्ध नहीं होता। इसलिए सुधार की अनेक कवायदें तब तक निरर्थक सिद्ध होती रहेगी जब तक मौजूदा कानूनी ढ़ांचे में प्रभावशाली संशोधन नहीं होगा, तथा राजनीतिक में आन्तरिक प्रजातन्त्र स्थापित नहीं होगा।

चुनावी खर्च की सीमा बढने से चुनावी भ्रष्टाचार भी बढ़ता जा रहा है यद्यपि निर्वाचन आयोग ने उम्मीदवारों द्वारा किये जाने वाले चुनावी खर्चों की सीमा तय कर दी है। लेकिन राजनीतिक दलों द्वारा किये जाने वाले खर्चों की कोई सीमा तय नहीं है और न उन पर विनियमन करने वाले कोई नियम हैं। भारत में चुनावी भ्रष्टाचार की बुराई को दूर करने के लिए युद्धस्तरीय प्रयास किये जाने की आवश्यकता है ताकि आगामी पीढ़ियों के लिए लोकतन्त्र सुरक्षित हो सके। इनमें एक उपाय है राजनीतिक दलों के वित्तीय सुधार।[10] स्वतन्त्र, निष्पक्ष और शन्तिपूर्ण चुनाव कराने में गरीब राज्यों में बाहुबली और अमीर राज्यों में धनपति आड़े आते हैं। तथा उम्मीद की किरण यह है कि लोकसभा ने सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव स्वीकार किया है कि वह राजनीति के अपराधीकरण के विरूद्ध है और राजनीति का अपराधीकरण रोकने के लिए वचनबद्ध है। जब तक इस प्रकार का कानून नहीं बनता राजनीतिक दलों को अपात्र व्यक्तियों को टिकट देने में संयम दिखाना होगा। सभी राजनीतिक दल अपने को देश के लोकतन्त्र का रक्षक होने के कितने भी दावे करें किन्तु आज वस्तुतः किसी दल में आन्तरिक लोकतन्त्र नहीं है।[11] इस विसंगति पर भारत के विधि आयोग का भी ध्यान गया है, जिसने चुनाव सुधारों पर अपनी 170वीं रिपोर्ट में राजनीतिक दलों में आन्तरिक लोकतन्त्र से सम्बन्धित कानून बनाने की आवश्यकता पर पूरा एक अध्याय समर्पित किया है। विधि आयोग की कुछ सिफारिशों को यहा प्रस्तुत करना प्रासंगिक होगा –

राजनीतिक दलों में आन्तरिक लोकतन्त्र को शुरू और सुनिश्चित करने, उनकी कार्य प्रणाली को मुक्त एवं पारदर्शी बनाने और भारत के संविधान के भाग तीन एवं चार में वर्णित संवैधानिक लक्ष्यों को प्राप्त करने में राजनीतिक दल प्रभावी साधन बन सकें, इसके लिए उनके गठन और कार्यपद्धति को कानून द्वारा नियमित करना जरूरी है।[12]

किसी राष्ट्र के विकास में सुशासन एक प्रमुख स्तम्भ की भूमिका निभाता है। सुशासन देने वाली सरकार के गठन का यन्त्र राजनीतिक दल और साधन शिक्षित और जागरूक मतदाता हैं जो लोकतान्त्रिक मूल्यों का संरक्षक भी है। अतएव सम्प्रति भारतीय राजनीति के अपराधीकरण तथा चुनावी विसंगतियों की संक्षिप्त पड़ताल करने से जो नई दृष्टि प्राप्त हुई उसके आधार पर राजनीति के भावी पथ को प्रशस्त एवं प्रासंगिकता प्रदान करने हेतु कुछ संगत सुझाव निम्नवत हैं –

1. अपराधवृत्तियुक्त लोगों से राजनीति को दूषित होने से बचाने के लिए जनप्रतिनिधित्व कानून 1951 की अनेक धाराओं में प्रभावी संशोधन करना समय की अपरिहार्य मांग है, अतः इस हेतु अविलम्ब आवश्यक कदम उठाये जाने चाहिए।

2. राजनीति को भ्रष्ट, असामाजिक एवं अराजक तत्वों से मुक्त रखने हेतु राजनीतिक दलों के आय–व्यय का वार्षिक लेखापरीक्षण अनिवार्य किया जाना चाहिए तथा उसे सार्वजनिक भी किया जाना चाहिए।

3. राजनीतिक दलों में आन्तरिक लोकतन्त्र के संस्थानीकरण को लागू करने एवं विनियमन करने हेतु प्रभावशाली कानून का निर्माण किया जाना आवश्यक है।

4. आज नेता नहीं, सृजेता की दरकार है और यह मतदाता की बुद्धिमत्ता पूर्ण मतदान से प्राप्त होगा। मतदान का अधिकार ब्लैंक चेक पर दस्तखत करने के समान है। प्रजातन्त्र की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि मतदाता दूरदर्शी व जिम्मेदार बने तथा मतदान अवश्य करें। .... हमें साहस और विवेक से उन लोगों को वोट देने से स्पष्ट इंकार कर देना चाहिए जो नीति, सदाचार और आदर्शों की कसौटी पर खरे नहीं उतरते[13]

5. मतदाताओं को यह अधिकार भी दिया जाना चाहिए कि निर्वाचित सदस्य को कार्यकाल पूर्व ही वापस बुलाने (Recall) हेतु वोटिंग कर सके।

6. चौथा स्तम्भ मीडिया जागरूक जनमत का निर्माण करने में अपनी भूमिका का निर्वहन अब बहुत प्रभावी तरीके से कर सकता है, बशर्ते वह सच उजागर करने के लिए प्रतिबद्ध हो।

7. समय–समय पर गोष्ठियां आयोजित कर तथा प्रबुद्धजनों के सुझाव आमंत्रित कर चुनावी विकृतियों पर अंकुश लगाया जा सकता है।

8. राष्ट्र के भाग्य का सृजन करने के गुरूतर दायित्व निर्वहन हेतु एक राजनेता के राजनीति में प्रवेश विशेष कर चुनाव लड़ने हेतु शैक्षिक योग्यता का एक मानक तय किया जाना चाहिए।

9. किसी भी प्रत्याशी के एक से अधिक निर्वाचन क्षेत्र में चुनाव लड़ने पर प्रतिबन्ध लगाया जाना चाहिए।

चयनित संदर्भ

1. ए. आई. आर. 1985 एस. सी. 1233

2. नेशनल इलेक्शन वाच द्वारा 7406 उम्मीदवारों द्वारा प्रस्तुत हलफनामें के आधार पर सार्वजनिक की गयी जानकारी, स्रोत–भारतीय निर्वाचन आयोग की बेबसाइट

3. जन प्रतिनिधित्व कानून 1951 की धारा 8

4. ए0आई0आर0 2001 एस0सी0 3435

5. ए0आई0आर0 2002 एस0सी0 3393

6. 2007 टी0एल0एस0 43432

7. ए0आई0आर0 2002 एस0सी0 2112

8. ए0आई0आर0 2003 एस0सी0 2363

9. दैनिक जागरण, स्तम्भ लेख, कानपुर संस्करण, 10 नवम्बर 2009

10. चुनावी भ्रष्टाचार–टी0एस0 कृष्णमूर्ति, योजना, अंक जनवरी 2009, पृ0 24

11. भानुप्रताप मेहता– राजनीति दलों में सुधार को प्राथमिकता, शोधार्थी, अंक 1, संख्या 1, जनवरी–मार्च 2005

12. विधि आयोग द्वारा चुनाव सुधारों पर प्रस्तुत 170 वीं रिपोर्ट के पैरा 3.1.2 से उद्धृत, श्री राम शर्मा आचार्य– 'राष्ट्रः समर्थ और सशक्त कैसे बने' वाड्.मय क्रमाक 63, पृ0 3.42

वर्तमान परिवेश में पुलिस की भूमिका

✍ डॉ. मीनाक्षी व्यास ✍ डॉ. नृपेन्द्र कुमार सिन्हा

मानव को जन्म से लेकर मृत्यु तक समाज के नियन्त्रण में रहना होता है। बचपन में परिवार का, स्कूल या कालेज जाने पर शिक्षक या सम्पूर्ण शिक्षा संस्था का नियन्त्रण होता है। राज्य के सदस्य होने के कारण उस पर सरकार या कानून के द्वारा नियन्त्रण होता है। समाज में अगर सभी व्यक्तियों को मनमानी करने के लिये बिल्कुल स्वतंत्र छोड़ दिया जाये तो समाज फिर समाज न रहकर एक जंगल बन जायेगा। समाज केवल व्यक्ति ही नहीं व्यक्ति द्वारा संगठित अनेक समूह समिति व संस्थायें भी होता है। इनमें संघर्ष का अर्थ है पूर्ण अराजकता और सामाजिक व्यवस्था व संगठन का चकनाचूर हो जाना। इस स्थिति को टालने के लिये ही समाज अपने सदस्यों समितियों व संस्थाओं के व्यवहारों पर रोक या प्रतिबन्ध लगाता है। समाज द्वारा लगाये गये इन प्रतिबन्धों या रोक को ही सामाजिक नियन्त्रण कहते हैं।

समाज में सभी के उद्देश्य हित विचार भावनायें आदि अनेक भिन्नतायें पायी जाती हैं। इसलिये समाज में नियन्त्रण के अनेक प्रकार या स्वरूप होते हैं। मुख्य रूप से इसे औपचारिक व अनौपचारिक नियन्त्रण कहा जाता है। प्राथमिक समाजों में प्रथा, परम्परा, धर्म, रुढ़ि आदि के द्वारा नियन्त्रण किया जाता था परन्तु आधुनिक जटिल समाजों में राज्य सेना, कानून, व पुलिस की आवश्यकता पड़ती है।

पुलिस राज्य की प्रतिनिधि होती है। जो राज्य द्वारा निर्मित कानूनों का पालन करती है। सामान्यतः देखा जाता है कि पुलिस अपने अधिकारों का प्रयोग जनता के हित में कम करती है। पुलिस की छवि रक्षक के रूप में अपेक्षित है परन्तु अधिकांशतः वह अत्याचार हिंसा, भ्रष्टाचार से ओत–प्रोत पायी जाती है। विश्व बैंक ने उत्तर प्रदेश पुलिस की छवि के लिये जनता के बीच एक सर्वेक्षण कराया जिसके निष्कर्ष में 94 प्रतिशत से अधिक लोगों ने पुलिस को बेईमान घोषित किया। 1 प्रतिशत से कम लोगों को पुलिस की ईमानदारी पर विश्वास है। 13 प्रतिशत जनता ने बताया कि उन्हें पुलिस सहायता की आवश्यकता महसूस हुई लेकिन भ्रष्टाचार[1] एवं अक्षमता और उत्पीड़न[2] को ध्यान में रखकर सम्पर्क नहीं साधा। पुलिस को प्रदेश की भ्रष्टतम संस्था का तमगा लगाते हुये सर्वेक्षण में कहां गया कि 16 प्रतिशत लोग ऐसे निकले जिनका पुलिस से व्यक्तिगत सम्पर्क है और तीन चौथाई को रिश्वत देनी पड़ी[3]।

पुलिस आयोग की पांचवी रिपोर्ट के 41वें अध्याय के निष्कर्ष से ज्ञात होता है कि पुलिस और जनता के बीच सम्बन्ध असन्तोष जनक है। पुलिस का पक्षपातपूर्ण रवैया भ्रष्टाचार क्रूरता और संज्ञेय अपराधों के दर्ज करने में पुलिस की असफलता इस दुखद स्थिति के महत्वपूर्ण कारण हैं। वास्तव में

✍ विभागाध्यक्ष–समाजशास्त्र विभाग, रामस्वरूप ग्रामोद्योग महाविद्यालय, पुखरायाँ (कानपुर देहात)
✍ प्रवक्ता, समाजशास्त्र विभाग, चौधरी चरण सिंह (पी. जी.) कालेज, हैवरा (इटावा)

पुलिस उन लोगों को तंग करती है जो उनकी मदद करना चाहते हैं। जनमानस पुलिस की कार्य प्रणाली में परिवर्तन चाहता है[4]।

पुलिस की छवि को साफ सुथरी बनाने और जनता के साथ साझेदारी बनाने के लिये 17 जनवरी 1995 को लुधियाना के एक कार्यक्रम में वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों के साथ स्कूली बच्चों की एक सभा में पुलिस अधिकारी कुछ घबराहट पैदा करने वाले प्रश्नों के उत्तर देने और समाज में दिन प्रतिदिन की समस्याओं के समाधान में अपने व्यवहार को स्पष्ट करने में असमर्थ थे उनसे पूछे गये प्रश्नों में कुछ इस प्रकार है :–

1. पुलिस अधिकारी भ्रष्ट क्यों होते हैं ?
2. थानों में एफ0आई0आर0 तुरन्त दर्ज क्यों नहीं की जाती ?
3. पुलिस अति विशिष्ट के पुत्र–पुत्रियों के अपराधों की अनदेखी क्यों करती है ?
4. पुलिसकर्मी फल या सब्जियाँ खरीदते समय या राज्य परिवहन के यातायात साधनों पर सफर करते हुये पैसे का भुगतान क्यों नहीं करते ? इन प्रश्नों ने पुलिस अधिकारियों को यह आभास कराया कि बच्चे भी पुलिस के प्रति इतना बड़ा नकारात्मक अनुभव रखते हैं[5]।
5. मार्च 2008 में आई नेक्स्ट में प्रकाशित एक घटना के बाद जिसमें नौटंकी के नाम पर बार बालाओं के नृत्य में पुलिस वाले भी झूमते दिखाये गये। बाद में उन पुलिस वालों को सस्पेंड कर दिया गया। वर्दी पर दाग तो लगा ही छवि खराब होती है। पुलिस जनमानस के लिये अपमानजनक व्यवहार और हिंसा का पर्याय बन चुकी है। जबकि अपराधियों के मन से पुलिस का भय दिन प्रतिदिन कम होता जा रहा है।

लोग विश्वास करते हैं कि पुलिस विभिन्न प्रकार प्रकार के बुरे कार्यों के संचालन में भ्रष्ट अधिकारियों एवं संगठित अपराधियों से मिली रहती है। कल्याण सिंह के द्वितीय मुख्यमंत्रित्व काल में उनके निर्देश पर अपराधियों की मदद करने वाले 187 पुलिस कर्मियों को निलम्बित कर दिया गया तथा अपराधियों से सांठ–गांठ रखने वाले अन्य चिन्हित 677 पुलिस कर्मियों के विरुद्ध कठोर कार्यवाही की गयी तथा 200 पुलिस कर्मियों को अपराधियों से सांठ–गांठ रखने के कारण बर्खास्त कर दिया गया है[6]। वर्ष 2003 में 210 पुलिस कर्मियों की पहचान की गयी जिनके सम्बन्ध या तो अपराधियों से हैं या स्वयं अपराधिक गतिविधियों में लिप्त पाये गये[7]।

ऐसा नहीं है कि पुलिस बिल्कुल भ्रष्ट या नकारा है या यह व्यवस्था समाप्त कर देनी चाहिये। पुलिस के नकारात्मक छवि के लिये सत्तारुढ़ दल भी बहुत हद तक जिम्मेदार होता है। जो भी पार्टी सत्ता में आती है। उसके राजनीतिक स्वार्थ पुलिस के माध्यम से पूरे किये जाते हैं। ईश्वर चन्द्र द्विवेदी पूर्व पुलिस महानिदेशक ने कहा ''लम्बे समय तक सत्ताधारी दल द्वारा पुलिस तंत्र के मनमाने दुरूपयोग होने से

पुलिस बल की दक्षता और निष्पक्षता पर से जनता का भरोसा उठ गया है[8]।

कुछ प्रमुख कारण प्रकाश में आते हैं जिसकी वजह से पुलिस नैतिक तरीके से अपना कार्य नहीं कर पाती है।

1. कई वर्षों से पुलिस जनों में व्यक्तिवादिता बढ़ी है, जिससे टीम भावना व कार्य दोनों समाप्त होने लगा है।
2. सरकार बदलने पर एजेण्डा बदल जाता है पुलिस जन उसका अनुपालन करते हैं।
3. पुलिस संसाधनों का एक बड़ा हिस्सा विशिष्ट व्यक्तियों की सुरक्षा में लगाया जाता है।
4. वर्तमान समय में राजनीतिज्ञ अपने वोटरों के लिये पुलिस से कार्य चाहते हैं।
5. अक्सर एफ0आई0आर0 भी प्रभावशाली व्यक्तियों की इच्छा पर निर्भर करती है।
6. पुलिस बल के उच्च नेतृत्व के अधिकारी जो रोल माडल बन सकते हैं उन्हें मुख्य धारा से अलग कर दिया जाता है। या वे राजनीतिक चालों के माध्यम से आगे बढ़ने से रोक दिये जाते हैं। किरण बेदी इसका ज्वलन्त उदाहरण हैं।
7. अधिकांश पुलिस जन अधिकारियों के कहने पर किसी को जेल भेज सकते हैं। फर्जी बरामदगी कर सकते हैं, सही अभियुक्तों की मदद करके उन्हें बचा भी सकते हैं। या किसी अपराधी को फर्जी मुठभेड़ में मार सकते हैं। उक्त परिस्थितियों में पुलिसजनों में आत्म सम्मान, बौद्धिक व आर्थिक ईमानदारी का ह्रास किया और ''नैतिक पुलिस कार्य'' से दूर कर दिया है[9]।

सन्दर्भ सूची

1. मुख्यमंत्री मुलायम सिंह ने कहा कि थानों में भ्रष्टाचार बढ़ा है, हिन्दुस्तान 26.11.06
2. महिलायें और बुजुर्गों पर पुलिस ने बेरहमी से लाठियाँ बरसायीं, हिन्दुस्तान 12.08.04
3. अमर उजाला, आगरा 25.11.02
4. पुलिस आयोग की पांचवी रिपोर्ट, 16.02.05
5. राम अहूजा– विवेचनात्मक अपराध शास्त्र 1998, पृष्ठ 390–400
6. अपराधियों से सांठ–गांठ, सहारा 01 जनवरी।
7. हिन्दुस्तान, दिनांक– 24.12.03
8. पुलिस की दक्षता और निष्पक्षता गई कहां, हिन्दुस्तान 08.01.07
9. गोयल विक्रम चन्द्र पुलिस महानिदेशक ''पुलिसजन नैतिक कार्य क्यों नहीं करते'' उ0प्र0 पुलिस पत्रिका, सितम्बर, 2003

भारत अमेरिका असैन्य परमाणु समझौता (123)

(भारत के विशेष सन्दर्भ में एक मूल्यांकन)

✍ अरविन्द कुमार शुक्ल

भारत परमाणु ऊर्जा का गैर सैनिक उद्देश्यों हेतु उपयोग करना चाहता है। वह परमाणु शक्ति की विनाशकारी प्रवृत्ति के कारण उसके सामरिक प्रयोग का विरोधी रहा है। परमाणु शक्ति के गैर सैनिक उपयोग, कृषि, उद्योग व चिकित्सा के क्षेत्र प्रमुख रूप से शामिल हैं। भारत में परमाणु तकनीक का विकास होमी जहाँगीर भाभा, भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू एवं जमशेद जी टाटा के संयुक्त प्रयासों से प्रारम्भ हुआ। अब तक भारत नें विद्युत उत्पादन व परमाणु हथियारों की तकनीक में आत्मनिर्भरता हासिल कर ली है। भारत का परमाणु कार्यक्रम परमाणु ऊर्जा के उत्पादन तथा अन्य शान्तिपूर्ण उपयोगों हेतु आरम्भ हुआ था। भारत ने परमाणु ऊर्जा के उत्पादन हेतु सम्पूर्ण ईंधन चक्र में क्षमता हासिल कर ली है।

सन् 1969 में अमरीका के सहयोग से तारापुर में प्रथम परमाणु रियेक्टर स्थापित किया गया था। जिस्के लिये परमाणु ईंधन के रूप में सर्वाधिक यूरेनियम की आपूर्ति अमेरिका द्वारा की जाती थी। परन्तु मई 1974 में भारत द्वारा प्रथम पोखरण विस्फोट के पश्चात अमेरिका द्वारा यूरेनियम की आपूर्ति बन्द कर दी गयी थी। जो भारत के परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम के क्षेत्र में महत्वपूर्ण चुनौती थी। यद्यपि 1982 में फ्रांस ने सर्वाधिक यूरेनियम की आपूर्ति हेतु सहमति व्यक्ति कर दी थी परन्तु भारत ने इस क्षेत्र में आत्मनिर्भरता की नीति अपनाई। परिणामतः भारत अब तक PRESSURISED HEAVY WATER की तकनीक से प्राकृतिक यूरेनियम के प्रयोग द्वारा परमाणु ऊर्जा के उत्पादन में आत्मनिर्भरता प्राप्त कर चुका है। ऐसा HEAVY WATER बनाने की तकनीक के कारण सम्भव हो सका।

विदित हो कि सर्वाधिक यूरेनियम को जब ईंधन के रूप में प्रयोग में लाया जाता है तो HEAVY WATER की आवश्यकता नहीं होती। भारत का परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम तीन चरणों वाला है। प्रथम चरण में PRESSURISED HEAVY WATER द्वारा चालित रियेक्टरों की तकनीक सम्मिलित है। दूसरे चरण में FAST BREEDER REACTOR की तकनीक का विकास करना है। भारत इस चरण को अभी तक पूरा कर चुका है। इसमें प्लूटोनियम आधारित ईंधन संवर्धन की प्रक्रिया प्रमुख आधार है। तीसरे चरण में थोरियम–यूरेनियम चक्र की तकनीक का विकास सम्मलित है। इसमें थोरियम द्वारा यूरेनियम 233 ईंधन की प्राप्ति की जाती है। सूच्य हो कि भारत में विश्व का 65 प्रतिशत थोरियम का भण्डार पाया जाता है।

यह भी उल्लेखनीय है कि भारत ने अब तक अपने परमाणु कार्यक्रम हेतु आवश्यक मानव संसाधन, रियेक्टर तथा शोध संस्थानों की स्थापना कर ली है। अभी तक भारत में 3360 मेगावाट विद्युत उत्पादन

✍ प्रवक्ता, राजनीति विज्ञान, राजकीय महाविद्यालय, समथर (झाँसी)

क्षमता का विकास हो चुका है। परन्तु यह भारत की कुल विद्युत उत्पादन क्षमता का मात्र 2.5 प्रतिशत है। लक्ष्य यह है कि परमाणु विद्युत उत्पादन को 20000 मेगावाट तक किया जाये। परन्तु भारत का परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम तमाम उपलब्धियों के बावजूद इस लक्ष्य को शीघ्र प्राप्त करने की स्थिति में नहीं है। उल्लेखनीय है कि भारत ने 1974 एवं 1998 में परमाणु परीक्षण किया। इन परमाणु परीक्षणों का उद्देश्य स्वयं को नाभिकीय शक्ति सम्पन्न राष्ट्र के रुप में स्थापित करना था। परमाणु परीक्षणों के बाद भी भारत में उच्च तकनीक तथा यूरेनियम का अभाव है।

इसके विपरीत विश्व के अनेक देश विदेशी सहयोग पाकर नाभिकीय ऊर्जा के क्षेत्र में कहीं आगे निकल गये। भारत को सहयोग इसलिए नहीं मिला क्योंकि उसने परमाणु अप्रसार सन्धि 1968 (NPT) तथा व्यापक परमाणु अप्रसार सन्धि 1996 (CTBT) जैसे शस्त्र नियंत्रण की सन्धि पर हस्ताक्षर करने से इन्कार किया। यदि भारत इन सन्धियों पर हस्ताक्षर कर देता तो उसे नाभिकीय क्षेत्र में तकनीकि तथा यूरेनियम की उपलब्धता तो हो जाती। परन्तु वह परमाणु हथियारों के निर्माण से वंचित हो जाता। ऐसे में जुलाई 2005 में भारतीय प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह की यात्रा के दौरान अमेरिकी राष्ट्रपति जार्ज बुश ने भारत के समक्ष असैन्य परमाणु ऊर्जा के क्षेत्र में सहयोग देने की पेशकश की और भारत अमेरिका के मध्य 2005–06 की रणनीतिक भागीदारी के तहत 02 मार्च 2006 को भारत अमेरिका असैन्य परमाणु सहयोग समझौता 123 सम्पन्न हुआ।

जुलाई 2007 तक भारत में सभी राजनैतिक दल व समीक्षक चुप रहे परन्तु अगस्त 2007 में इस समझौते से संबंधित दस्तावेजों के विदेश मंत्रालय की बेवसाइट पर जारी होते ही आलोचना होने लगी कि इससे भारतीय विदेश नीति एवं सम्प्रभुता प्रभावित होगी परन्तु भारत एवं विश्व में अनेक विरोधी आलोचनाओं के बाद भी इसे अमेरिकी कूटनीतिक दबाव का करिश्मा कहें या फिर नई दिल्ली की तरफ से परमाणु अप्रसार के आश्वासन का असर, 45 देशों के परमाणु आपूर्ति कर्ता समूह (NSG) ने भारत को नाभिकीय बिरादरी में शामिल कर लिया। इसके साथ की भारत को (NPT) एवं (CTBT) पर हस्ताक्षर किये बिना ही तीन दशक पुराने नाभिकीय कारोबार के प्रतिबन्ध से छूट मिल गयी और जिससे भारत को आई0ए0इ0ए0 (I.A.E.A.) में जाने की जरूरत नहीं रही।

भारत राज्य के साथ–साथ देश की जनता के लिये ऐतिहासिक एवं राजनीतिक महत्व वाले इस 123 समझौते का अध्याय भी लिखा जा चुका है। अमेरिकी कांग्रेस ने 123 समझौते को अक्टूबर 2008 को 13 के मुकाबले 806 मतों से पारित कर दिया। अमेरिकी राष्ट्रपति तथा दोनों के विदेश मंत्रियों के हस्ताक्षर भी इस करार पर हो गये हैं। लेकिन दुनिया के विकसित देश अभी भी भारत के साथ एक सम्पूर्ण प्रभुसत्ता सम्पन्न आणविक अस्त्र राष्ट्र जैसा व्यवहार नहीं कर रहे हैं। अमेरिकी कांग्रेस ने एक संशोधन द्वारा इस सम्बन्ध में पूर्व सूचना दे दी है कि अगर भारत द्वारा भविष्य में परमाणु विस्फोट किया जाता है तो यह समझौता बाध्यकारी नहीं रह जायेगा।

ऐसे में प्रारम्भ में जो कुछ आशंकाएं उभरी थीं। अभी भी विचारणीय है कि FAST BREEDER REACTOR को भी जांच के दायरे में रखा जायेगा। FAST BREEDER REACTOR हमारी परमाणु ऊर्जा आवश्यकताओं का बहुत महत्वपूर्ण मार्ग है। भारत में थोरियम का भंडार बहुत है यूरेनियम का नहीं। सामान्यतः परमाणु रियेक्टर यूरेनियम पर ही चलते हैं। भारत नें यूरेनियम आधारित रियेक्टर ना बनाकर थोरियम आधारित परमाणु रियेक्टर बनाने का प्रयास किया है। ताकि दूसरों पर निर्भरता ना रहे। लेकिन 123 समझौते से हमारी परमाणु नीति दूसरों पर निर्भर हो रही है। अर्थात् अनिश्चितता की ओर अग्रसर। सोचना होगा कि भविष्य में परमाणु ऊर्जा का प्रयोग तो बढ़ेगा ही फिर हम अभी से उसका नियंत्रण अमेरिका के हाथ में क्यों दे रहे हैं ? ऐसे में जब भारत को यूरेनियम की सप्लाई को लेकर समग्र विश्व में सुगबुगाहट भारतीय दृष्टि से विकृत सी प्रतीत हो रही है। विश्व का मुख्य यूरेनियम उत्पादक आस्ट्रेलिया भारत को एनएसजी से स्वीकृति पश्चात भी यूरेनियम देने से मना कर रहा है। तब जब कि यह भी नहीं पता कि वह इस मामले में गंभीर है या कोई मोल तोल करना चाहता है। वैसे भी इस दौरान यूरेनियम के विश्व बाजार में भारत की मांग का ताप महसूस किया जाना शुरू हो गया है। भारत की मौजूदा सालाना मांग 500 टन या 13 लाख पाउण्ड (1 टन = 2600 पाउण्ड) की है। शुरूआती सालों में ही इसके 1000 से 1500 टन हो जाने की उम्मीद है। यूरेनियम व्यापारियों के मुताबिक स्पाट या हाजिर बाजार में इतनी मांग कीमतों को बढ़ाने के लिए काफी है। वैसे भी लंदन के बाजार में पिछले कुछ सालों में यूरेनियम की कीमतों में भारी उतार चढ़ाव आता रहा है। वर्ष 2000 में इसकी कीमत महज 7 डालर प्रति पाउण्ड थी। जून 2007 तक उछलकर 136 डालर प्रति पाउण्ड हो गई और स्पाट बाजार में इस समय यूरेनियम की कीमत 64.5 डालर प्रति पाउण्ड चल रही है और वर्ष भर बाद यह कीमत कहां तक पहुंचेगी कल्पना की जा सकती है।

उल्लेखनीय है कि इस समझौते के बाद भारत के पड़ोसी देश चीन और पाकिस्तान तो परमाणु परीक्षण कर सकते हैं परंतु भारत परमाणु परीक्षण नहीं कर सकेगा। ठीक है कि एनएसजी से मिली छूट वास्तव में एक वैश्विक अवसर है। चूंकि भारत आण्विक व्यवसााय के लिए अपने दरवाजे खोल देगा तो इससे 40 मिलियन डालर के विश्वव्यापी व्यवसाय की शुरूआत होगी। भारतीय कंपनियों को विदेशी परमाणु संयंत्र निर्माताओं के लिए कलपुर्जों की आपूर्ति का अवसर मिलेगा। भारतीय फर्मों को ऊर्जा उत्पादन का अवसर हासिल होगा एवं देश में परमाणु ऊर्जा स्तर बढ़ेगा।

आलोचक मानते हैं कि यह अमेरिका के हित में है कि वह भारत के साथ परमाणु समझौता करे और भारत की उन्नत तकनीकि का आयात करे। अभी तक अमेरिका की परमाणु नीति अधिक से अधिक प्लूटोनियम के उत्पादन की रही है जिसके कारण अन्य परमाणु कार्यक्रमों में वह लगातार पिछड़ता चला गया। अगर भारतीय वैज्ञानिकों के काम पर हमें भरोसा है तो हमे कुछ ऐसे तथ्यों पर भी नजर डालनी होगी जो तस्वीर का दूसरा रुख दिखाते हैं। भारत थोरियम के विशाल भण्डार के दोहन के लिए एडवांस्ड हैवी वाटर रियेक्टर विकसित करने वाला दुनिया का अग्रणी देश है।

इंटरनेशनल न्यूक्लियर इन्फारमेशन सिस्टम का डाटाबेस कहता है कि FAST BREEDER REACTOR और थोरियम के शोध के मामले में भारत इस समय दुनिया के शीर्ष पर है।

खुद अनिल काकोदकर HEAVY WATER TECHNOLOGY पर 100 से अधिक शोध प्रबंध लिख चुके हैं। 2006 में PRESSURISED HEAVY WATER REACTOR पर कुल प्रकाशन का 44 फीसदी भारत में हुआ है। खुद आई. ए. इ. ए. (I.A.E.A.) थोरियम आधारित ईंधन के प्रयोग में दिलचस्पी दिखा रहा है।

दुनिया में भारत एक मात्र एक ऐसा देश है जिसने सभी तीन मुख्य विखंडनीय तत्वों यूरेनियम–233, यूरेनियम–234 और प्लूटोनियम के इस्तेमाल के ठोस रोडमैप तैयार किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त भारत उन देशों में शुमार है जो सफलतापूर्वक FAST BREEDER कार्यक्रम चला रहे हैं। जाहिर है भारत इस क्षेत्र में काफी आगे है। ऐसे में यह अमेरिका के हित में है कि वह भारत से उन्नत तकनीकी का आयात करें।

अमेरिका अपने पुराने रियेक्टरों को दफना रहा है। एक परमाणु बिजली पैदा करने वाले रियेक्टर की औसत उम्र 30 साल होती है, इस अवधि के बाद वह परमाणु बिजली घर खुद रेडियोएक्टिव हो जाता है। वैसे इस समय 60 वर्ष तक परमाणु बिजली घर की उम्र बढ़ाने की तकनीकी है। परन्तु पुराने बिजली घरों की औसत उम्र 30 वर्ष ही है। अमेरिका परमाणु रेग्युलेंटरी कमीशन की रिपोर्ट है कि इस समय अमेरिका में 16 पुराने परमाणु रियेक्टरों को दफन करने की प्रक्रिया चल रही है। लेकिन समस्या सिर्फ परमाणु बिजली घरों के निपटारे की ही नही हैं। अमेरिका की सारी परमाणु बिजली एक खुले ईंधन चक्र के जरिए पैदा होती है। इसमें संवर्धित यूरेनियम का इस्तेमाल केवल एक बार होता है। अमेरिका रियेक्टर पी. डब्लू. आर. PRESSURISED HEAVY WATER REACTOR है। जिसमें साधारण पानी का इस्तेमाल होता है। भारत में जो हैवी वाटर रियेक्टर हैं उसकी तुलना में पी. डब्लू. आर., PRESSURISED HEAVY WATER REACTOR ज्यादा न्यूट्रान जज्ब करते हैं। पी. डब्लू. आर. में ब्रीडर प्रक्रिया संभव नहीं है और प्रयोग हुए यूरेनियम की दुबारा साईकिलिंग भी नहीं की जा सकती।

इसलिए अब अमेरिका को बंद ईंधन चक्र वाले परमाणु रियेक्टरों के आयात की सख्त जरूरत है। जार्ज बुश ने जनवरी 2006 में कहा भी था कि यह वैश्विक परमाणु साझेदारी का मुख्य लक्ष्य है। इस साझेदारी में फिलहाल 19 देश हैं। भारत और कनाडा PRESSURISED HEAVY WATER REACTOR का इस्तेमाल करते हैं जो कि बंद ईंधन प्रक्रिया पर आधारित है। वर्तमान में कनाडा के पास 18, भारत के पास 16, दक्षिण कोरिया के पास 04, अर्जेन्टीना के पास 02, चीन के पास 02 और पाकिस्तान के पास 01 PRESSURISED HEAVY WATER REACTOR हैं और ये सभी चालू अवस्था में हैं।

परमाणु ईंधन चक्र का विशेष उल्लेख पूरे समझौते का निचोड़ है खुले परमाणु ईंधन चक्र वाले अमेरिका को भारत और रूस के उन्नत बंद परमाणु ईंधन चक्र के TECHNOLOGY की सख्त जरूरत है। रूस भू राजनैतिक मामले में अमेरिका पर अंकुश लगाता है। इसलिए वह अपनी अत्याधुनिक तकनीकी

अमेरिका को देने का जोखिम नहीं उठायेगा। शायद इसलिए अमेरिका ने भारत पर हर तरह का दबाव डालकर परमाणु समझौते को अंजाम दिलवाया ताकि उसे बंद परमाणु ईंधन चक्र की TECHNOLOGY भारत से हासिल हो सके। इसके बदले में वह भारत को FAST BREEDER REACTOR और LIGHT WATER REACTOR देने का आश्वासन दे रहा है।

स्वस्थ लोकतंत्र, स्वतंत्र न्यायपालिका, स्वतंत्र मीडिया और गतिमान अर्थव्यवस्था वाला भारत जब विश्व के हर देश की पहली पसन्द है। यहाँ तक कि आर्थिक मुद्दों पर हमारे परम्परागत शत्रु एवं सामरिक प्रतिद्वंद्वी देश पाकिस्तान तथा चीन भी भारत से सम्बन्ध बनाना चाहते हैं। साथ ही एक ओर जहाँ भारत, चीन, रूस त्रिकोण की बात की जा रही है। वहाँ अमेरिका जैसे स्वार्थी देश के साथ नजदीकियाँ भारतीय जन मानस को उचित प्रतीत नहीं होती हैं। जब मौजूदा आतंकवाद की वैश्विक चुनौती से निपटने के लिए भावी परमाणु कार्यक्रम मिसाइल प्रोजेक्ट एव अंतरिक्ष कार्यक्रमों को जारी रखना भारत के राष्ट्रीय हितों के लिए मजबूरी सदृश्य है।

इस समय भारत एवं विश्व में एक संशय की स्थिति बनी हुयी है कि भारत अमेरिका परमाणु समझौते के भविष्य के क्या परिणाम होंगें। यह समझौता दोनों देशों के राष्ट्रीय हितों, विदेश नीति एवं संप्रभुता के लिए कितना अनुकूल तथा प्रतिकूल होगा। यह परमाणु प्रौद्योगिकी और सामग्री के अनियमित प्रसार एवं विस्तार को सीमित करने में मद्दगार साबित होगा या नहीं। समग्र भारत एवं विश्व में परमाणु अप्रसार मुद्दे पर अलग–अलग समझ और राय रखनें वाले दो देशों के हित कैसे सधेंगे, भारत की विदेश नीति के अमेरिकी पिछलग्गू बनने की आशंका, भारत की परमाणु क्षमता में अमेरिकी दबाव का भय, इतना ही नहीं सभी के मन में सबसे बड़ा यक्ष प्रश्न यह भी है कि परमाणु समझौते के बाद भी भारत अपनी आवश्यकतानुसार परमाणु परीक्षण कर पायेगा या नहीं। ऐसी संशय की स्थिति बनी हुयी है।

वास्तव में यह समझौता भारत के राजनैतिक आर्थिक एंव अप्रत्यक्ष रूप से सामरिक महत्व का है। क्योंकि इससे जहाँ एक ओर भारत को ऊर्जा प्राप्त होगी, विदेशी निवेश बढ़ेगा एवं भारतीय अर्थव्यवस्था मजबूत होगी। वहीं ऊर्जा की निर्बाध आपूर्ति से जी0 डी0 पी0 में वृद्धि तथा परमाणु ऊर्जा क्षेत्र में विशेष निवेश की वृद्धि होगी। वहीं यह पर्यावरण के अनुकूल भी होगा। भारत एक परमाणु शक्ति सम्पन्न देश के रूप में स्थापित होगा। इससे विश्व में भारत का सामरिक महत्व बढ़ेगा एवं भारत के अमेरिका से अच्छे सम्बन्धों के कारण सुरक्षा परिषद की स्थाई सदस्यता शीघ्र प्राप्त होनें में उपयोगी सिद्ध होगा।

भारत की तारापुर जैसे परमाणु संयंत्रों की ताला बन्दी भी टल जायेगी और परमाणु ईंधन भी मिलने लगेगा। सबसे बड़ा लाभ परमाणु बम बनाने पर रोक नहीं है क्योंकि अमेरिका यह तो कह नहीं सकता कि आप (भारत) परमाणु बम बनायें और जहाँ मन हो उसका प्रयोग करें। लेकिन हम कुछ नहीं कहेंगें। कोई भी देश ऐसी शर्त को नहीं मान सकता। आखिर बिना (NPT) एवं (CTBT) पर हस्ताक्षर किये बिना यूरेनियम की आपूर्ति होगी तो इससे बड़ी उपलब्धि क्या होगी ? वैसे भी यूरेनियम की निर्बाध आपूर्ति

से भारत परमाणु शक्ति बन जायेगा। हाँ भारत को भी ऊर्जा के अन्य विकल्पों को तलाशना चाहिए। जिससे यदि भारत के परमाणु विस्फोट करने या अन्य कारणों से अमेरिका समझौते से पीछे हट जाता है तो भारत को कोई विशेष हानि न हो सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. **AGREEMENT FOR** COOPERATION BETWEEN THE GOVERNMENT OF THE UNITED STATES OF AMERICA AND THE GOVERNMENT OF INDIA CONCERNING PEACEFUL USES OF NUCLEAR ENERGY (123 AGREEMENT) MEDIA NOTE ,OFFICE OF THE SPOKESMAN,WASHINGTON, DC, AUGUST 3, 2007, page all
2. **INDO-U.S. CIVIL NUCLEAR DEAL** - hari sud, niraj kumar, nam chamski, prem shukla, dev datta, anil raghuraj, alok tomar, -www.visfot.com & NEW DELHI, ATLANTIC, 2007, page all
3. **NUCLEAR POLITICS : DESTRUCTION AND DISARMAMENT IN A DANGEROUS WORLD**/EDITED BY GERSON DA COSTA. 2000, VIII, 320 , page all
4. **INDO-U.S. CIVIL NUCLEAR DEAL,EDITED** BY RAHUL BHONSLE, VED PRAKASH AND K.R. GUPTA. NEW DELHI, ATLANTIC, 2007, 2 VOLS., XXVIII, page all
5. **INDIA'S NUCLEAR DEBATE : INDO-US CIVIL NUCLEAR CO-OPERATION AGREEMENT**. NEW DELHI, ACADEMIC EXCELLENCE, 2008, page all
6. **INDIA'S NUCLEAR DOCTRINE** / V.N. KHANNA. NEW DELHI, 2000 page all
7. **INDIA'S NUCLEAR POLICY, DISARMAMENT AND INTERNATIONAL SECURITY/EDITED** BY S.K. MISHRA. NEW DELHI, RADHA PUB., 2006, page-, all
8. प्रतियोगिता दर्पण ,उपकार प्रकाशन, आगरा, मई 2006 पृष्ठ–1825,26,27,28
9. जनवरी–2008, पृष्ठ–1029,30,31,32,एवं 1053,1054,1055, जुलाई–2006 पृष्ठ–2194,95,96,97
10. योजना नवंबर , 2008 पृष्ठ 35,36,37
11. सिविल सर्विसेज टुडे नई दिल्ली, नवंबर 2008, पृष्ठ 56,57,58,59,60,61,62,63,64,65
12. परीक्षा मंथन इलाहाबाद, 2008–09,भाग–8, पृष्ठ 801,802,803
13. दैनिक जागरण कानपुर, 06,07 सितंबर 2008 पृष्ठ 1,2एवं 12,13 अक्टूबर 2008 पृष्ठ 01,02
14. हिन्दुस्तान कानपुर, 17 सितंबर 2008 पृष्ठ 8,9,10 एवं 12,13 अक्टूबर 2008 पृष्ठ 01,02
15. अमर उजाला कानपुर, 06, 07 सितंबर 2008 पृष्ठ 1,2 एवं 12 अक्टूबर 2008 पृष्ठ 01,02

परमाणु निःशस्त्रीकरण की संभाव्यता

✍ डॉ. शिवानन्द सिंह

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद आणुविक शक्ति में विभिन्न राष्ट्रों की बढ़ती हुई रूचि के कारण आणुविक शस्त्रों का फैलाव का खतरा निरन्तर बढ़ने लगा जिससे विश्व में तनाव एवं असुरक्षा के वातावरण में वृद्धि हुई है भविष्य में असुरक्षा के भय ने राष्ट्रों को निःशस्त्रीकरण की ओर उन्मुख किया। परमाणु निःशस्त्रीकरण का शाब्दिक अर्थ है, हथियारों को घटाना और मिटाना, परमाणु हथियारों के फैलाव या बिखराव को रोकना और नये किस्म के परमाणु हथियारों के विकास पर रोक लगाना। सामान्य रूप में निःशस्त्रीकरण चार तरह के हो सकते हैं।

गुणात्मक निःशस्त्रीकरण, जो केवल खास किस्म के हथियारों के नियन्त्रण का निर्देश देती है। मात्रात्मक निःशस्त्रीकरण जो सब वर्गों के हथियारों के नियंत्रण का निर्देश देती है। सामान्य निःशस्त्रीकरण, जिसमें सब या अधिकतर महाशक्तियां हिस्सा लेती हैं पर यह आवश्यक नहीं कि वे सब प्रकार के हथियारों के त्याग के लिए बचनवद्ध हो जबकि व्यापक निःशस्त्रीकरण के अन्तर्गत सब वर्गों के सब आयुधों का नियंत्रण या निषेध होता है। व्यापक निःशस्त्रीकरण को पूर्ण या सम्पूर्ण निःशस्त्रीकरण भी कहते हैं।

इस प्रकार सामान्य अर्थ में निःशस्त्रीकरण का आशय हथियारों पर कुछ मामूली सीमा से लेकर उनका पूर्ण परित्याग कुछ भी हो सकता है। निःशस्त्रीकरण कोई नई घटना नहीं है चाहे इसको सर्वव्यापी मान्यता भले ही द्वितीय विश्व युद्ध के बाद मिली हो। वास्तव में निःशस्त्रीकरण का विचार प्रथम विश्व युद्ध के समय से ही महसूस किया जा रहा है परन्तु जहाँ तक परमाणु निःशस्त्रीकरण का सवाल है इसके लिए द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद प्रयास किये गये।

हीरोशिमा और नागासाकी की घटना जिसने मानवता को हिलाकर रख दिया जिसके रेडियो ऐक्टिविटी का प्रभाव जापान में आज तक दिखायी देता है। आज परमाणु शक्तियों वाले राष्ट्रों की बढ़ोत्तरी हो रही है। अमेरिका द्वारा 16 जुलाई, 1945 को न्यू मैक्सिको के अल्यार्दो रेगिस्तान में किया गया विश्व के पहले परमाणु परीक्षण के साथ परमाणु युग की शुरूआत हुई। इसके बाद 1949 में सोवियत संघ 1952 में ब्रिटेन, 1958 में फ्रांस तथा 1964 में चीन ने अपना–अपना पहला परमाणु परीक्षण करके अमेरिका के साथ पाँच परमाणु सम्पन्न देशों में शामिल हो गये। भारत ने भी 1974 में पोखरण में परमाणु विस्फोट किया और मई 1988 में पुनः पाँच परमाणु विस्फोट करके छठा अघोषित परमाणु राष्ट्र बन गया। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे देश भी हैं जिनके पास परमाणु हथियार बनाने की क्षमता है। जैसे कनाडा, जर्मनी, इजराइल, इटली, जापान, दक्षिण अफ्रीका, स्वीडन और स्विटरजरलैण्ड।

✍ प्रवक्ता, राजनीति विभाग, हण्डिया (पी. जी.) कालेज, हण्डिया, इलाहाबाद

इस प्रकार द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद आणुविक शक्ति में विभिन्न राष्ट्रों के बढ़ती हुई रूचि के कारण आणुविक हथियारों के फैलाव का खतरा निरन्तर बढ़ता गया जिससे विश्व में तनाव एवं असुरक्षा के वातावरण में वृद्धि हुई है। जैसे कि बट्रेण्ड ब्रोडी कहते हैं कि परमाणु बम के कारण सारभूत परिवर्तन केवल यह नहीं हुआ कि युद्ध अधिक हिंसक हो गया बल्कि यह भी हुआ कि इससे सारी हिंसा का प्रयोग थोड़ी देर में हो जाता है।

वर्तमान में परमाणु युद्ध के कारण राष्ट्र की क्षेत्रीयता पर सबसे गहरा प्रभाव पड़ा है। भविष्य में असुरक्षा के भय ने राष्ट्रों को परमाणु अस्त्रों के उत्पादन को सीमित करने तथा उनके प्रयोग एवं परीक्षण पर रोक लगाने के लिये निःशस्त्रीकरण की ओर उन्मुख किया है। वर्तमान में असुरक्षा का भय चाहे हटा दिया जाये परन्तु भविष्य की असुरक्षा का भय न तो हटाया जा सकता है और घटाया जा सकता है। इस स्थिति में राष्ट्रों से पूर्ण निःशस्त्रीकरण की आशा नहीं की जा सकती चाहे किसी समय विशेष पर राजनीतिक मतभेद दूर भी कर लिये जाये। अतः इस विचार ने व्यापक निःशस्त्रीकरण के सारे प्रश्न में दिलचस्पी में कमी लाया है और आंशिक निःशस्त्रीकरण पर ध्यान केन्द्रित किया है। जिसका उदाहरण 1963 की आणुविक परीक्षण प्रतिबन्ध सन्धि है। जिसमें ब्रिटेन, सोवियतसंघ और अमेरिका के प्रतिनिधियों द्वारा हस्ताक्षर किये गये। इस सन्धि के द्वारा भूगर्भ परीक्षणों को छोड़कर आकाश, समुद्र और वायुमण्डल में अणु परीक्षण करने पर रोक लगा दी गयी। फ्रांस ने इस सन्धि पर हस्ताक्षर नहीं किया, चीन इसका विरोधी था परन्तु भारत इस पर हस्ताक्षर करने वाले राष्ट्रों में अग्रणी राष्ट्र था।

हालांकि यह सन्धि परमाणु परीक्षणों से सम्बन्धित सब समस्याएं, विशेष रूप से परमाणु अस्त्रों को लक्ष्यों तक पहुँचाने के साधनों, प्रक्षेपास्त्र नाशक प्रक्षेपास्त्रों को त्रुटिहीन बनाने और रूढ़ हथियारों से सम्बन्धित सब समस्याओं को हल नहीं कर सका। यह न तो भूमिगत विस्फोट पर रोक लगाती है और न परमाणु हथियारों के उत्पादन बन्द करती है। इसके अलावा, यह परमाणु शक्तियों को अपने हथियार अपने मित्र राष्ट्रों को देने से नहीं रोकती। वस्तुतः भूगर्भ परीक्षण को पकड़ने का कोई उचित तरीका न होने के कारण इस पर प्रतिबन्ध नहीं लगाया जा सका। परन्तु आणविक परीक्षण प्रतिबन्ध सन्धि को स्थायी शान्ति और निःशस्त्रीकरण की दिशा में प्रथम कदम माना जा सकता है।

इसी प्रकार 1968 में परमाणु अप्रसार सन्धि हुई, जिस पर संयुक्त राष्ट्र के 112 सदस्यों में से 110 ने प्रस्ताव के पक्ष में मत दिया। जिसमें अल्बानियां ने प्रस्ताव का विरोध किया और क्यूबा तटस्थ रहा। इस सन्धि में मुख्य प्रावधान निम्नवत् थे –

1. परमाणु राज्य परमाणु अस्त्रविहीन राष्ट्रों को परमाणु बम के निर्माण की रहस्य की जानकारी नहीं देंगे।
2. परमाणु राष्ट्र परमाणु अस्त्र विहीन राष्ट्रों को परमाणु अस्त्र प्राप्त करने में सहायता नहीं देंगे।
3. परमाणु अस्त्र विहीन राष्ट्र परमाणु बम बनाने का अधिकार त्याग देंगे।

4. परमाणु अस्त्रों के परीक्षण और विस्फोटों पर रोक लगाने की अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था स्थापित की जानी चाहिये।

5. ऐसे देश, जिनके पास परमाणु शस्त्र निर्माण की तकनीकी क्षमता है वे परमाणु शक्ति के विकास असैनिक कार्यों के लिये करेंगे।

इस सन्धि को परमाणु निषेध सन्धि के उपरान्त निःशस्त्रीकरण की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम कहा गया परन्तु यह सन्धि भी निःशस्त्रीकरण की कोई वास्तविक हल प्रस्तुत नहीं करती। यह भूमिगत न्यूक्लियर परीक्षणों पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाती, परमाणु राष्ट्रों द्वारा नये न्यूक्लिर अस्त्रों के निर्माण पर कोई रोक नहीं लगाती, राष्ट्रों के न्यूक्लियर अनुसंधान कार्यक्रमों पर किसी प्रकार के अन्तर्राष्ट्रीय नियंत्रण या निरीक्षण की व्यवस्था करती है। राष्ट्र असैन्य उपयोग के नाम पर जो परमाणु अनुसंधान करेंगे उनका सैनिक उपयोग नहीं करेंगे इसकी कोई गारण्टी नहीं है।

इस प्रकार सम्भावित परमाणु शक्तियां और प्रमुख असंलग्न राज्यों के बहुत से प्रतिनिधियों ने बिना शर्त अ–प्रचुरण सन्धि करने का विरोध किया और यह कहा कि यह सन्धि गैर परमाणु शक्तियों की सुरक्षा वृद्धि के उपायों के साथ जुड़ी होनी चाहिये, उनमें से अधिकतर इकट्ठी पैकेज सन्धि करने के पक्ष में थे।

भारत की पैकेज योजना विशेष रूप से महत्वपूर्ण थी क्योंकि भारत के बारे में यह अत्यन्त प्रबल संभावना मानी जाती थी कि वह जल्द ही परमाणु हथियार बनाने का फैसला करने वाला है। भारतीय प्रतिनिधियों ने निम्न प्रस्ताव इस संदर्भ में रखे –

1. परमाणु शक्तियां परमाणु हथियार न बनाने एवं गैर परमाणु शक्तियों के विरूद्ध परमाणु हथियारों का प्रयोग न करने के लिये वचनबद्ध हो।

2. उन गैर परमाणु शक्तियों के लिये सुरक्षा साधन प्राप्त हो जिन्हें परमाणु हथियारों का खतरा हो।

3. एक व्यापक परीक्षण प्रतिबन्ध हो।

4. भविष्य में परमाणु हथियार बनाने पर रोक और उसके बाद परमाणु शक्तियों द्वारा परमाणु अस्त्र प्रेक्षण वाहनों में कमी हो।

इनमें से प्रत्येक उपलब्ध का अन्य गैर परमाणु शक्तियों ने समर्थन किया। परन्तु उनमें से कुछ ने अपनी–अपनी पैकेज योजनाएं भी पेश कीं। जैसा कि स्वीडन चाहता था कि सन्धि के साथ–साथ परीक्षणों पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगे और सैनिक कार्यों के लिये विखण्डनीय सामग्री के उत्पादन में कटौती की जाये। कनाडा ने गैर परमाणु शक्तियों की सुरक्षा की गारण्टी देने और परमाणु शक्ति के परमाणु हथियारों में कमी करने का प्रतिपादन किया पर जिन उपबन्धों को सबसे अधिक समर्थन मिला वे थे – व्यापक परीक्षण प्रतिबन्ध और परमाणु हथियारों की वर्तमान संख्या की कमी रहना।

इसके बाद न्यूक्लियर मुक्त समुद्र तल सन्धि, सामरिक शस्त्र परिसीमन वार्ताएं और उपलब्धियां

(Salt Talks) साल्ट–2 समझौता, मध्य दूरी प्रक्षेपास्त्र सन्धि, सामरिक हथियारों में कटौती की स्टार्ट प्रथम सन्धि, स्टार्ट दो सन्धि, रासायनिक हथियार निषेध जैसी सन्धियां शस्त्रों की कटौती के संदर्भ में की गयी।

आज आर्थिक समृद्धि के लिये परमाणु के शान्तिपूर्ण प्रयोग की बात की जाती है। भारत द्वारा 1974 और 1998 में किया गया परीक्षण इसी उद्देश्य से किया गया था परन्तु फिर भी समस्त विश्व में इसका विरोध हुआ। हालांकि भारत ने स्पष्ट कहा कि यह परीक्षण करना उसकी न्यूनतम सुरक्षा आवश्यकता थी क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में राष्ट्रीय हित महत्वपूर्ण होते हैं। इसको कोई राष्ट्र इंकार नहीं कर सकता। चूंकि उसके पड़ोसी देश परमाणु अस्त्र से सम्पन्न हैं। भारत शुरू से ही अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति का पक्षधर रहा है भारत एक जिम्मेदार राष्ट्र है आज सभी बड़ी शक्तियाँ भी इस बात को स्वीकार करती हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हाल के भारत अमेरिका परमाणु समझौता है। 18 जुलाई के भारत–अमेरिका संयुक्त वक्तव्य में अमेरिका भारत को संबद्धित तकनीकी देने के लिये सहमत हुआ। इसके अतिरिक्त आज भारत अपनी शान्तिप्रियता और जिम्मेदार देश होने की वजह से विश्व प्रसिद्ध प्रोजेक्ट में यूरोपीय संघ, संयुक्त राज्य अमेरिका, रूस, चीन, जापान, दक्षिण कोरिया के साथ शामिल होने का प्रस्ताव मिला है। जबकि भारत पर अभी मार्ग प्रशस्त हुआ है।

परमाणु शस्त्र के सृजनात्मक तथा आर्थिक समृद्धि के लिये उपयोग की बात की जाती है। आज विश्व के सभी राष्ट्र अपनी सुरक्षा के साथ–साथ अपनी मूलभूत आवश्यकता के लिये भी परमाणु शक्ति के विकास में लगे हुये हैं और इस दिशा में अन्य देशों से समझौते और सन्धियों का मार्ग प्रशस्त हुआ है।

आज कोई भी देश सुरक्षापूर्ण वातावरण में ही निरन्तर प्रगति करने और अपना अस्तित्व बनाये रखने की कल्पना कर सकता है। परन्तु आज इन सबके बावजूद व्यापक परमाणु निःशस्त्रीकरण पर कोई देश राष्ट्रीय हितों के टकराहट के चलते इस पर सहमत नहीं हो पा रहे। आज सर्वाधिक हथियार अमेरिका और रूस के पास हैं। इस दिशा में तीसरा देश जो प्रगति कर रहा है वह है चीन। आज कनाडा, जर्मनी, इजराइल, इटली, जापान, उत्तर कोरिया, दक्षिण कोरिया, अफ्रीका, स्वीडन तथा स्विट्जरलैण्ड आदि देश हथियार बनाने की क्षमता रखते है जिससे अन्य गैर परमाणु राष्ट्रों में असुरक्षा का भय बना रहता है। वे भी परमाणु हथियारों के लिये प्रयासरत रहते हैं। इसी प्रकार परमाणु प्रौद्योगिकी पर कुछ विशिष्ट देशों में एकाधिकार होने के बावजूद पश्चिमी देशों की व्यापारिक वृद्धि एवं उनकी आपसी प्रतिद्वन्द्वता के कारण उसका काफी विस्तार हुआ है। आज इजराइल, दक्षिण अफ्रीका, पाकिस्तान और भारत ऐसे देश हैं जो अलग–अलग कारणों से परमाणु प्रसार सन्धि पर हस्ताक्षर करना स्वीकार नहीं किया था। अतः उनके यहाँ अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की निगरानी का सवाल ही नहीं उठता। अतः भविष्य में असुरक्षा के भय से ही आंशिक निःशस्त्रीकरण तो संभव है परन्तु सामान्य तौर पर व्यापक परमाणु निःशस्त्रीकरण पर सामान्य सहमति नहीं बन पा रही है।

आज सुरक्षा के दृष्टिकोण से परमाणु शस्त्रों को नियंत्रित करने के लिये मुख्य रूप से पाँच मुद्दे विश्व एवं क्षेत्रीय मंचों पर उठाये जाते हैं –

1. नाभिकीय परीक्षण पर रोक।
2. न्यूक्लियर फ्री जोन का निर्माण।
3. नाभिकीय शस्त्रों को नष्ट करने की समस्या।
4. परमाणु सम्पन्न राष्ट्रों द्वारा परमाणु हथियारों की त्याग की संभावना।
5. परमाणु ऊर्जा के गैर शांतिपूर्ण उपयोग पर रोक।

इस संदर्भ में यह कहना कोई अतिश्योक्ति नहीं है कि यदि परमाणु अनुसंधान यदि शांतिपूर्ण उद्देश्यों को ध्यान में रखकर की जाये तो शस्त्र नियंत्रण की समस्या खुद–ब–खुद हल हो सकती हैं आज समस्त विश्व इस बात पर एक मत है कि सैनिक, आर्थिक और राजनीतिक तीनों दृष्टि से सभी के लिये यह हितकर होगा कि वे परमाणु अस्त्रों की होड़ को रोकने के लिये कोई सर्वग्राही एवं स्थायी समझौता करें।

निष्कर्ष

अतः स्पष्ट है कि हथियारों की होड़ से युद्ध की स्थिति का जन्म होता है। दूसरे विश्व युद्ध के बाद जब सोवियत संघ और अमेरिका के बीच तनाव बढ़ गया तब दोनों देशों ने सैनिक शक्ति बढ़ाने और दिखाने का अधिकाधिक सहारा लिया। आज भारत सरकार पर परमाणु हथियार बनाने के लिये राष्ट्रीय दबाव पड़ रहा है क्योंकि चीन और पाकिस्तान से भारत को खतरा है। प्रत्येक राष्ट्र की विदेश नीति निर्धारण में राष्ट्रीय हित महत्वपूर्ण होता है। सुरक्षा की समस्या का कोई भी हल और राजनीतिक हितों का कोई भी समायोजन स्थायी नहीं होता। इसलिये राष्ट्र अपनी नीतियों को बनाते समय भविष्य की कठिनाइयों से मुकाबला करने के लिये हर संभव सावधानी बरतते हैं इसलिये शक्ति के साधन के रूप में हथियारों को रिजर्व रखना उनकी आवश्यकता बन जाती है अर्थात् भविष्य में असुरक्षा के भय से ही आंशिक निःशस्त्रीकरण तो संभव है पर सामान्य तौर पर व्यापक निःशस्त्रीकरण कठिन है।

हथियारों से असीमित मात्रा में विस्तार ने हालाँकि सुरक्षा का तो नहीं परन्तु कम से कम सुरक्षा की भावना को संतुष्ट तो अवश्य किया है। अतः सम्पूर्ण निःशस्त्रीकरण के लिये आवश्यक है कि राष्ट्रों की सुरक्षा के लिये वैकल्पिक गारण्टी हो। जैसा कि फिलिप नोएल–बेकर ने सुझाव दिया कि निःशस्त्रीकरण सन्धि के साथ ही एक सामूहिक सुरक्षा सन्धि पर भी हस्ताक्षर होने चाहिए ताकि निःशस्त्री राष्ट्रों की सुरक्षा की एक वैकल्पिक गारण्टी हो सके।

पहले युद्ध का अर्थ क्षेत्रीय विस्तार और प्रसार था परन्तु अब उसका स्थान पड़ोस घुसपैठ, अनुचित हस्तक्षेप, प्रचार एवं तोड़–फोड़ ने ले लिया। पहले स्थिति यह थी कि राष्ट्र बिना युद्ध के न सुलझने वाली समस्याओं की सुलझाने के लिये आसानी से युद्ध का सहारा ले सकते थे परन्तु अब वे सर्वनाश के खतरे के भय से युद्ध की बात आसानी से मन में नहीं ला सकते। इसके बावजूद यदि कोई राष्ट्र और विशेष रूप से महाशक्तियाँ परमाणु अस्त्रों का भण्डार बढ़ाना चाहती हैं तो उसका एकमात्र कारण यही

हो सकता है कि वे अपना राजनीतिक सम्मान बढ़ाना चाहते हैं। जैसा कि अमेरिका के स्वर्गीय राष्ट्रपति जॉन केनेडी ने कहा था कि अन्तरिक्ष अनुसंधान कार्यक्रम असल में राष्ट्रीय वर्चस्व के लिये चलाया जा रहा है। चीन ने अणुशस्त्र के बल पर अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में अपना स्थान बनाया है। पोखरण विस्फोट ने ही भारत की छवि को अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में उसके महत्व को बढ़ा दिया है। आज उत्तर कोरिया अपने अणुशक्ति के कारण ही चर्चा में है।

विशेषत: 9/11 की घटना के बाद आज हर राष्ट्र यह महसूस करने लगा है कि वह सुरक्षापूर्ण वातावरण में ही निरन्तर प्रगति और अपने अस्तित्व को बनाये रख सकता है। आज हर राष्ट्र दूसरे राष्ट्र पर सैनिक श्रेष्ठता स्थापित करना चाहता है परन्तु नये हथियारों का विकास होते–होते अन्त में एक ऐसी स्थिति उत्पन्न होना असंभव नहीं जहाँ पहुँचकर उस सैनिक श्रेष्ठता को कोई अर्थ नहीं रह जायेगा, जो अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का उद्देश्य है। अब सर्वनाश के भय के कारण सैनिक श्रेष्ठता की फलसिद्ध प्रायः असंभव हो गयी है क्योंकि विजित राष्ट्र के सारे क्षेत्र और सम्पत्ति के पूर्ण विनाश के साथ–साथ स्वयं अपने सारे क्षेत्र और सारी सम्पत्ति की पूर्ण विनाश की आशंका हो सकती है। अतः आज विश्व शांति स्थापित करना एवं परमाणु शक्ति का सृजनात्मक रूप से इस्तेमाल करना संपूर्ण राष्ट्र के लिये आवश्यक हो गया है।

अतः परमाणु हथियारों के आविष्कार से उत्पन्न परमाणु निवारक भय ने युद्ध की संभावना को कम तो कर दिया है फिर भी इसने राष्ट्र को यकीन दिला दिया है कि भविष्य में यदि कोई भी युद्ध कल्पनातीत् मात्रा में होता है तो यह भयानक और विध्वंसकारी होगा इस पर एकमात्र संभव रोक व्यापक परमाणु निःशस्त्रीकरण ही लगा सकता है।

संदर्भ सूची

1. ब्रोड़ी, बर्ट्रेण्ड – "दि स्टडी ऑफ इण्टरनेशनल पॉलटिक्स" P, 112
2. लिडिल व्हार्ट, बी. एच.
3. लेक्चर बाई मि. श्याम शरण, फारेन सेक्रेटरी, अक्टूबर 24, 2005 "Nuclear Non-proliferation and International security"
4. नोएल बेकर, फिलिप–दि आर्मस रेसः – ए प्रोग्राम फॉर वर्ल्ड डिसअर्मामेण्ट
5. कैनेडी, जॉन – New York Times, 24 जून 1965

पुस्तकें

1. कुमार, महेन्द्र – अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के सैद्धान्तिक पक्ष।
2. पन्त, पुष्पेश – अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध।
3. दीक्षित, जे. एन. – भारतीय विदेश नीति।
4. दन्त वी. पी. – बदलती दुनियां में भारतीय विदेश नीति।

पत्रिकाएं

1. 'टाइम्स ऑफ इण्डिया', 'द हिन्दू', नवभारत टाइम्स, हिन्दुस्तान, इण्डिया टुडे, वर्ल्ड फोकस

वैश्विक परिदृश्य में उच्च शिक्षा की भारतीय परिकल्पना

✍ डॉ. सुनीता तिवारी

देश की प्रगति के लिये सबसे अहं है शिक्षा व्यवस्था और उसमें भी खासतौर पर उच्च शिक्षा, क्योंकि उच्च शिक्षा ही सभी तकनीकी, अविष्कारों, सभी उच्च रोजगारों और अन्ततः समग्र विकास और प्रगति की जननी है। वैश्वीकरण के इस युग में नई पीढ़ी के सामने जहाँ अनेक अवसर हैं, वहीं अनेक चुनैतियाँ भी हैं। हमें बदलती हुई इन परिस्थितियों एवं अपनी प्राचीन संस्कृति के बीच अपने को समन्वित करते हुये आगे बढ़ना होगा तभी हम अपने लक्ष्य को निर्धारित कर पायेंगें। भारत के प्रथम प्रधान मंत्री जवाहर लाल नेहरू ने इस बात पर जोर दिया कि यदि स्कूल और कॉलेज के परिवेश अच्छे होंगे तो भारत में सब कुछ अच्छा होगा। यह सर्वमान्य है कि शिक्षा विकास की कुंजी है तथा उच्च शिक्षा एक ऐसा स्तर है जहाँ से देश के संचालककर्त्ताओं का निर्माण होता है उच्च शिक्षा के मौजूदा परिवेश में खामियों को देखते हुए तथा इस क्षेत्र में इससे जुड़ी समस्याओं से निपटने के लिये इस दिशा में अध्ययन की आवश्यकता महसूस की गई। प्रत्येक देश की शिक्षा व्यवस्था की विलक्षणतायें, चुनौतियाँ एवं समस्यायें होती हैं स्वतंत्रता के बाद हमने उच्च शिक्षा के क्षेत्र में काफी विस्तार किया है। लेकिन इसके बाद भी विश्व के सर्वोत्कृष्ट 20 विश्वविद्यालयों में से एक भी भारत का नहीं है। आजादी के बाद कॉलेज और विश्वविद्यालयीय शिक्षा का लोकतंत्रीकरण करने में हमने काफी सफलता प्राप्त की है। फिर भी हमारी यह कोशिश होनी चाहिये कि उच्चतर शिक्षा, खासकर व्यावसायिक शिक्षा का विस्तार उस स्तर तक किया जा सके, जितना विकसित देशों में है। भारत में उच्चतर शिक्षा में गुणवत्ता लाने हेतु लगभग 72000 विद्यार्थी अमेरिका के विश्वविद्यालयों में अध्ययन के लिये भेजे गये। भारत में उच्च शिक्षा के परिवर्तन के उद्देश्य से अनेक आयोग व समितियाँ गठित हुई। किन्तु कोई भी समस्या के समाधान के लिये प्रभावी नहीं हुई। उच्च शिक्षा में मूलभूत परिवर्तन के लिए सरकार ने कुछ वर्षों में सूचना संचार तकनीक (आई0 सी0 टी0) को राष्ट्रीय मिशन के रूप में लिया है। 11 वीं योजना में इसके लिये पाँच हजार करोड़ रूपये का भी प्रावधान कर दिया गया है। भारत की अधिकतम जनसंख्या विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों से जुड़कर उच्च शिक्षा प्राप्त कर सके। इसके लिये सरकारी तंत्र को पूरी तरह सजग और सतर्क होना पड़ेगा। धन का आंवटन ग्रामीण शिक्षार्थियों तक पहुँचे इसकी पूरी तरह व्यवस्था करनी होगी। गाँव का देश भारत वैश्वीकरण के दौर में उच्च शिक्षा का विस्तार पाने के लिये बहुत सी योजनायें, परियोजनायें, सूचनायें जनता जनार्दन तक मुहैया करा रहा है। राष्ट्रीय ज्ञान आयोग ने प्रधानमंत्री को अपनी पहली रिपोर्ट सौंप दी है। आम सहमति कायम करने के उद्देश्य से प्रधान मंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने ज्ञान आयोग से अपने विचारों को देश भर में प्रसारित करने को कहा है। श्री सिंह ने कहा, "हमारे सार्वजनिक बहस में वास्तविक चुनौती लोगों की मानसिकता को बदलना और ज्ञान आधारित समाज एवं अर्थव्यवस्था के निर्माण के रचनात्मक साधनों की खोज करना है।" अनवरत ज्ञानार्जन के माध्यम से नैतिक संस्कारों एवं व्यवहारों का निर्माण करना ही शिक्षा कहलाता

✍ एसोसियेट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, के. के. कालेज, इटावा

है। स्वामी विवेकानन्द ने कहा – शिक्षा की अवहेलना करना, महान राष्ट्रीय पाप है। सर्व प्रथम लार्ड मैकाले की शिक्षा पद्धति आज भी हमारे जीवन मूल्यों को क्षीण करके हमें अपने पथ से भटका रही है।

आज हमारी अर्थव्यवस्था का भूमण्डलीकरण हो गया है जिसके प्रभाव से शिक्षा का क्षेत्र भी अछूता नहीं रहा है। आज उच्च शिक्षा में नए संसाधन जैसे कम्प्यूटर, प्रोजेक्टर, आदि का उपयोग आवश्यकतानुरूप किया जा रहा है। उच्च शिक्षा का लक्ष्य विद्यार्थियों को अध्ययन के साथ एक व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करना है। विज्ञान एवं तकनीकी के विकास के साथ –साथ आज सारा विश्व एक बाजार का रूप ले चुका है। वैश्वीकरण उच्च शिक्षा के अन्तर्गत पाठ्यक्रम को अन्तर्राष्ट्रीयकरण की ओर ले जाने पर अधिक जोर डाल रहा है। विश्व भर में उच्च शिक्षण संस्थाओं में शोध और अध्यापन के नये अवसरों की बात की जा रही है। परिवर्तित होते हुए भौगोलिक क्षेत्र, दीर्घ जीवन, दीर्घ कार्य दिवस, बड़े शहरी क्षेत्र, अधिक विविध जनसंख्या तथा अधिकतर आने वाले क्षेत्र परिवर्तन उच्च शिक्षा को प्रभावित करते हैं। ग्लोबालइजेशन का पहला चरण 1442 में कोलंबस की नई और पुरानी दुनिया के बीच व्यापार का मार्ग प्रशस्त करने वाली यात्रा से शुरू होकर 1800 तक चलता है। ग्लोबलाइजेशन का दूसरा चरण 1800 से शुरू होकर 2000 में समाप्त हुआ। वर्ष 2000 वैश्वीकरण की प्रक्रिया में मील का पत्थर साबित हुआ। विख्यात पत्रकार और 'द वर्ल्ड इज प्लैट' नामक बहु चर्चित किताब के लेखक थामस एल फ्रीडमैन के अनुसार इस वर्ष से ग्लोबलाइजेशन का तीसरा महान चरण शुरू होता है। हमारे देश में वैश्वीकरण की शुरूआत अंग्रेजों के आगमन के साथ ही शुरू हो गयी थी। पुनर्जागरण के दौरान इसको लेकर प्रतिरोध और आत्मसातीकरण के स्वर एक साथ उठे, लेकिन कालांतर में प्रतिरोध कम होता गया। आर्थिक परिवर्तम, नई शिक्षा, यातायात के नए साधनों के फलस्वरूप समाज का जो आधुनिकीकरण आरम्भ हुआ था वह पुराने से मेल नहीं खाता था। नए यथार्थ और पुराने संस्कारों के बीच नए सामंजस्य की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। इस सामंजस्य के साथ ही नए भारतीय समाज के निर्माण की प्रक्रिया आरम्भ होती है। इसी प्रक्रिया के अन्तर्गत काशी नगरी में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना हिन्दुत्व की सुदृढ़ता, सांस्कृतिक उत्कर्ष, चारित्रिक शुद्धता, सहकारिता के कार्यकलापों पर बल देना था। 4 फरवरी 1916 को भारत के तत्कालीन वायसराय लार्ड हार्डिंग ने विश्वविद्यालय स्थापना समारोह का शुभारम्भ करते हुए इस भवन का शिलान्यास किया था जो कि महामना मालवीय जी की ही देन थी। इस संस्था के 'हिन्दू विश्वविद्यालय' नाम में गांधी जी ने भी पूरी आस्था प्रकट की थी। इस विश्वविद्यालय का हरेक पत्थर शुद्ध हिन्दुत्व का प्रतिबिम्ब है। क्योंकि हिन्दू शब्द हिन्दुस्तान की सम्पूर्ण माटी से उपजी फसल का एक वृहद रूप है। सन 1916 से सन 1939 तक मालवीय जी कुलपति के रूप में उच्च शिक्षा हेतु नये–नये आयामों की रचना करते रहे। इस स्थापना के मूल में प्राचीन हिन्दू धर्म शास्त्रों, हिन्दू दर्शन के अध्ययन को प्रोत्साहन देने की भावना ही निहित थी। राष्ट्रीय अस्मिता एवं सांस्कृतिक चेतना की परिकल्पना भी यहाँ के परिवेश में स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती है। विद्या के इस प्रांगण से निकले अनेक छात्रों ने राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक कीर्तिमान रचे। उच्च शिक्षा के इस केन्द्र पर शिक्षा के साथ–साथ चरित्र निर्माण पर भी बल दिया जाता है। महामना मालवीय जी का यह मानना था शिक्षा का प्रथम लक्ष्य चरित्र निर्माण करना। सदाचार ही मनुष्यता का मूल धर्म है। उच्च शिक्षा का विकास एवं उच्च आर्थिक विकास विकसित देश के लिए ये दोनों

जरुरी हैं। आज अभी हम न केवल अमेरिका, यूरोप बल्कि जापान, कोरिया, सिंगापुर और चीन जैसे देशों से भी पीछे चल रहे हैं। इसलिए वैश्वीकरण ज्ञान अचानक विस्तार की ओर अधिक से अधिक शिक्षण संस्थाओं के प्रसार के साथ आगे बढ़ा है। अधिक से अधिक शैक्षिक विषय, अधिक विभाग, अधिक पाठ्यक्रम तथा बड़ी संकाय, वाचनालय और सुविधाओं की ओर अग्रसर होना वैश्वीकरण का ही प्रतीक है। उच्च शिक्षा में आवश्यकतानुसार इस बड़े बदलाव के लिए सरकार ने भी अगले कुछ वर्षों में सूचना संचार तकनीकी (आई.सी.टी.) को राष्ट्रीय मिशन के रूप में लिया है। वर्तमान में अधिकांश विश्वविद्यालय और अनेक शिक्षण संस्थान आर्थिक तंगी और कुप्रबंधन से जूझ रहे हैं। साथ ही जनसंख्या के बढ़ते दबाब और शिक्षा के प्रति बढ़ती जागरुकता ने शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश की समस्या पैदा कर दी है। यही कारण है कि सरकार शिक्षा के निजीकरण में उदारवादी नीति अपना रही है। शिक्षा के निजीकरण के साथ ही शुरु होती है महँगी शिक्षा की समस्या। शिक्षा किसी भी देश की सामाजिक एवं आर्थिक प्रगति की सूचक है। शिक्षा राष्ट्रीय एकता, चरित्र और मूल्यों का विकास करती है तथा व्यक्ति और समाज को युग की चुनौतियों का सामना करने में समर्थ बनाती है। वैज्ञानिक चिंतन के विकास ने हमारे दृष्टिकोण और मूल्यों को अधिक युक्तिपरक एवं तर्क संगत बनाया है। जिससे सामाजिक जीवन में व्याप्त अनेक अंधविश्वास एवं आडम्बरों से मुक्ति मिली है। वास्तव में मूल्य सामूहिक अनुभव के सारभूत तत्व हैं जो व्यक्तित्व को दिशा प्रदान करते हैं। आज का समाज जिन संकटों का सामना कर रहा है, उनकी पुनरावृत्ति, आक्रामकता और तीव्रता बढ़ने की सम्भावना है। उच्च शिक्षा को भविष्य की आवश्यकताओं के अनुरूप बनाने के लिए आवश्यक है कि उसमें अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव और मेल–मिलाप के सबल कारण सम्मिलित कर दिये जायें।

वैश्वीकरण के इस युग में नई पीढ़ी के सामने जहाँ अनेक अवसर हैं वहीं समस्यायें भी। हमें बदलती हुई इन नवीन परिस्थितियों एवं पुरानी संस्कृति के बीच समन्वय रखते हुए भविष्य का चिंतन करना होगा। उच्च शिक्षा में ऐसे पाठ्यक्रम की आवश्यकता है जिससे छात्रों का दृष्टिकोण व्यापक रूप से विकसित हो सके। मूल्यपरक एवं सांस्कृतिक शिक्षा के माध्यम से सहयोग, सहानुभूति, परोपकार, भ्रातृत्व, कर्त्तव्यनिष्ठा, स्वाभिमान, आत्मविश्वास, सेवाभाव आदि का संवर्धन किया जाना चाहिए। उच्च शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्र सामाजिक, राजनैतिक तथा राष्ट्रीय स्तर की समस्याओं के प्रति जागरूक हों। व्यक्ति एवं समाज के प्रति संवेदनशीलता तथा व्यापक दृष्टिकोण विकसित करने के लिए पाठ्यक्रमों में भारतीय संस्कृति के मौलिक तत्त्वों का समावेश आवश्यक है। अनुसंधानों को प्राचीन संस्कृति के विविध आयामों के वैज्ञानिक विश्लेषण की ओर मोड़ना समीचीन होगा। अतः इक्कसवीं सदी में हमें उच्च शिक्षा और अर्थव्यवस्था दोनों को मजबूत करना होगा तभी हम तकनीकी एवं प्रौद्योगिकी के विकास के माध्यम से उच्च शिक्षा को सकारात्मक रूप दे पायेंगे। मानव समाज केवल साक्षर होने से संतुष्ट नहीं होगा। अपितु उसके लिये मूल्यपरक रोजगारपरक शिक्षण प्रशिक्षण की आवश्यकता की पूर्ति 2015 तक होगी। वर्तमान भारत एक विशाल देश है दक्षिण भारत से लेकर उत्तर भारत तक का उच्च शिक्षा अभियान उच्च मानदण्डों से निर्धारित होगा।

जहाँ उच्च शिक्षा में उदारीकरण को रफ्तार देने की कोशिश चल रही है वहीं उसकी गुणवत्ता की चिंता भी बढ़ रही है। इसलिए सरकार एक तरफ विदेशी विश्वविद्यालयों के रास्ते आसान कर रही है तो दूसरी तरफ तमाम संस्थाओं की ढांचागत तैयारियों का आंकलन भी कर रही है। विदेशी विश्वविद्यालयों की औपचारिकता अभी पूरी नहीं हुई हैं लेकिन उसकी आहटें शुरु हो गई हैं। शिक्षा को राजश्रय देने और यशपाल समिति के सुझावों के अनुरूप गुणवत्ता बनाये रखने का तरीका भी निकालना होगा। क्योंकि घरेलू शिक्षा का स्तर ठीक रहेगा तभी बाहर के विश्वविद्यालय भी आकर्षित होंगे।

संदर्भ–सूची

आधुनिक भारतीय सामाजिक	–	डॉ0 पी0सी0 जैन
एवं राजनीतिक चिंतन		डॉ0 अशोक रस्तोगी
सामर्थ्य	–	अक्टूबर 2009
जनसत्ता	–	दीपावली 2009
उत्तर प्रदेश	–	सितम्बर 2009
दैनिक जागरण	–	21 अक्टूबर 2009
शिक्षा में समस्यायें एवं प्रयोग	–	रामबाबू गुप्त
हिन्दुस्तान	–	13 नवम्बर 2009

'वैष्णव–जन' ...... सौराष्ट्र (गुजरात) के भक्तकवि श्री नरसिंह मेहता की वैश्विक–अमर कृति

✍ डॉ. मनोज जोशी

हमारा भारत एक अध्यात्म प्रवृत्त देश है। आज तो कई अन्य देश भी हमारी इस अध्यात्म परम्परा को स्वीकार कर अपना पुनरूत्थान और प्रगति कर रहे हैं। कई युगों–प्रकल्पों से हमारी ये अध्यात्मधारा सारे विश्व में बह रही है। और जन–जन को पवित्र कर रही है। हमारे अध्यात्म में कई आयाम और पहलू हैं। भिन्न–भिन्न विधाएँ हैं, प्रदेश–प्रदेश के विभिन्न अध्यात्म साहित्य में उसका दर्शन है। हमारी भारतीय भजन–पद परम्परा जीवन को पुष्पित–विकसित करती है और अच्छे–सच्चे जीवन का मार्गदर्शन भी करती है।

भारत का एक महत्वपूर्ण राज्य गुजरात है। गुजरात की अध्यात्म साहित्य परम्परा ने भी भारतीय साहित्य में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। कई संतों–भक्तों–ऋषि–कविओं ने अपना सारा आदर्शमय जीवन हमारी अध्यात्म परम्परा को समर्पित कर दिया है। गुजरात के कई भक्त कवि–कवित्रियों ने हमारी पद–भजन परम्परा का निर्वाह किया है। और भारतीय साहित्य में भी आज उनको स्थान–मान लिया है। हमारे भक्त कवि प्रेमानंद, दयाराम, नरसिंह, अखो, भोजा भक्त, दासी जीवण, गंगा सति आदि कई कविओं ने इस पद–भजन की परम्परा में अपना विशिष्ट योगदान दिया है। इस अध्यात्म काव्यधारा में भक्त कवि श्री नरसिंह मेहता का नाम हमारे गुजराती साहित्य में स्वर्ण अक्षरों से अंकित है। इतना ही नहीं आज भी हमारे गाँव–गाँव घरों–घरों में नरसिंह मेहता के पद–भजन–प्रभाती निरन्तर गाए जाते हैं। सौराष्ट्र (गुजरात) की पुरातन नगरी जूनागढ़ से इस भक्त कवि की पद–भजन धारा बहती हुई सारे गुजरात के और भारत के जन–समूह को भिगोती है। भक्त कवि नरसिंह मेहता नागर जाति के संसारी सद्‌गृहस्थ थे। उन्होंने अपना सारा जीवन कृष्ण भक्ति में ही लीन कर दिया था। नरसिंह मेहता अपने आपमें खुद अच्छे गायक भी रहे। उसमें संगीत शास्त्र की काफी जानकारी थी। जो पद वो लिखते थे वह गाकर ही लिखते थे यानि कि उनको कोई पद–भजन की प्रेरणा मिलती थी तो वो स्वरांकन के साथ (with composition) ही प्रकट होते थे। हमारे गुजरात के सुगम संगीत (light music) के वो आद्यपुरूष हैं, उन्हीं से ही हमारी यह गुजराती काव्यसंगीत परम्परा का आरम्भ होता है। कृष्ण भक्ति में ओत–प्रोत इस भक्त कवि को भगवान कृष्ण पर इतना पक्का भरोसा था कि अपने कई सांसारिक विड्‌म्बना और व्यावहारिक कार्य भी वो कृष्ण को सौंप देते थे। और वह सभी कार्य, भिन्न–भिन्न रूप में आकर कृष्ण प्रभु निष्पन्न कर देते थे। जैसे कि नरसिंह मेहता की बेटी कुंवरबाई का विवाह प्रसंग आदि काम कृष्ण भगवान ने ही संजोए थे।

भक्त कवि नरसिंह मेहता ने भगवान शंकर की बड़ी तपस्या करके, शंकर भगवान को प्रसन्न किया था और खुद शंकर उसको कृष्ण प्रभु की 'रासलीला' का दर्शन करवाते हैं। नरसिंह हाथ में जलती

✍ प्रोफेसर, गुजराती भाषा–साहित्य भवन, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट–360005 (गुजरात)

मशाल लेकर कृष्ण प्रभु की 'रासलीला' का दर्शन करने में इतना तल्लीन हो जाते हैं कि उसका हाथ जल जाता है फिर भी उसे पता नहीं चला था। ऐसी कृष्ण भक्ति में हमारे ये भक्त कवि नरसैया ने अपना समग्र जीवन समर्पित किया था। कोई इस भक्त कवि को मोक्ष के बारे में पूछते तो वह एक पद में गाते हैं कि :

'हरिना जन तो मुक्ति न मांगे,
मांगे मनुष्य अवतार'

अर्थात् कवि कहता है कि मैं तो मोक्ष की याचना नहीं करता, मैं तो बार–बार मनुष्य अवतार की ही कामना करूंगा। क्योंकि निरन्तर भक्ति करने में और प्रभु के निरन्तर स्मरण में ही जीवन का आनन्द है। फलश्रुति है। ऐसे महान भक्त कवि नरसिंह मेहता गुजरात के प्रमुख भक्तकविओं में अग्रस्थान पर हैं। नरसिंह मेहता ने कई पद–भजन और प्रभाती में अपनी कृष्ण भक्ति को प्रकट किया है। गुजरात के कोने–कोने में आज भी यह कवि के पद–भजन निरन्तर गाए जाते हैं। और हमारे धार्मिक उत्सवों में, पूजा उत्सव, कथाओं में, कीर्तन महोत्सव आदि में भक्तकवि नरसैंया की रचना बड़े भाव से गाई जाती है।

कवि नरसिंह मेहता का एक पद तो आज सारे विश्व में प्रसिद्ध है। इस आलेख में हमारे कवि नरसिंह का ये पूरा पद और इसकी 'स्वरलिपी' (notations) भी मैं यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ, ताकि कोई संगीतकार–गायक इस 'स्वरलिपि' के माध्यम से उसे गा सकते हैं। 'वैष्णवजन' नामक यह पद आज वैश्विक स्तर पर अमर हो गया है, उसका कारण पूज्य गांधी बापू हैं। गांधी बापू की जीवन यात्रा में इस पद का बड़ा महत्व रहा है। बापू ने खुद अपनी आत्मकथा में यह बात बताई है, जो सर्वविदित है। हमें यह लगता है कि गांधी बापू को 'मोहन' से 'महात्मा' तक के पद पर पहुँचाने में, भक्त कवि नरसिंह मेहता के इस पद से ही बापू को अनूठा जीवन दर्शन मिलता है। इस पद की एक–एक पंक्ति को अगर हम आत्मसात् करें तो हमारे जीवन में भी महत्वपूर्ण परिवर्तिन हो सकता है।

गांधी बापू को यह पद की बानी इतनी स्पर्शी हुई है कि बापू ने अपने नित्य प्रार्थना सभा के क्रम में उसे स्थान दे दिया। बापू कहीं भी जाते थे वहाँ सुबह–शाम की प्रार्थना अवश्य करते–करवाते थे। उस प्रार्थना सभाओं में भी नरसिंह मेहता का यह पद अचूक गाया जाता था। आज भी बापू से जुड़े हुये हमारे राष्ट्रीय पर्व (30, जनवरी और 2 अक्टूबर) के दिन ये पद सभी जगह पर प्रस्तुत होता है। आकाशवाणी, दूरदर्शन और सभी टी. वी. चैनल्स से भी ये पद आज भी, उसी राग में प्रस्तुत होता रहता है। बापू के साथी आश्रमवासियों में एक संगीतज्ञ भी शामिल थे, पं. नारायणराव खरे। 'वैष्णवजन' से विश्वप्रसिद्ध पद का 'स्वरांकन' (composition) राग खमाज में निबध्य है और ये स्वरांकन पं. नारायणराव जी ने किया है। गांधी जी की प्रार्थनाओं से लेकर आज तक उसी ही राग में, सभी जगह ये पद प्रस्तुत होता रहा है।

हमारे भारतीय संगीत के बड़े–बड़े संगीतकारों और गायकों ने इस पद को बड़े भावपूर्ण और सच्चे ह्रदय से उसे प्रस्तुत किया है। सुप्रसिद्ध गायकों में शोभा मुदगल, शुभलक्ष्मी, किशोरी आमोनकर, लता मंगेशकर, वाणी जयराम, पं. भीमसेन जोशी, पं. जसराज, जगजीत सिंह, मन्ना डे, पुरूषोत्तम उपाध्याय,

आसित देसाई आदि ने इस पद को बार–बार गाया है। इतना ही नहीं हमारे भारतीय संगीत के बड़े–बड़े वाद्यकारों ने भी अपने वाद्यों से उसे प्रस्तुत किया है। गांधी बापू की जब हत्या हुई तब हमारे महान शहनाई वादक बिसमिल्लाह खान जी ने इस पद की धुन को दर्द से भरी शहनाई के सुरों में बजाया था। सुप्रसिद्ध महान सितारवादक और बांसुरीवादक सर्वश्री पं. रविशंकर और श्री हरिप्रसाद चौरसिया ने भी सितार और बांसुरी के माध्यम से सारे विश्व में इस पद की धुन को कई बार प्रस्तुत किया है। इसलिये मुझे लगता है कि अब तो ये पद गांधी बापू का, नरसिंह मेहता का ही न रहकर आज पूरे विश्व का पद बन गया है। अतः मैं कहना चाहूँगा कि हमारे गुजरात के भक्त कवि नरसिंह मेहता का ये पद वैश्विक है, अमर है। 'आश्रम भजनावली' में भी यह पद मिलता है।

भक्त कवि नरसिंह मेहता का यह वैश्विक स्तर पर पहुँचा हुआ और भारतीय जन–जन के हृदय में संजोया हुआ यह पद आओ आज हम भी साथ–साथ गायें :

वैष्णव जन तो तेने रे कहिए,
जे पीड़ पराई जाणे रे
परदुःखे उपकार करे तो ये मन अभिमान न आणे रे
सकळ लोकमां सौने वंदे
निंदा न करे केनी रे ....
वाच काछ मन निश्चल राखे
धनधन जननी तेनी रे ....
समदृष्टि ने तृष्णा त्यागी
परस्त्री जेने मात रे ....
जीह्वा थकी असत्य न बोले
पर धन नव झाले हाथ रे ....
मोहमाया व्यापे नहीं जेने
दृढ़ वैराग्य जेना मनसां रे ....
राम नाम शुं ताळी रे लागी,
सकल तीरथ तेना तनमां रे ....
वणलोभी ने कपट रहित छे
काम, क्रोध जेणे मार्या रे,
भणे नरसैयों तेनुं दर्शन करतां
कुळ इकोतेर तार्यां रे ....
वैष्णव जन तो तेने रे कहिए ....

गुजरात के अमर भक्त कवि नरसिंह मेहता के इस पद की 'स्वरलिपि' (notation) इस प्रकार है :

सागगगगम रेप मपप प पधपम
वैष्णव जन तो तेने रे कहिए,
ग गमप पधप धनिसां नीधपम मधपमग
जे पीड़ पराई जाणे रे
सारेगगम रेगमपप पधप मग गम पपधप पधनिसांनीधपम मधपमग
परदुःखे उपकार करे तो ये मन अभिमान न आणे रे
पपप धनिनिनिध निसांसां निरेंसा
सकळ लोकमां सौने वंदे
निनि नि निनि धनि सांसां निधनिप
निंदा न करे केनी रे ....
मधध धध धप धनिनिनि धपप
वाच काछ मन निश्चल राखे
गम पप धधपधनिसां निधपम मधपमग
धनधन जननी तेनी रे ....
सागगगगम रेग मपप प पधपम
वैष्णव जन ....

आज जब सब भारतीय गांधी बापू को भूलने लगे हैं और हमारी अध्यात्म विरासत को भी दिन प्रतिदिन खोते जा रहे हैं। ऐसे वातावरण में आओ हम भी इस महान पद के माध्यम से 'सच्चा आदमी' बनने की कोशिश करें। 'वैष्णवजन' बनने की ख्वाहिशें करें।

हास्य रस का शास्त्रीय विवेचन

✍ डॉ. (श्रीमती) प्रतिभा मिश्रा

हास्य मानव जीवन का प्राकृत धर्म है। समस्त वैभवों से सम्पन्न मानव जीवन हास्य के अभाव में लक्षण विहीन नानाविधि व्यजंन की भाँति फीका एवं नीरस है। जीवन के आस्वादन हेतु मर्यादित हास्य अपरिहार्य है, जो व्यक्ति अपने जीवन में कभी नही हँसा उसके विषय में "वृथा ।" तस्य नरस्य जीवनम्" ही सत्य और संगत है । हास्य रस की हँसी मे एक मानसिक आधार होता है । इसके सार रूप आनन्द से व्याप्त होता है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और समाज का निर्माण विभिन्न रूचि वाले मनुष्यों से मिलकर होता है, अतः दोनों में अन्योन्याश्रय संबंध है। हास–विनोद शीलता एक सामाजिक गुण है और उसका प्रचार व्यक्तियों के एक दूसरे से संपर्क के कारण वृद्धि पाता है। सामाजिक हास विनोद से समष्टिगत सद्‌गुण एवं हितकर दृष्टि विस्तृत होती है। व्यंग्य के आघात से सामाजिक विकृतियाँ नष्ट होती हैं। इससे अधिक व्यक्ति के लिए उत्साहवर्धक अन्य कोई विद्या हो ही नहीं सकती।

पूर्व तथा पश्चिम दोनों ही क्षेत्रों के काव्य शास्त्रियों ने अपने ग्रन्थों में हास्य रस की विशद एवं सुन्दर विवेचना प्रस्तुत की है। रस की कल्पना सर्वप्रथम संस्कृत में हुई। वहाँ इसकी अभिव्यक्ति "रस्यते इति रसः" कहकर की गई है। आंग्ल साहित्य में रस का कोई पर्यायावाची शब्द नहीं मिलता।[1] वस्तुतः परिपुष्ट भाव का नाम ही रस है। भरत मुनि ने कहा है "विभावानुभाव संचारि संयोगाद्रस निष्पतिः" । उनके ही ग्रन्थ में इसका सर्वप्रथम नियमबद्ध उल्लेख हुआ है। आचार्य भरत मुनि 'द्रुहिण' नामक आचार्य को इस रस का अविष्कारक मानते हैं। वे कहते हैं "दृष्टयौ रसाः प्रोक्ता द्रुहिणेन महात्मना" । मन की तल्लीनता अथवा आनन्दाभूति ही रस की संज्ञा से अभिहित होता है।

हास्य रस के उद्रेक के संबंध में कहा गया है :–

विकृता कृति वाग्विषेशै रात्मनो ऽथ परस्य वा :
हासः स्यात परिपोशौ उस्य हास्यानि प्रकृति स्यत ।।[3]

अर्थात हास्य का कारण अपनी अथवा दूसरे की विचित्र आकृति, वेशभूषा, चेष्टा, शब्दावली तथा कार्यकलाप है।

✍ एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, डी. ए. वी. कालेज, कानपुर

आचार्य विश्वनाथ ने इस विषय में कहा है –"विकृताकार वाग्वेश चेष्टादेः वदेत हास्योहास स्थायिभावः श्वेतः प्रमयदेवतः"।[4] उर्पयुक्त लक्षण के अनुसार वाणी, चेष्टा तथा आकार आदि की विकृति से हास्य रस का उद्रेक होता है।

आचार्य धनंजय और आचार्य विश्वनाथ के विचारों में अधिकांश समानता होते हुए भी कुछ भिन्नता है। धनंजय वर्णित लक्षण में स्पष्ट उल्लेख है कि वेशभूषा, चेष्टा, शब्दावली तथा कार्यकलाप में विचित्रता अपनी भी हो सकती है तथा औरों की भी, जबकि आचार्य विश्वनाथ ने साहित्य दर्पण में वाणी आदि के विकार को ही हास्य रस का उद्रेक माना है ।

"रतिर्मनोनुकूले ङर्थे मनसः प्रणणापितम्
वागादि वैकृतष्चेतो विकासो हास्य इश्यते"[5]

हास्य रस के संचारी भाव

हास्य रस के संचारी भावों का उल्लेख करते हुए साहित्य दर्पण में आचार्य विश्वनाथ कहते हैं – "निद्रालस्या वहित्याधास्तु न्याभि चारिणः"[6]

अर्थात निन्दा, आलस्य एवं अवहित्था आदि हास्य रस के संचारी भाव है ।

हास्य रस के संचारियों का वर्गीकरण

हास्यरस के संचारियों को निम्न प्रकार से वर्गीकृत कर सकते हैं।

1. स्नेहन	2. उपहासक	3. विभाव संक्रामिति
4. परिहासक	5. रेचक	6. उहामूलक[7]

हास्य रस के भेद

हास्य रस के भेदों के संबंध में आचार्यों का मतैक्य नहीं है। आचार्य विश्वनाथ हास्य रस के छः भेद प्रतिपादित करते हैं।

1. स्मित	2. हसित	3. विहसित
4. उपहसित	5. अपहसित	6. अतिहसित[8]

किन्तु पंडित जगन्नाथ का मत उर्पयुक्त से भिन्न है । उनके अनुसार हास्य दो प्रकार का होता है।

1. आत्मस्थ 2. परस्थ

डा0 रामकुमार वर्मा ने दोनों प्रकार के भेदों का सम्मिश्रण करते हुए हास्य के भेद केवल तीन माने है । (1) उत्तम (2) मध्यम (3) अधम[9]

हास्य रस का रस–राजत्व

संस्कृत एवं हिन्दी साहित्य के आचार्यों ने अपने लक्षण ग्रन्थों में श्रृंगार रस को 'रसराज' की उपाधि से विभूषित किया है। महाकवि देव श्रृंगार रस को 'रसराज' कहते हुए लिखते हैं।

"निर्मल शुद्धसिंगार रस, देव अकास अनन्त
उड़ि उड़ि खग ज्यो और रस, न विशत पावस अन्त"[10]

संस्कृत साहित्य के महान नाटककार भवभूति ने "एको रसः करूण स्व" कहकर करूण रस को श्रेष्ठ बताकर उसको रसराज कहा है ।

आचार्य विश्वनाथ ने अद्‌भुत रस को शीर्ष स्थान दिया है ।

हास्य रस को रस–राज की उपाधि से सर्वप्रथम श्री नरसिंह चिन्तामणि केलकर ने विभूषित किया है ।[11] तत्पश्चात् 1915–16 में नागिरी प्रचारिणी पत्रिका में 'हास्य रस' शीर्षक से प्रकाशित एक लेख में इस रस के रस–राजत्व को सिद्ध किया गया है ।

विचारपूर्वक अवलोकन से ज्ञात होता है कि हास्य रस का मूलाधार असम्बद्धता है। हरिऔध जी हास्य रस को व्यापक नहीं मानते ।[12] यद्यपि विभिन्न विद्वानों के अभिमत भिन्न–भिन्न हैं।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि हास्य रस को रस–राज भले ही न माना जाये किन्तु इस तथ्य को स्वीकारने में किसी को सन्देह नहीं होना चाहिए कि इस रस का महत्व किसी अन्य रस से कम नहीं है। यदि किसी रस को रस–राज मानना ही विद्वानों का अभीष्ट है तो हास्य रस भी अन्य रसों के साथ निःसन्देह इस पद का अधिकारी है।

संदर्भ

1. भरतमुनि "नाट्यशास्त्र"
2. वही
3. धनंजय दशरूपक-1" पृ० सं० 75
4. आचार्य विश्वनाथ "साहित्य दर्पण" परिच्छेद 3 पृ० 214
5. आचार्य विश्वनाथ "साहित्य दर्पण"
6. " पृ० 158
7. जगदीश पाण्डेय कृत हास्य रस के सिद्धान्त और मानस में हास्य, पृष्ठ 64
8. साहित्य दर्पण, शालिग्राम जी की टीका, पृ० 158
9. काव्य रस में हास्य तत्व, आलोचना, जनवरी 1955, पृ० 64
10. भवभूति कृत उत्तर रामचरित
11. श्री नरसिंह चिन्तामणि केलकर कृत सुभाषित, आणि विनाद
12. श्री हरिऔध कृत [illegible] कलश, पृ० 103

डॉ. सुरेन्द्र विक्रम के बाल काव्य का वर्गीकरण

✍ कु. स्वाती शर्मा

डॉ. सुरेन्द्र विक्रम के बाल काव्य का वर्गीकरण करने से पूर्व बालगीत और उसकी प्रकृति पर चर्चा आवश्यक है। "बालगीत सरस सरल और प्रवाहमयी भाषा में आबद्ध वे पद्य रचनाएँ हैं, जो बाल मनोभावनाओं, बाल रुचियों एवं बाल स्वभाव के अनुकूल बाल परिवेश का रोचक एवं यथार्थ रूप प्रस्तुत कर सकें। इस दृष्टि से देखा जाये तो बालगीतों की रचना करते समय बालक की रुचियों, उसका स्वभाव, उसके आस–पास के परिवेश के साथ–साथ बाल मनोविज्ञान का सम्यक ज्ञान भी अत्यन्त आवश्यक होता है। इन सभी विशेषताओं से युक्त बालगीतों की रचना करना कोई सरल कार्य नहीं है। एक विचारक के मतानुसार "सफल बाल गीतकार वही हो सकता है जिसमें बच्चों की दृष्टि से चिन्तन करने की क्षमता निहित हो।' अतः कहा जाता है कि वे सामीप्य में बच्चा बनकर साहित्य साधना करते हैं।

बालगीतों की बच्चों के लिए उपयोगिता निम्न शब्दों में प्रकट होती है। "बच्चों के लिए बालगीत मनोरंजन का साधन तो है ही, परन्तु उपयोगी भी है। बालगीतों में शिक्षा के माध्यम से बालकों में अनेक गुण विकसित किए जा सकते हैं।" वही बालगीत सफल होते हैं, जो बच्चों का मनोरंजन करने के साथ–साथ ही उनमें सद्‌गुणों का भी विकास करें। बालगीतों के विषय में डॉ. कुसुम डोभाल के विचार उल्लेखनीय हैं – "बालगीत काव्य का वह पक्ष है, जिसमें लय, राग व छंद की प्रधानता रहती है। जिसमें स्वरों का प्रवाह और संगीतबद्धता बच्चों के हृदय में आनन्द का संचार करती है तथा वस्तुतत्व की अपेक्षा रूप तत्व का सौन्दर्य अधिक होता है। बालगीतों की भाषा सरल, सरलतम आधुनिक शब्द योजना तथा पुनरुक्ति वाली होती है। गेय तत्व बालगीतों की आत्मा तथा संगीत बद्धता प्राण होती है।"

इन उपर्युक्त परिभाषाओं का अध्ययन करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि बालगीत मनोरंजक होने के साथ–साथ शिक्षाप्रद भी होने चाहिए। बालगीत बच्चों की रुचियों, स्वभाव, मनोभाव के साथ–साथ उनके परिवेश का भी यथार्थ चित्रण प्रस्तुत कर सकें।

बालकों की बाल सुलभ जिज्ञासाएँ, स्वभाव, रुचियाँ व कल्पनाशीलता भले ही आयु, स्थान और वातावरण के कारण कुछ परिवर्तित हो जाती हो, लेकिन उनकी मूल प्रवृत्ति कभी नहीं बदलती। वे आज भी वैसे ही हैं, जैसे हजारों वर्ष पूर्व हुआ करते थे। कुछ न कुछ गुनगुनाते रहना उनकी आदत होती है। छोटे बच्चों को सीमित शब्दों वाली तुकबन्दियाँ अच्छी लगती हैं, तो कुछ बड़े होने पर कल्पनाशक्ति और शब्द भण्डार को बढ़ाने वाले गीत अच्छे लगते हैं। जैसे–जैसे उनकी आयु बढ़ती है, उनकी रुचियाँ, परिवेश और आवश्यकताओं के अनुरूप बदलने लगती हैं। बचपन के खेल–खिलौनों तथा पशु–पक्षियों से भरा संसार

✍ इन्दिरा कालोनी, कटघर, मुरादाबाद, (उ. प्र.)

पीछे छूट जाता है और स्कूल, किताबों, शिक्षकों व भिन्न–भिन्न स्वभाव वाले मित्रों से सामना होता है। सामाजिक व्यवस्थाओं, परिस्थितियों, राष्ट्र आदि से परिचय होता है। बाल काव्य पर भी इन परिवर्तनों का प्रभाव पड़ता है और अच्छा साहित्यकार भी वही है, जो इन परिवर्तनों को पकड़कर चलता है। इसी आधार पर बाल साहित्य पर शोध करने वाली डॉ0 राजकिरन दीक्षित ने बालगीतों को तीन रूपों में बाँटा है। वे हैं – आयु, विधा और विषय।

(क) आयु के अनुरूप

आयु के अनुरूप बालकाव्य के तीन भेद हैं – शिशुगीत, बालगीत तथा किशोरगीत। शिशुगीत बहुत छोटे बच्चों के लिए गेय एवं तुकबन्दी पर आधारित होते हैं। बालगीत शैशवावस्था के बाद की आयुवर्ग के बच्चों की रुचि पर आधारित होते हैं। बाल्यावस्था तथा युवावस्था के मध्य की आयुवर्ग के मध्य लिखी गयी वे कविताएँ जिनका प्रमुख उद्देश्य नैतिक गुणों का विकास करना होता है, किशोर गीत कहलाते हैं।

(ख) विधा के अनुरूप

विधा के अनुरूप बाल काव्य गेय, वर्णनात्मक, छन्दबद्ध या मुक्त तथा तुकबन्दी पर आधारित होते हैं।

(ग) विषय के अनुरूप

विषय के अनुरूप बालकाव्य के अन्तर्गत खेल, पशु–पक्षी, प्राकृति, त्योहार, सूरज, चाँद, सितारे, आकाश, विज्ञान के आविष्कार, राष्ट्रीय पर्वों आदि के गीत तथा आधुनिकता बोध के गीत आते हैं।

इस वर्गीकरण की दृष्टि से डॉ0 विक्रम का बालकाव्य पठनीय, मननीय एवं श्रेष्ठ एवं बालोपयोगी है। विधा के अनुरूप सम्पूर्ण काव्य साहित्य गेय, लयात्मक एवं तुकबन्दी पर आधारित है, जिसकी विस्तृत चर्चा शिल्प शौष्ठव के अन्तर्गत की जायेगी। यहाँ आयु तथा विषय के आधार पर डॉ0 विक्रम के बालकाव्य साहित्य का विस्तृत अध्ययन निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत करना अधिक समीचीन होगा :–

1. शिशु सम्बन्धी
2. किशोर सम्बन्धी
3. खेल सम्बन्धी
4. त्योहार या उत्सव सम्बन्धी
5. प्रकृति सम्बन्धी
6. ऋतु सम्बन्धी

7. पशु–पक्षी सम्बन्धी
8. आधुनिकताबोध सम्बन्धी
9. राष्ट्र सम्बन्धी।

1. शिशु सम्बन्धी

दो से पाँच वर्ष तक की आयु के बालक शिशु कहलाते हैं और उनके लिए लिखा गया काव्य शिशु काव्य कहलाता है। इसकी मुख्य विशेषता तुकबन्दी तथा अन्त्यानुप्रसाद है, जो पाँच वर्ष तक की अवस्था के भाषा विकास के अनुरूप होता है।

शिशुगीत बालपन का वह अंकुर है, जिसको सजा–सँवारकर शिशु के कोमल मन रूपी धरती में रोपा जाता है। पराग के भूतपूर्व संपादक आनंद प्रकाश जैन का मत है कि – "शिशुगीतों की भाषा कोई भी हो, उनकी पहली शर्त यही है कि उनमें कुछ ऐसा पटपटापन हो जो बरबस ही गुदगुदाए, खास तौर पर बच्चों के सरल बोध को, और उन बड़ों को भी, जिनकी प्रवृत्ति बच्चों के समान हो।"

डॉ0 विक्रम ने ऐसे ही अनेक उत्कृष्ट शिशु गीतों की रचना की है। सुबह सवेरे का एक उदाहरण दृष्टव्य है :–

"बड़े सवेरे चिड़ियों ने,
आवाज लगाई चीं–चीं–चीं।
बड़े सवेरे दूर सड़क पर,
मोटर बोली पीं–पीं–पीं।
बड़े सवेरे मुर्गे ने,
आवाज लगाई कुकड़ूँ–कूँ।
बड़े सवेरे कौआ बोला –
'संग तुम्हारे मैं भी हूँ।"

2. किशोर सम्बन्धी

विद्वानों ने किशोरावस्था को ' तूफान की अवस्था' कहा है। संवेगों और भावनाओं की अधिकता इस आयु वर्ग के बच्चों को नाजुक मोड़ पर ला खड़ा करती है। इसी अवस्था में उन्हें अच्छा–बुरा, ऊँच–नीच की पहचान करायी जा सकती है। "इस अवस्था में बालक जिन चीजों को देखता है या व्यवहार में लाता है उनका रहस्य जानना चाहता है। वह अपने आपसे और अपनी योजनाओं से ही संतुष्ट नहीं होता वरन् दूसरों के जीवन के बारे में जानने के लिए उत्सुक रहता है, और उनके सुख–दुःख, भय, खोज आविष्कारों को जानने का प्रयत्न करता है।"

किशोरों के इस मनोविज्ञान का अध्ययन यह सोचने पर विवश कर देता है कि आखिर किस प्रकार का साहित्य रचा जाये जो उनकी भावनाओं के तूफान को नियंत्रित कर मानसिक क्षुधा को तृप्त कर सके। इसीलिए किशोरों के लिए साहित्य वही लिख सकता है जिसे उनके मनोविज्ञान की अच्छी, पकड़ हो। डॉ० विक्रम इस मनोविज्ञान के सिद्धहस्त कवि हैं। उन्होंने 'खेल–खेल में' यह कर दिखाया है :–

खेल–खेल में आगे–आगे बढ़ना सीखो जी।
एक–एक उन्नति की सीढ़ी चढ़ना सीखोजी।।
खेल–स्वास्थ्य एका मूलमंत्र।
है, इसकी महिमा न्यारी।
खेल बने साद्दन तो महके
जीवन की क्यारी–क्यारी।।
नई दिशा में नये रास्ते गढ़ना सीखो जी।
खेल–खेल में आगे–आगे बढ़ना सीखो जी।।
खेल प्रेम की नदी बहाएं,
जिसमें चलो लगाएँ गोता।
नही मिलेगा उसको कुछ भी,
जो हरदम रहता सोता।।
पुस्तक है मैदान, शान से पढ़ना सीखो जी।
खेल–खेल में आगे–आगे बढ़ना सीखो जी।।
खेल भावना से बनता है
एक भरा–पूरा परिवार।
जिसमें कोई बड़ा न छोटा,
सपने सब होते साकार।।
सपनों का एक चित्र बनाकर मढ़ना सीखो जी।
खेल–खेल में आगे–आगे बढ़ना सीखो जी।।'

डॉ० विक्रम की कविताओं का गहन गम्भीर अध्ययन यह दिखाता है कि उन्होंने भारत की प्राचीन परम्परा, गौरवशाली इतिहास, संस्कृति, त्यौहारों आदि की जानकरी देने के साथ–साथ आधुनिक युग के ज्ञान–विज्ञान की पहचान भी जिस कुशलता से करायी है, वह किशोरों के लिए प्रेरणास्पद है। इनकी कविताओं में दिखने वाला प्राचीन एवं नवीन का संयोग बेजोड़ है।

3. खेल सम्बन्धी

खेल बाल जीवन के अभिन्न अंग हैं। बच्चे के सामने यदि खाने और खेलने में चुनाव करने को

कहा जाये तो निःसंदेह वह खेल को प्राथमिकता देगा। खेल उनके शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य के लिए लाभदायक भी हैं। चाहे शहर हो या गाँव, पहाड़ हो या मैदान, गली, पार्क, घर या स्कूल बच्चे हर जगह खेलते मिलेंगे। उन पर किसी मौसम का भी बंधन नहीं रहता। वे मौसम के अनुरूप अपने खेल बदल लेते हैं, लेकिन उनका खेलना तय है, क्योंकि यह तो उनकी स्वाभाविक प्रक्रिया है, इस दौरान यदि उन्हें खेल में गाने को भी मिल जाये या कहें गाने के माध्यम से खेल हो तो मज़ा और भी बढ़ जाता है। "भरा समन्दर गोपी चन्दर, बोल मेरी मछली कितना पानी" और दादा/नाना, चाचा/मामा का घोड़ा बनाकर 'चल मेरे घोड़े टिक–टिक–टिक' गाना खेल में आनन्द को कितना अधिक बढ़ाता रहा है यह सर्वविदित है। डॉ0 विक्रम का कवि हृदय इससे भली–भाँति परिचित है। वे खेलने का आनन्द लेने के साथ ही खेल–खेल में ही बच्चों को ऊँच–नीच का भेद मिटाने, मुश्किलों से लड़ने, गौरव रूपी पर्वत पर चढ़ने आदि की शिक्षा भी देते हैं :–

"आओ साथी मित्र बनायें।
खेल–खेल में।
धरती से सोना उपजाएँ,
ऊँच–नींच का भेद मिटाएँ,
प्यार बड़े–बूढ़ों का पायें,
खेल–खेल में।
आगे–आगे बढ़ते जाएँ,
गौरवगिरि पर चढ़ते जाएँ,
हर मुश्किल से लड़ते जाएं,
खेल–खेल में।
सुख–दुःख दोनों गले लगायें,
सबकी आँखों में छा जाएँ।
अपनी दुनिया नई बनायें।.
खेल–खेल में।

4. त्यौहार सम्बन्धी

भारत गाँवों के साथ ही त्यौहारों वाला देश भी है। यहाँ हर दिन एक त्यौहार मनाया जाता है। बच्चों का त्योहारों से लगाव कुछ ज्यादा ही होता है। त्योहारों पर मिलने वाले नए कपड़े और मिठाइयाँ उनके उत्साह को दोगुना कर देती हैं। कवि ने त्योहारों और उन पर बच्चों द्वारा होने वाली गतिविधियों का बड़ा गहन अध्ययन किया है। कवि की एक रचना 'दीवाली का गीत' की ये पँक्तियां उल्लेखनीय हैं :–

दीपों की बारात दिवाली / मुस्कानों की बात दिवाली।
खील, बताशे, लड्डू–पेड़े / खुशियों की सौगात दिवाली।''

5. प्रकृति सम्बन्धी

प्रकृति से बालक का सहज सम्बंध है। सूर्य, चन्द्रमा, तारे, बादल, नदी, पर्वत, झरने, पेड़–पौधे, फल–फूल आदि प्रकृति के अनेकों रूपों से वे न केवल अपना मनोरंजन करते हैं, अपितु इनसे शिक्षा भी प्राप्त करते हैं। कवि डॉ0 विक्रम ने अपनी कविता से प्रकृति और बच्चों के मध्य के सम्बन्ध को और अधिक गरिमामयी बना दिया है। फूलों से मुस्कराना, सूरज से सारे संसार को राह दिखाना, चन्दा से शीतलता, धरती से धैर्य, आकाश से ऊँचाई तथा सागर से गहराई की सीख कवि ने निम्नलिखित पँक्तियों के माध्यम से दी है –

सूरज ने अपने प्रकाश से,
जग को राह दिखाया।
चन्दा ने शीतलता दे,
आलस को दूर भगाया।
धरती माँ ने अधिक भार को,
वहन करो समझाया।
ऊँचे उठो मुझे छू लो,
नभ मण्डल ने सिखलाया।

6. ऋतु सम्बंधी

ऋतुओं की दृष्टि से मौसम को मुख्यतया तीन भागों जाड़ा, गर्मी और बरसात में बाँटा गया है। विशेषकर बच्चों के लिए प्रत्येक ऋतु का अपना अलग–अलग महत्त्व है। वे हर मौसम में अपने आनन्द की जगह खोज ही लेते हैं। डॉ0 विक्रम की कविताओं में भी इन सभी ऋतुओं का स्वाभाविक वर्णन है। गर्मी के दिन किस प्रकार प्राणियों और जीव–जन्तुओं को कुम्हला देते हैं वर्षा आकर उस कुम्हलाए हुए जीवन को कैसे हरा–भरा और सुहावना बना देती है तथा शरद ऋतु उस हरे–भरे मनोहारी रूप को किस प्रकार चिरजीवी बना देती है, आदि के गहन–गम्भीर वर्णन आपकी रचनाओं में प्रचुर मात्रा में मिलते हैं।

डॉ0 विक्रम की कविताओं में गर्मी कभी अपने रौद्र तथा कभी सौम्य रूप में दिखाई पड़ती है। ग्रीष्म ऋतु में प्रकृति में क्या–क्या परिवर्तन होने लगते हैं, उन परिवर्तनों की एक झलक दिखलाती हुई निम्नलिखित कविता ग्रीष्म ऋतु के सौम्य रूप को प्रस्तुत करती है : –

"आयी गरमी, आयी गरमी,
सभी ओर है छाई गरमी।
फैली पूरे आसमान में,
लम्बी एक चटाई गरमी।
खरबूजा, ककड़ी और खीरा,
रस गन्ने का औ' जलजीरा।
कुल्फी, बरफ, मलाई लेकर,
छुक–छुक करती आयी गरमी।"

7. पशु–पक्षी सम्बन्धी

पशु–पक्षी सदैव से बच्चों के आकर्षक का केन्द्र रहे हैं। उनका रंग–रूप, आकार–प्रकार, हिलना–डुलना, चलना–फिरना, हाव–भाव और आवाज आदि कार्य व्यापार सभी कुछ बच्चों को आश्चर्य चकित करने वाले होते हैं। बच्चे उसी में अपना मनोरंजन भी तलाश लेते हैं। पशु–पक्षियों के विषय में नित नयी कल्पनाएँ करने में उन्हें आनंद आता है। वे उनके बारे में अधिक से अधिक जानना चाहते हैं, उनकी बोलियों एवं हाव–भाव की नकल करते हैं। इसीलिए बाल साहित्यकारों ने भी बालकों के इसी मनोविज्ञान के अनुरूप उनके लिए मनोरंजक एवं सोद्देश्यपूर्ण रचनाओं में पशु–पक्षियों को ही प्रमुख आधार बनाया है। डॉ0 विक्रम के बाल साहित्य में भी ऐसे उदाहरण भरे पड़े हैं। कवि ने जहाँ एक ओर कुत्ता बिल्ली, बन्दर, हाथी, खरगोश, चूहा, कोयल, मोर, गौरैया जैसे सर्वसुलभ पशु–पक्षियों को अपने काव्य में स्थान दिया है, वहीं इस कोटि से अलग उल्लू, छिपकली और भौंरे आदि को भी उतने ही सुन्दर रूप में चित्रित किया है।

चूहा और बिल्ली बच्चों के सबसे करीबी हैं। बिल्ली का प्रिय भोजन दूध है और उसे उससे भी अधिक प्रिय हैं बच्चे बिल्ली के इस कृत्य को अपने घर में बैठे–बैठे ही देखा करते हैं। उनके लिए यह बड़ा रोमांच का विषय है –

"दूध जहाँ पा जाती बिल्ली,
दबे पाँव आ जाती बिल्ली,
हर कोने में खोज–खोज कर
सब चूहे खा जाती बिल्ली।"

कवि पशु–पक्षिओं के स्वभाव से भली–भाँति परिचित है इसीलिए प्रत्येक पशु–पक्षी के स्वभाव के ही अनुसार ही उसने खेलों का चयन किया है। यही नहीं डॉ0 विक्रम की कविताओं में सभी प्रकार के पशु–पक्षियों को स्थान मिला है तथा उसके चरित्रों के साथ न्याय भी हुआ है।

8. राष्ट्र सम्बन्धी

प्रत्येक मनुष्य के लिए राष्ट्र प्रेम सर्वोपरि होता है। बालक राष्ट्र के भविष्य होते हैं इसलिए उनमें राष्ट्र प्रेम की भावना जाग्रत करना आवश्यक है। कवि डॉ0 विक्रम ने अपनी बाल कविताओं में इस उत्तरदायित्व को भली–भाँति निभाया है। उनकी रचनाओं में जहाँ एक ओर भाई–चारे का संदेश मिलता है वही दूसरी ओर देश की सभ्यता एवं संस्कृति ध्वनित होती है। हिमालय से अटल, अचल, सत्य के प्रतीक, पावन और प्यारे भारतवर्ष का गुणगान करते हुए कवि कहता है –

"है दुनिया में सबसे न्यारा,
प्यारा भारत, प्यारा भारत
नहीं किसी से झुकने वाला,
नहीं सत्य से डिगने वाला।
प्यारा भारत, प्यारा भारत।"

9. आधुनिकता बोध सम्बन्धी

डॉ0 विक्रम के साहित्य में बाल जीवन की इस आधुनिकताबोध का परिदृश्य नई चेतना लेकर आया है। उनके बालगीत, बाल जीवन के बदलते परिवेश की धुरी हैं। आज संचार माध्यमों, कम्प्यूटर, इन्टरनेट, टी0वी0, रेडियो आदि ने विशाल सामग्री प्रयोग हेतु उपलब्ध करा दी है। बड़ों के लिए यह सामग्री प्रयोग की वस्तु है, लेकिन बच्चों के लिए ये जादुई चीजें हैं, जिसके रहस्य को वह तुरन्त जान लेना चाहता है। वह उनकी कार्यशैली, उनके लाभ व हानियों से परिचित होना चाहता है। डॉ0 विक्रम ने बाल मन पर आधुनिकताबोध की चुनौती को स्वीकार कर बाल साहित्य में नया प्रयोग किया है। डॉ0 विक्रम का 'इक्कीसवीं सदी की ओर' कविता संग्रह इसी चुनौती का परिणाम है। इस संग्रह की पहली कविता में ही रोबोट द्वारा कक्षा में पढ़ाये जाने की अनोखी कल्पना प्रस्तुत की गई है। कंप्यूटर के प्रयोग से भारी बस्ते से छुट्टी मिल जाने की बात बदलते परिवेश की कहानी है। कंप्यूटर उसके लिए किसी जादूगर मित्र से कम नहीं। आया नया जमाना शीर्षक कविता में कवि ने भूत–भविष्य और वर्तमान का समन्वय किया है। आज का बच्चा राजा–रानी की कहानियों से पृथक वैज्ञानिक प्रगति कहानियों में अधिक रुचि लेता है।

आधुनिक युग में व्यक्ति की महत्त्वाकांक्षाएं दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं। माता–पिता अपने बच्चों को भी अपनी महत्त्वाकाँक्षाओं की भेंट चढ़ा देते हैं। इस सब में बच्चे की इच्छाएं, अभिलाषाएं दम तोड़ रही हैं। बच्चा क्या करें, उसे यह समझना कठिन होने लगता है। बच्चे के मन की इसी उलझन के गवाह डॉ0 विक्रम ने इसे अभिव्यक्ति देते हुए लिखा है :–

"पापा कहते बनो डॉक्टर / माँ कहती इंजीनियर।
भैया कहते इससे अच्छा / सीखो तुम कंप्यूटर।।
"चाचा कहते बनो प्रोफेसर / चाची कहती अफसर।
दीदी कहती आगे चलकर / बनना तुम कलेक्टर।"

x x x x x

सबकी अलग–अलग अभिलाषा / सबका अपना नाता।
लेकिन मेरे मन की उलझन / कोई समझ न पाता।'

वस्तुतः डॉ. विक्रम ने अपने बाल साहित्य में आधुनिक समाज की नब्ज़ पकड़कर, समाज के प्रत्येक क्षेत्र के सकारात्मक व नकारात्मक पक्षों का सफल चित्रण प्रस्तुत किया है। उनके बालगीत जहाँ एक ओर बालकों का मनोरंजन करते हैं, वहीं उन्हें आधुनिकता बोध से परिचित कराते हुए उनमें सामाजिकता की भावना का बोध कराते हैं।

हनुमन्नाटक का नाट्यशिल्प – कवि परिचय

✍ डॉ. शालिनी मिश्रा ✍ डॉ. आशारानी राय

कविवर दामोदर मिश्र का पूर्ण परिचय नहीं प्राप्त हो रहा है। डा. विल्सन आदि कतिपय विद्वान इन्हें अब्द प्रबोध या भोजदेव संग्रह के आधार पर वाणी भूषण के रचयिता मैथिल दामोदर से अभिन्न मानते हुए भोज के समकालीन ग्यारहवीं शताब्दी का स्वीकार करते हैं।

आचार्य आनन्दवर्धन 850 ई0 ने अपने ध्वन्यालोक में हनुमन्नाटक को उद्धृत किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि इसकी रचना 850 ई0 से पूर्व ही हो चुकी थी। इस नाटक के प्राचीन और नवीन दो संस्करण प्राप्त होते हैं। प्राचीन के रचयिता कविवर दामोदर मिश्र और नवीन के रचयिता कविवर मधुसूदन दास मिश्र माने जाते हैं। प्राचीन संस्करण में चौदह और नवीन में नौ अंक हैं। ऐसा भी प्रसिद्ध है कि एक हनुमन्नाटक की रचना हनुमान जी ने की थी। परन्तु वह हनुमान के द्वारा विरचित असली नाटक इस समय उपलब्ध नहीं है। इस नाटक में पद्य का प्राचुर्य है और गद्य की न्यूनता है। इसमें पात्रों की संख्या अधिक है। कहीं–कहीं प्राचीन कवियों के श्लोक भी उपलब्ध हैं।

ऐसा कहा जाता है कि इस नाटक को पवनकुमार हनुमान ने शिलाओं पर लिखा था परन्तु जब महर्षि वाल्मीकि ने रामायण की रचना की तो उन्होंने यह विचारकर कि अमृत के समक्ष मेरी रचना में कौन रूचि लेगा। अतएव हनुमान जी से प्रार्थना करके इस नाटक को समुद्र में स्थापित करा दिया। विद्वानों से इस विषय में जानकारी प्राप्त कर सुबुद्ध राजा भोज ने इसे समुद्र से निकलवाया। उस समय जो कुछ भी मिल सका उसको उनकी सभा के कवि दामोदर मिश्र ने संगति–पूर्वक संगृहीत किया –

रचितमनिलपुत्रेणाथ बाल्मीकिनाब्धो
निहितममृतबुद्धया प्राङ्महानाटकं यत्।
सुमतिनृपतिभोजेनोद्धृतं तत्क्रमेण
ग्रथितमवतु विश्वं मिश्रदामोदरेण।।

कविवर दामोदर मिश्र के विषय में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं है। उनके विषय में केवल यही स्पष्ट होता है कि वे सुबुद्ध राजा भोज की सभा के प्रमुख विद्वान एवं कवि थे। उन्होंने ही इस नाटक को संगृहीत कर पल्लवन किया था।

✍ प्रवक्ता, संस्कृत विभाग, दयानन्द गर्ल्स कॉलेज, कानपुर
✍ प्राचार्या, कानपुर विद्या मन्दिर महिला महाविद्यालय, कानपुर

कविवर दामोदर मिश्र की प्रतिभा एवं वैदुष्य

कविवर दामोदर मिश्र विलक्षण प्रतिभा के धनी विद्वान थे। हनुमन्नाटक के अनुशीलन से उनकी प्रतिभा एवं वैदुष्य दोनों ही प्रकट होते हैं। नाटक के मंगलाचरण में ही उनकी प्रतिभा एवं वैदुष्य प्रकाशित हो रहे हैं –

पातु श्रीस्तनपत्रमंगमकरीमृद्रांकितोरः स्थलो
देवः सर्वजगत्पतिर्मधुवक्षवक्राब्जचन्द्रोदयः
क्रीडाद्रोडतनोर्नवेन्दुविशदे दष्ट्रांकुरे यस्य भू–
र्भातिरूप प्रलयाविधपल्लवलतलोत्खातैकमुस्ताकृति :।।

इस मंगलाचरण में कविवर ने जो वर्णन किया है और जिस प्रकार की भाषा का प्रयोग किया है, उससे उसकी प्रतिभा एवं वैदुष्य प्रकट होते हैं। कविवर दामोदर उदात्त एवं उदार हृदय के समन्वयवादी कविरत्न हैं। उनका अभिमत है कि "सर्वदेवनमस्कारः केशव प्रतिगच्छति "उन्होनें अपने इस भाव को निम्नलिखित पद्य में व्यक्त कर दिया है –

यं शैवा : समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाण पटवः कर्तेति नैयायिकाः।
अर्हन्नित्यथ जैन शासनरताः कर्मेति मीमांसकाः
सोऽयं वो विद्धातु वांछितफलं त्रैलोक्यनाथो हरि :।।

अर्थात जिन्हें शिवोपासक शिव समझते हैं, वेदान्ती अद्वितीय ब्रह्म मानते हैं, बौद्धमतावलम्बी बुद्ध समझते हैं, प्रत्यक्ष अनुमानादि प्रमाणों में दक्ष न्याय–शास्त्री जगत का कर्ता मानते हैं, जैनमतानुयायी अर्हत् समझते हैं और पूर्व मीमांसा वाले फलदाता कर्म मानते हैं, वे ही नाना रूपों में उपासना करने वाले, अपने भक्तों का प्रेम स्वीकार कर उनके दुःखों को दूर करने वाले त्रिलोकों के स्वामी श्रीराम आपकी अभिलाषा पूरी करें।

कविवर दामोदर मिश्र को संस्कृत भाषा के साथ ही साथ विभिन्न विद्याओं एवं शास्त्रों का भी सम्यक ज्ञान था। वे विभिन्न विधाओं के साथ ही साथ शकुन शास्त्र के भी ज्ञाता थे। उन्हें पाताल एवं दिग्विभागों का भी सम्यक ज्ञान था।

निम्नलिखित श्लोक से उनके शास्त्रीय ज्ञान का पता चलता है–

रून्धन्नष्ट विधेः श्रुतीर्मुखरयन्नष्टौ दिशत्कोऽयन्
मूर्तीरिष्ट महेश्वरस्य दलयन्नष्टौ कुलक्ष्माभृतः।

तान्यक्ष्णा बधिराणि पन्नगकुलान्यष्टौ च संपादय-
न्नुन्मीलत्ययमार्यदोर्बलदलत्कोदण्डकोलाहलः।।

कवि ने आजन्म ब्रह्मचारी परशुराम के वेश भूषा एवं सुगठित शरीर का इस प्रकार से चित्रण किया है–

चूड़ाचुम्बितकंकपत्रममितस्तूणीद्वयं पृष्ठतो
भस्मस्निग्धपवित्रलांछितमुरो धत्ते त्वचं रौरकीम्।
मौंज्या मेखलया नियन्त्रितमधो वासश्च मांजिष्ठकं
पाणो कार्मुकसाक्षसूत्रवलयं दण्डोऽपरः पैप्पलः।।
पित्रयमंशमुपवीतलक्षणं मातृकं च धनुरूर्जितं दधत्।
यः ससोम इव धर्मदीधितिः सद्विजिह्व ख चन्द्रनद्रुमः।।
आजन्म ब्रह्मचारी पृथुलभुजशिलास्तम्भविभाजमान।
ज्याधातश्रेणि संज्ञान्तरितवसुमती चक्रजैत्रप्रशस्ति।
वक्ष : पीठे धनास्त्र व्रणकिणकठिने संक्ष्णुवानः पृषत्कान्
प्राप्तो राजन्यगोष्ठीवनगजमृगयाकोतुकी जामदग्न्यः।।

कवि का संस्कृत भाषा पर असाधारण अधिकार है। वे वहां जिस प्रकार की भाषा का प्रयोग करना चाहते हैं, उसी प्रकार की भाषा प्रस्तुत हो जाती है। निम्नलिखित श्लोकों का अवलोकन करें –

प्राचीभागे सरागे तरणिविरहिणि कान्तमुद्रेसमुद्रे
निद्रालौ नीरजालौ विकसितकुमुदे निर्विकारे चकोरे।
आकाशे सावकाशे तमसि शुभमिते कोकलोके सशोके
कंदर्पेऽनल्य दर्पे वितरति किरणांछर्वरीसार्वभौमः।।
अद्यपिस्तनतुंगशैलशिखरे सीमान्तिनीनां हृदि
स्थातु वांछति मान एष धिगिति क्रोधादिवालोहितः।
उघद्दूरत प्रसारितकरः कर्षत्यसौ तत्क्षणात्
फुल्लक्कैरवकोशनिः सरदलिश्रेणी कृपाणं शशी।।

निम्नलिखित पद्यों में कवि की सूक्ष्मनिरीक्षण की सहज दृष्टि का सहज में मूल्यांकन किया जा सकता है –

सद्यः पुरीपरिसरेषु शिरीषमृदवी
मत्वा जावात्त्रिचतुराणि पदानि सीता।
गन्तव्यमस्ति कियादित्य सकृद ब्रुवाणा

रामाश्रुणः कृतवती प्रथमावतारम्।।
पथि पथिक वधूभिः सादरं पृच्छयमाना
कुवलयदलनीलः कोऽयमार्ये तवेति।
स्मितविकसितगण्डं व्रीडविभान्तनैत्रं
मुखमवनमयन्ती स्पष्टमाचष्ट सीता।।

निम्नलिखित पद्य में पंचवटी के चित्रण में कविवर की प्रतिभा एवं वैदुष्यपूर्ण भाषा का अवलोकन करें–

एषा पंचवटी रघूत्तमकुटीयत्रास्ति पंचावटी
पान्थस्यैकधरी पुरस्कृततटी कल्लोलचंचल्युटी
दिव्यामोदकुटी भवाविधशकरी भूतक्रियादुष्कृरी।।

कवि के भारतीय संस्कृति परक – विशिष्ट ज्ञान एवं श्रद्धा का अवलोकन करें–

कुण्डले नैव जानामिनैव जानामि कंकणे।
नूपुरावेव जानामिनित्यं पादाभिवन्दनात्।।

निम्नलिखित श्लोकों में कवि का व्यावहारिक एवं सत्यनीतिपरक ज्ञान प्रकाशित होता है –

विभवे भोजने दाने तिष्ठन्ति प्रियवादिनः।
विपत्तौ चागतेऽन्यत्र दृश्यन्ते खलु साधवः।।
नघश्च खलमैत्री च लक्ष्मीश्च नियतिर्दिषाम्।
सुकुमारश्च बनिता राजन्नस्थिरयौवनाः।।
पद्मिनी कान्तिमापेदे संकोच च कुमुद्वती।
न भवन्ति चिरं प्रायः सम्पदो विपदोऽपि वा।।

इस प्रकार श्री हनुमन्नाटक में कविवर दामोदर मिश्र की विलक्षण प्रतिभा एवं वैदुष्य जो प्रायः सर्वत्र देखा जा सकता है। कवि की असाधारण प्रतिभा ने विचित्र वर्णनों को प्रस्तुत कर इस नाटक को सर्वथा कौतूहल पूर्ण बना दिया है। संस्कृत साहित्य में रूपकों का स्थान, उनकी प्रकृति, प्रयोजन एवं अवधारणा तथा उनका नाटकों में महत्व का निरूपणपूर्वक हनुमन्नाटक के प्राचीन संस्करण के रचयिता कविवर दामोदर मिश्र का परिचय एवं उनकी प्रतिभा व वैदुष्य का विवेचन प्रस्तुत किया है।

संदर्भ

1.	हनुमन्नाटक	14/96
2.	हनुमन्नाटक	1/2
3.	वही	1/3
4.	हनुमन्नाटक	1/20
5.	वही	1/21,22
6.	वही	1/27
7.	हनुमन्नाटक	1/29,30,31
8.	वही	2/3
9.	वही	2/5
10.	हनुमन्नाटक	3/12,15
11.	वही	3/22
12.	वही	5/37
13.	वही	9/16,19,21

उत्तर आधुनिकता के बढ़ते कदम और हिन्दी साहित्य

✍ डॉ. उमा रानी श्रीवास्तव

आज हम वैश्वीकरण के युग में जी रहे हैं। पूरा भूमण्डल सिमटकर एक इकाई बनता जा रहा है। देश और काल की सीमायें मिट गयी हैं किन्तु यह सब कुछ भारतीय 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अवधारणा के सर्वथा विपरीत है। आज जीवन के हर क्षेत्र में यंत्रों का प्रयोग इस सीमा तक बढ़ गया है कि मनुष्य धीरे-धीरे स्वयं एक यंत्र बनता जा रहा है। व्यावसायिक वृत्ति इस सीमा तक बढ़ गयी है कि मनुष्य का मूल्य उसकी कय-शक्ति के आधार पर आंका जा रहा है। सारा विश्व एक खुला बाजार बन गया है जहां सब कुछ खरीदा जा सकता है। इन सभी परिवर्तनों ने मनुष्य को बदला है और उसके गुण-धर्म को प्रभावित किया है, उसी अनुपात में साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन हुआ है। साहित्य जो अनुभूति की गूंज है, संवेदना का भावक है, जीवन की सार्थकता है, उसका रूप पूर्णतः परिवर्तित हो चुका है। बौद्धिकता से उपजी सर्जना ने साहित्य को भटकाव की अन्धी गली में छोड़ दिया है। साहित्य को खुली चुनौती आज प्रिन्ट मीडिया के स्थान पर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने दी है। नयी संचार प्रविधि के प्रवेश से साहित्य का सारा रूप बदल गया है। केवल टेलीविजन को सामने रखकर देखा जाये तो उसके आने से साहित्य का आधार ही बदल गया है। वह दृश्य बन गया है। साहित्य पढ़ा जाता था उसके लिए शब्द ज्ञान आवश्यक था। टी0वी0 के लिए उसकी आवश्यकता भी नहीं रह गयी उसने साहित्य को तात्कालिक दृश्य और भूमण्डलीय बना दिया है। राजनीति और व्यवसाय वृत्ति के साथ मिलकर साहित्य का चेहरा बदल गया है। सामान्य अनुभूति पर साहित्य का फैशन हावी हो गया है। सर्जना ने सौन्दर्य के नये-नये मानदण्ड बना लिये हैं। कभी-कभी तो लगता है कि साहित्य विज्ञापन का ही एक हिस्सा है। हिन्दी के बहुत से लेखक अब टी0वी0 के लिए ही लिखते हैं। पुराने संवेदनशील लेखक सिनेमा के लिए लिखने में हिचकते थे, उनकी आत्मा को ठेस लगती थी किन्तु अब ऐसा कुछ नहीं है। आज हिन्दी भाषा के कई रूप प्रचलित हैं। एक स्तर फिल्मों, सीरियलों और फिल्मी गीतों की भाषा का है दूसरा समाचारों का तीसरा वार्तालापों, परिचर्चाओं और उद्घोषणाओं का और चौथा विज्ञापनों का। पूरे विज्ञापन तंत्र ने हिन्दी का प्रसार अवश्य किया है किन्तु उसकी रचनाशीलता को दूषित भी किया है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया तो एक उदाहरण है। नयी शताब्दी की पूरी परिस्थिति और उससे आविर्भूत मानवीय नियति, को जो एक नाम दिया गया है वह है- उत्तर आधुनिकता। इस उत्तर आधुनिकता ने साहित्य एवं संस्कृति को सर्वाधिक प्रदूषित किया है। प्रगति शीलता और नवाचार की आड़ में ओढ़ी गयी उत्तर आधुनिकता के कारण ही आज विभिन्न सामाजिक विद्रूपतायें पनप रही हैं।

इस उत्तर आधुनिकता की कोई समग्रतावादी या सकलतावादी परिभाषा सम्भव नहीं फिर भी यह स्पष्ट है कि उत्तर आधुनिकता पूंजी के नये खेल, शैलियों के तेज चक, फैशन के पल-पल परिवर्तित रूप,

✍ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, आर्यकन्या महाविद्यालय, हरदोई

विज्ञापन की ताकत, इलेक्ट्रानिक मीडिया की शक्ति, भूमण्डलीय स्तरीकरण एवं नव उपनिवेशवाद का नाम है।

उत्तर आधुनिक परिस्थिति और उससे उत्पन्न सांस्कृतिक संकट को लेकर हिन्दी जगत विचित्र ऊहापोह की स्थिति में है। लेखक का एक वर्ग कुछ दूसरी ही बात लेकर चिन्तित है। वह संस्कृति, कला, धर्म, सत्य, की अवधारणा, कालगति आदि जीवन और जगत के गहन तत्वों के विमर्श में विश्वास करता है। यदि उसे कभी उपभोक्ता संस्कृति की चिन्ता होती है तो वह सारा दोष पश्चिम के उस धर्मभाव के जिम्में मढ़ देता है जिसमें दिव्यता का वास सृष्टि के परे किसी सातवें आसमान में प्रतिष्ठित विश्व सृष्टा में ही माना गया है। उदाहरण के लिये रमेश चन्द्र शाह कहते हैं – यदि यह ईश्वरवास्य है तो यहां इस लोक में कुछ भी पवित्रता से, दिव्यता से बहिष्कृत नहीं है। यह सारा चराचर विश्व एक 'होलिस्टिक' विश्व है और इसलिए उसके साथ हमारा सम्बन्ध उपभोक्ता या नियन्ता का नहीं हो सकता। फिर भारत अपनी सारी श्रेष्ठ दार्शनिक मान्यताओं और उन्नीसवीं सदी के सांस्कृतिक जागरण की निष्पत्तियों के बावजूद धीरे–धीरे विश्व के आकर्षण का केन्द्र क्यों बनता जा रहा है यह समझ में नहीं आता।

हिन्दी जगत की प्रगतिशील चेतना के प्रतिनिधि और शिखर आलोचना पुरूष डॉ0 नामवर सिंह चाहे पूरी तरह निराश न हों लेकिन उन्हें इस भोगवादी संस्कृति की शक्ति का गहरा एहसास है। वह चेतावनी के स्वर में कहते हैं– 'विकास के चरम पर पहुंची यह सभ्यता जहां है उसका विरोध भी उसकी सूचना तंत्र और प्रचारतंत्र का अंग बन सकता है। आज हम उस स्थिति में हैं कि विरोध और विद्रोह को पचाकर भी यह सभ्यता कामर्शियलाइज कर सकती है और आपको भोगवादी समाज के रूप में बेच सकती है।' वे अनुभव करते है कि 'मामला बड़ा कठिन है। कवि कर्म भी कठिन हो गया है। यह जो छल है उसे तोड़ना भी कहां छल बन जायेगा इसकी पहचान भी कठिन बन गयी है।' निश्चय ही यह स्वर संघर्ष का नहीं बचाव का है।

इस संदर्भ में सबसे आशावादी स्वर डॉ0 रामविलास शर्मा का है। वह कहते हैं कि हम अपनी संस्कृति को ध्यान में रखते हुए अपने ढंग का लोकतांत्रिक समाजवाद यहां बनायेंगे। उत्तर आधुनिकता के प्रति अशोक बाजपेयी का स्वर लगभग स्वागत का है श्री बाजपेयी के साथ श्री मनोहर जोशी का भी विचार उल्लेखनीय है। उनका कहना है कि लेखक से परिस्थितियां नहीं बदलतीं। विश्व अब एक मण्डी में बदल रहा है और लेखक का अन्त हो चुका है। लेखक जो ठीक समझे लिखे और उसे बेचकर अपनी जीविका चलाये। बेहतर है कि वह कुछ नया, कुछ चटपटा, कुछ रंजक और कुछ चमत्कारी ढंग का लिखे जिसे रस लेकर पढ़ा जाये।

उत्तर आधुनिकता के विरोध में प्रकाश मनु कहते हैं – 'यकीनन उत्तर आधुनिकता हमारे देश की भयंकर गरीबी और शोषण से ध्यान हटाकर 'यथा स्थितिवाद' के पोषण का साम्राज्यवादी षडयंत्र है।'

हमारी पूरी साहित्यिक पीढ़ी आज उत्तर आधुनिकता से आक्रान्त हैं। कुछ ने तो यह मान लिया है कि समर्पण ही सुरक्षा है या फिर वह सुरक्षित हैं जिसने अपनी कामनाओं को वश में कर लिया है। सुधीश पचौरी का मानना है कि 'आज यह कहना कि अभी साहित्य बाजारी संस्कृति का अंग नहीं हुआ है और कतिपय कलाएं भी सुरक्षित हैं, बेइमानी है।'

उपर्युक्त विद्वानों के कथनों पर विचार करने पर उत्तर आधुनिकता के सम्बन्ध में चार स्वर उभरकर सामने आते हैं। पहला स्वर चिन्ता, निराशा और बचाव का है, दूसरा स्वागत का है तीसरा प्रखर विरोध का है और चौथा समर्पण का है। भारत विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं को सुरक्षित रखने वाला अनेक जातीय संस्कृतियों का देश है। इसके साहित्य एवं संस्कृति को सुरक्षित रखना हर साहित्यकार का कर्तव्य है। इसके लिए उसे सक्रिय वैचारिक कदम उठाना होगा। ऐसा कदम जो सबसे पहले भाषा के छद्म का पर्दाफाश करे क्योंकि साहित्य के क्षेत्र में सदैव भाषा के छद्म का ही प्रयोग किया जाता है। ऐसा कदम जो आचार और विचार दोनों स्तरों पर गरीब, अशिक्षित, उपेक्षित, असहाय और पीड़ित जनता के पक्ष में हो। जो छोटे–छोटे प्रलोभनों से दूर रहकर चीजों को सामान्य जनता की दृष्टि से देखे व समझे। ऐसा कदम जो विचारधारा के आधार पर समाज की संरचना का स्वप्न देखते समय मनुष्य, उसकी प्रकति, संस्कार और नैतिक बोध की उपेक्षा न करें। यह सोच युवा पीढ़ी के ऐसे रचनाकारों की है जो दृढ़, संघर्षशील, विवेकशील और आशावादी हैं। ऐसे रचनाकार यदि संगठित शक्ति के रूप में सामने आएं तो उत्तर आधुनिकता से उत्पन्न आसन्न संकट का प्रतिरोध आसान हो जायेगा और आशा की नई किरण प्रस्फुटित होती नजर आएगी।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. उत्तर आधुनिकता और संरचनावाद–पृ0 67
2. उत्तर आधुनिक साहित्य विमर्श–पृ0 13
3. जनसत्ता वार्षिक अंक,1996
4. मानदण्ड वर्ष–4 अंक 6.7
5. स्वधर्म और कालगति–पृ0 40
6. मेरे साक्षात्कार, राम विलास शर्मा
7. मानदण्ड वर्ष–4 (वागीश शुक्ल का निबन्ध)

आधुनिक हिन्दी कविता का राष्ट्र बोध

✍ डॉ. अमित शुक्ल

राष्ट्र बोध शब्द आधुनिक है जिसमें जाति सम्प्रदाय धर्म सीमित भूभाग की संकीर्णता के स्थान पर एक समग्र देश और उसके भीतर निवास करने वाली समस्त जातियों : सम्प्रदायों भिन्न–भिन्न भूखंडों और रीति रिवाजों के लोगों का संश्लिष्ट सामूहिक रूप तथा उनका जीवनानुभव उभरता है।

उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्व तक अपनी सांस्कृतिक एकता के बावजूद भारत व्यावहारिक रूप से भिन्न – भिन्न राज्यों में बँटा हुआ था। वास्तव में पूरे भारत वर्ष की एकता के अर्थ में राष्ट्रीयता और राष्ट्रबोध की भावना का विकास आधुनिक काल में हुआ। अंग्रेजों ने समूचे देश में एक शासन स्थापित किया, जिससे देश के सभी लोग एक शासक की प्रजा हुए. और उस समय पूरे देश को समान यातना का अनुभव हुआ। अपने – अपने में बंटे हुए लोगों को यह प्रतीत हुआ कि वे सब मिलकर एक हैं। वे चाहे किसी जाति या धर्म के हों, अँग्रेजों के गुलाम हैं, इसीलिए अंग्रेजी शासन के विरूद्ध मुक्ति का आंदोलन किसी एक धर्म या प्रदेश में सीमित न रह कर पूरे देश में व्याप्त हुआ, इस प्रकार जनांदोलन के इस काल में राष्ट्रीय एकता का जो स्वरूप उभरा वही हमारे वर्तमान राष्ट्रबोध की आधार भूमि है।

भारत एक विशाल देश है, जहाँ अनेक संस्कृतियों भाषाओं तथा रीति रिवाजों के लोग रहते हैं। ऊपर – ऊपर से वे एक दूसरे से अलग – अलग दिखलाई पड़ते हैं पर उनका मूल श्रोत एक ही है जो आंतरिक रूप से सब को बांधता है, वह है प्राचीन संस्कृति तथा प्राचीन आध्यात्मिक सत्य, यही सत्य भारत की राष्ट्रीयता है। कहा जाना चाहिए कि भारत में उभरने वाली राष्ट्रीयता और राष्ट्रबोध की भावना में तीन मुख्य बातें लक्षित होती हैं।

1. भारतीय पराधीनता की यातना का अहसास और उससे मुक्ति पाने का प्रयास।
2. पश्चिमी सभ्यता और अलगाव की भावना से आक्रांत होती हुई भारतीय चेतना के उद्धार के लिए तथा उसमें एकता और स्वाभिमान का बल फूंकने के लिए अपनी प्राचीन संस्कृति से समुज्ज्वल रूप का प्रस्तुतीकरण।
३. उपयोगी आधुनिक मूल्यों के आलोक में राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक व्यवस्था का पुर्नविचार तथा पुनर्गठन।

स्वतंत्रता प्राप्ति तक भारत में प्रथम दो तत्व बहुत प्रबल रहे पर स्वाधीनता प्राप्ति के बाद तीसरे तत्व की प्रधानता और सार्थकता शेष रह गई। इसका परिणाम यह हुआ कि देश की राजनीतिक व्यवस्था

✍ सहायक प्राध्यापक, टी. आर. एस. कालेज, रीवा (म. प्र.)

की प्रतिष्ठा पर और विकास का प्रयास तेज हुआ तथा नवीन राष्ट्रीय अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के कारण उत्पन्न समस्याओं से जूझने और उनका समाधान खोजने की चेष्टा प्रारंभ हो गई। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद वर्तमान समस्याओं और प्रश्नों के संदर्भ में जब हम अपने अतीत के गौरव को देखते हैं तब उससे अभिभूत होने के स्थान पर उसका पुनर्मूल्यांकन करते हैं और विचार के स्तर पर हम उससे अपने को जोड़ते या काटते हैं, उसके भीतर निहित द्वन्द्वों विसंगतियों और मानवीय संवेदनाओं की तलाश करते हैं।

हिंदी कविता का राष्ट्रबोध आधुनिक काल में विशेष रूप से भारतेंदु युग की कविताओं में प्राप्त होता है। तब से लेकर आज तक उसके स्वरूप का विकास होता रहा है। आरंभ मे छोटे – मोटे दुख दर्दो सहज भावनात्मक प्रतिक्रियाओं तथा अतीत स्मरण के रूप में लाक्षित होने वाला राष्ट्रबोध धीरे – धीरे जटिल और संश्लिष्ट होता गया था अनेक मानवीय और सार्वभौम प्रश्नों तथा संवेदनाओं से सम्पन्न होता चला गया। नयी – नयी राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों ने उसे जटिल रूप प्रदान किया। द्विवेदी काल तक हिंदी कविता में व्यक्त भारतीय राष्ट्रीयता बहुत कुछ हिंदू राष्ट्रवाद के रूप में दिखाई पड़ती है। इसका कारण हिंदू राष्ट्र बोध का प्रचार नहीं था बल्कि वह परंपरागत दृष्टि थी जो उदार भारतीय राष्ट्रवाद से मेल नहीं खाती थी।

द्विवेदी युग से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति तक हिंदी कविता में जो राष्ट्रबोध के स्वर मिलते हैं, वे कहीं खंडित रूप में तो कहीं संश्लिष्ट रूप में दिखलाई पड़ते हैं। इन कविताओं में राष्ट्रबोध का सबसे स्थूल रूप वह है जिसमें विदेशी शासन के अत्याचारों उनसे प्रसूत जन यातनाओं और जनता के मन में उठती हुई क्रोध तथा असंतोष की ललकारों का चित्रण है। रामधारी सिंह दिनकर, बालकृष्ण शर्मा नवीन, सोहन लाल द्विवेदी, माखन लाल चतुर्वेदी आदि की कृतियों में प्रमुख रूप से राष्ट्रबोध का यही स्वर सुनाई पड़ता है। इनमें वस्तु स्थिति की सही व्याख्या के स्थान पर भावुक प्रतिक्रिया है। छायावाद काल के राष्ट्रबोध में आत्मपीड़न तथा अहिंसाजन्य नरम प्रतिरोध दिखाई पड़ता है। किंतु इसके बाद वामपंथी दलों के उदय समाजवादी सिद्धांतों के प्रचार तथा विदेशी शासन के झूठे वायदों और अधिकाधिक कठोर विजय एवं जटिल होती परिस्थितियों के कारण कविता का स्वर अधिक उग्र, यथार्थवादी और लोकोन्मुख होता गया। दूसरी बात यह हुई कि प्रगतिवाद के प्रभाव से देश के भीतर बनते हुए शोषकों तथा शोषितों के अनेक वर्गों की पहचान होती गई । लड़ाई केवल अंग्रेजी सत्ता से ही नहीं है बल्कि सामंती, पूंजीवादी सभ्यता तथा उनके प्रतिनिधि देशी शोषकों से भी जो अपने – अपने ढंग से देश की जनता के लिए शोषण के अस्त्र – शस्त्र बन रहे हैं। सन् 1938 से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति तक की हिंदी कविता का राष्ट्रबोध – वैचारिक उग्रता और समाजोन्मुखता के निकट पहुंच गया था। इन कविताओं में समाज की पीड़ा और अभाव के साथ ही साथ जिन्दगी का संघर्ष, अडिग विश्वास और भविष्य की सुंदर आकांक्षा है। कविता को सोद्देश्य मानने की दृष्टि से लिखे गए इस साहित्य के लेखकों में केदारनाथ अग्रवाल, रामविलास शर्मा, नागार्जुन शिवमंगल सिंह सुमन, त्रिलोचन आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। सन् 1943 से 1947 के बीच (स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व तक) हिंदी कविता में प्रयोगवादी कवियों का वर्चस्व रहा जिन्होंने नये सत्य के शोध और प्रेषण के माध्यम से राष्ट्र के लिए नए जीवन सत्य के खोज की घोषणा की, वह सत्य मध्यवर्गीय समाज के व्यक्ति का था किंतु

ये कवि और उनकी कविता मध्य वर्गीय जन–जीवन के सामूहिक जागरण और राष्ट्र के व्यापक जन – जीवन के बोध से असम्पृक्त रहने के कारण अपनी सीमाओं को तोड़ने में सक्रिय नहीं हो सके। भारत की स्वतंत्रता के समय यानी 1947 में हिंदी में नयी कविता लिखी जा रही थी जो परम्परागत कविता से आगे नये भाव बोधों की अभिव्यक्ति के साथ ही नए मूल्यों और नये शिल्प–विधान का अन्वेषण कर रही थी। जिस समय स्वतंत्रता प्राप्ति के परिप्रेक्ष्य में सुख के असीम सपने संजोए कुछ कवि स्वागत गीत गा रहे थे, स्वतंत्रता राष्ट्र की नयी परिकल्पना को रूप और दिशा दे रहे थे, उस समय नयी कविता के प्रतिनिधि कवि वृहत्तर जीवन की आस्था को बल देने वाली लघु मानवतावादी राष्ट्रीय जीवन मूल्यों की सकारात्मक कविता लिख रहे थे।

कविता में राष्ट्रबोध देश के स्थूल सुख–दुख, उत्साह–उमंग और आक्रोश के चित्रण में ही नहीं होता बल्कि राष्ट्र की आत्मा या चेतना की पहचान से होता है । यह चेतना स्थिर न होकर गतिशील रहती है – अर्थात नई – नई परिस्थितियों में नए – नए कोण उभारती है। और पुराने कोण छोड़ती रहती हैं। हिंन्दी की नयी कविता का संबंध इसी चेतना से था, वह सतही उत्साह में दिशाहीन लेखन में न पड़कर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रीय जीवन के वृहत्तर मूल्यों से जुड़ी हुई है – इसमें अज्ञेय, मुक्तिबोध, भारतभूषण अग्रवाल, भवानी मिश्र, नरेश मेहता, धर्मवीर भारती आदि की कविताएँ सूक्ष्म राष्ट्रबोध की सशक्त भावनाओं को अभिव्यक्ति देती हैं । दोनों प्रकार के राष्ट्रबोध को कुछ उदाहरणों द्वारा समझ सकते हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हरिवंश राय बच्चन ने लिखा –

हो गया है , आज मेरे राष्ट्र का सौभाग्य स्वर्ण विहान
कर रहा है आज मैं आजाद हिदुस्तान का आवाहन

बच्चन को "आजाद" राष्ट्र की जिम्मेदारियों का भी बोध है –

"आज से आजाद रहने का तुझे है मिल गया अधिकार किन्तु उसके साथ जिम्मेदारियों का शीश पर है, भार।

किन्तु गिरिजा कुमार माथुर की कविता का राष्ट्र बोध कुछ अधिक सूक्ष्म है–

आज जीत की रात
पहरूए सावधान रहना
खुले देश के द्वार
अचल दीपक समान रहना।

उनकी दृष्टि से देश का यथार्थवादी रूप ओझल नहीं हुआ, इसीलिए वे कहते हैं –

शोषण से मृत है समाज,
कमजोर हमारा घर है,
किन्तु आ रही नई जिन्दगी
यह विश्वास अमर है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश में होने वाले परिवर्तनों की कल्पना और परिवेशगत तथा परिवेश मुक्त जीवनानुभव को हिन्दी कविता में अभिव्यक्त करने का प्रयास हुआ है। शहरी जीवन और ग्रामीण जीवन–दोनों परिवेशों को लेकर लिखने वाले कवियों ने राष्ट्र के जीवन की चेतना को स्वर देने का प्रयास किया है। देश एक, लक्ष्य एक, कर्म एक है, का नारा हिन्दी कवियों की राष्ट्रीय चेतना को ध्वनित करता है।

देश के बिखरे जीवन स्वप्नों को राष्ट्रबोध के सशक्त जीवनानुभवों में पिरोने का काम देशवासियों का है। अज्ञेय ने लिखा है–

सुनो हे, नागरिक
अभिनव सभ्य भारत के नए जनराज्य के
सुनों यह मंजूबा तुम्हारी है।
पला है आलोक चिर दिन यह तुम्हारे स्नेह से,
तुम्हारे ही रक्त से।
तुम्हीं दाता हो, तुम्ही होता, तुम्ही यजमान हो
यह तुम्हारा पर्व है।

हिन्दी कविता में यह प्रयास बराबर हुआ है कि भाषा, धर्म, भूगोल, की विभिन्नता में राष्ट्रीय एकता के बोध को बनाए रखें भवानी प्रसाद मिश्र ने लिखा है –

एक से बादल जमे हैं,
गगन भर फैले रमे हैं,
ढेर हूँ उनका, न फाँके,
जो कि किरणें मुझे–झाँके,
लग रहे हैं, वे मुझे यों
माँ कि आँगन लोव दे ज्यों।

नागार्जुन ने जनता को ही राष्ट्रबोध का प्रतीक माना है। जनता ही राष्ट्र है, राष्ट्र ही जनता है। सब कुछ उसी का है, सब कुछ वही है–

खेत हमारे भूमि हमारी,
सारा देश हमारा है,
इसीलिए हमको उसका,
चप्पा चप्पा प्यारा है।

समय के साथ राष्ट्रीय जीवन से जुड़ी हुई कल्पनाएँ और सपने बिखरने लगे। भारतीय समाज का परिवेश बड़ा जटिल और विषम है। उसकी सामाजिक स्थिति तथा उसका यथार्थ देश का यथार्थ बनकर कुण्ठा, लाचारी और निराशा का रूप ग्रहण करता गया। राष्ट्रीय जीवन के हर क्षण को विश्वास के साथ भोगना उसकी पीड़ा और निराशा को भी जीवन सत्य मानकर उससे संघर्ष करना हमारी कविता का लक्ष्य होना चाहिए था पर ऐसा नहीं हुआ। अकविता अतिकविता, अस्वीकृत कविता, विद्रोही पीढ़ी, कबीर पीढ़ी क्रुद्धपीढ़ी आदि के नाम से सन् साठ के बाद जो काविताएं हिंदी में आई वह देश के "राष्ट्रबोध" की मूर्तिभंजक रचनाएं थीं। पीड़ा और निराशा को जीवन सत्य मानकर दिन रात मरसिया पढ़ना या कुढ़ना या उपदेश देना या कुंठाग्रस्त होना – सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन के समस्त विकास के पीछे कार्य करने वाली मनुष्य की जिजीविषा प्रेम, आस्था और उल्लास को अस्वीकार करना है। हिंदी कविता ने वह अर्थवत्ता खो दी जो अभाव पक्ष के भीतर से जीवन का संकेत करती है मोहभंग से पीड़ा, तल्खी, व्यथा और कुंठा ही नहीं जन्म लेती। टूटनें की वास्तविकता और बनने के सपने भी जन्म लेते हैं जो किसी राष्ट्र को जीवित रखते हैं, अव्यवस्था, विसंगति, मूल्यहीनता विरोधाभास और आदर्शों के अकाल से कवि आंदोलित तो होता है पर अतीत को निर्ममता से काटकर नया सृजन नहीं कर सकता। संकट के समय चाहे वह चीन और पाकिस्तान का आक्रमण हो चाहे मार काट हिंसा या आंतकवाद की चुनौती हो, चाहे बाढ़ या अकाल का तांडव हो, देश का मानस राष्ट्र की चेतना एक अजीब तरह की राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रबोध की भावना से आंदोलित हो उठती है। हिंदी कविता में भी उसके स्वर सुनने को मिल जाते हैं।

सांसों में तूफान जगाओ
आखों में अंगार जलाओ
मस्तक सदा रहा है ऊँचा, धरती पर ईमान का
भारत माता देख रही है, फहरे झंडा आन का।

वर्तमान हिंदी कविता में भी यथार्थवादी दृष्टि काल्पनिक या आदर्शवादी या भावुकता मिश्रित मानववाद से संतुष्ट न होकर जीवन का मूल्य, उसका सौदर्य और प्रकाश राष्ट्र के यथार्थ में खोजती है। वर्तमान की गहन निराशा और बिखराव के बीच भी हिंदी कविता अनागत ज्योति के लिए प्रतीक्षमान है, इसीलिए राष्ट्रीय जन – जीवन को एकांत का दामन छुड़ाकर सामान्य जीवन के बीच आने की प्रेरणा देती है।

उठो इस एकांत से
दामन छुड़ाओ
चलो उतरकर नीचे की सड़क पर
यहां जीवन सिमट कर बह रहा है
साहस की दिशा में (भवानी मिश्र)

वर्तमान युग में हमारी राष्ट्रीय समस्याएं निरतंर जटिल और गहरी होती जा रही हैं। भौगोलिक और सांस्कृतिक इकाईयाँ टूटने के कगार पर हैं अब अतीत की गरिमा से अभिभूत होने के स्थान पर कविता में यथार्थ के परीक्षण का समय है। राष्ट्रबोध की कविता धारा में राष्ट्रीय अंतर्राष्ट्रीय समकालीन संदर्भों से जोड़कर विशिष्ट सांस्कृतिक बोध को जागृत करने की रचनाएं लिखी जानी चाहिए। राष्ट्रीय घटनाओं पर आधारित फुटकर रचनाएं वर्तमान राष्ट्रीय जीवन की जटिल गहराइयों में नहीं उतर सकतीं। जो कविताएं अनुभूति की आंच से ऊष्म नहीं होगीं, जिनमें गहरे जीवनानुभवों और सौंदर्य दृष्टि के स्थान पर उत्तेजना होगी या नकली बौद्धिकता होगी या मात्र राजनीतिक प्रतिबद्धता होगी वह कविता राष्ट्र बोध को सही अर्थों और संदर्भों में व्यक्त नहीं कर सकती।

संदर्भ ग्रंथ

1. वीणा, रवीन्द्रनाथ टैगोर मार्ग, इन्दौर, जनवरी 2008, पृष्ठ 10, 11
2. योजना, संसद मार्ग, नई दिल्ली, मार्च 2008, पृष्ठ 17
3. नवभारत टाइम्स समाचार पत्र, नई दिल्ली, 8 सितंबर, 2006
4. स्वयं का सर्वेक्षण एवं निष्कर्ष

समकालीन कविता में जनवादी चेतना

✍ डॉ. उर्मिला शर्मा ✍ श्रीमती पिंकी सोलंकी

समकालीन समय में लिखी जा रही आधुनिकता के भावबोध से परिपूर्ण 'समकालीन कविता' में जनवादी चेतना की तलाश एक सजगतापूर्ण कार्य है। आधुनिककाल की कविता, कम से कम साठोत्तरी कविता की संरचना अपने पूर्व की रचनाओं से क्या साम्य एवं वैषम्य रखती है, हिन्दी कविता के अध्येताओं के लिए विचारणीय प्रश्न है, कविता के क्षेत्र में उसके कथ्य एवं शिल्प की संरचना के द्रुतगामी परिवर्तनों से परिचित होना अत्यन्त आवश्यक है। ऐसा न करने पर हम इस एक ही समय में लिखी जा रही छायावादी रूमानी कविता, अहंग्रस्त और अन्दर ही अन्दर घुटती 'नई कविता', गीतों और गज़लों वाली ध्वनिलय मूलक सदाबहार कविता तथा घटना, क्रिया और गतिशील दृश्योंवाली, समय की नब्ज पर हाथ रखने वाली समकालीन कविता में अन्तर कैसे कर पायेंगे? इसके लिए हमें समकालीन कविता की भावभूमि एवं उसके रचना विधान को निकट से देखना परखना पड़ेगा। यह निर्विवाद सत्य है कि समकालीन कविता वस्तुतः जनवादी चेतना का काव्य है। यह भाव एवं शिल्प दोनों ही दृष्टियों से अपने पूर्ववर्ती काव्यधारा से प्रभाव ग्रहण करने पर भी उसमें वह सब कुछ विद्यमान है, जो जनवादी चेतना का अभिन्न अंग है।

हिन्दी साहित्य एवं समीक्षा के क्षेत्र में जनवादी साहित्य एवं कविता को लेकर विभ्रम की स्थिति बनी हुयी है। कतिपय विद्वान 'जनवाद' को प्रगतिवाद का ही एक रूप मानते हैं क्योंकि यह तो निर्विवाद सत्य है कि जनवादी कवि के लिये यह आवश्यक नहीं कि वह मार्क्सवादी हो परन्तु हर मार्क्सवादी कवि को जनवादी होना अनिवार्य है। जनवाद का सीधा सहज अर्थ है जो जनमन की पीड़ा एवं व्यथा को समझे, उनकी समस्याओं संघर्षों को वाणी प्रदान करे और उनके कल्याण के लिए वह सब कदम उठाने को तत्पर रहे जो समाज के हित में हो।

वस्तुतः 'समकालीन कविता' नई कविता के विविध आन्दोलनों में एक विशिष्ट काव्य आन्दोलन है, जिसमें प्रगतिवादियों एवं मार्क्सवादियों की समाजवादी जन के टूटने, सिसकने की करूण गाथा एवं अन्तर्विरोधों का चित्रण है परन्तु यह घुटन, निराशा एवं कुंठा को जन्म न देकर उसे विरोध एवं प्रतिकार के लिए प्रेरित करती है। समकालीन कविता की अभी निश्चित परिभाषा देना कठिन है कारण इसके स्वरूप को लेकर विद्वानों में मतभेद है परन्तु यह सत्य है कि अपने पूर्ववर्ती काव्य से गृहीत 'जनमानस' के हितों के अनुकूल उन सभी तथ्यों का चित्रण इनका कथ्य है, जो मानव को प्रगति के पथ पर अग्रसर करने में सहायक बनाते हैं। इस सन्दर्भ में डॉ0 उपाध्याय का अभिमत उचित प्रतीत होता है। ''समकालीन कविता अपने समय के मुख्य अन्तर्विरोधों और द्वन्द्वों की कविता है। समकालीन कविता में जो हो रहा है' का सीधा

✍ रीडर, हिन्दी विभाग, डी. ए. वी. (पी. जी.) कालेज, बुलन्दशहर
✍ शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, डी. ए. वी. (पी. जी.) कालेज, बुलन्दशहर

खुलासा है। इसको पढ़कर वर्तमान काल का बोध हो सकता है, क्योंकि उसमें जीते, संघर्ष करते, लड़ते बौखलाते, तड़पते, गरजते, तथा ठोकर खाकर सोचते वास्तविक आदमी का परिदृश्य है। आज की कविता में काल अपने गत्यात्मक रूपों में है, ठहरे हुए 'क्षण' या क्षणांश के रूप में नहीं। यह काल क्षण की कविता नहीं, काल प्रवाह के आद्यान्त और विस्फोट की कविता है। इसी से समकालीन लम्बी कविताओं की बुनावट तरंगों की तरह है। उनमें अनुपात, अवयव, सन्तुलन सामरस्य नहीं है, क्लासिक पूर्णता नहीं है, परिष्कृति नहीं है, उनमें मुक्ति बोधक चट्टानें अंधड़, लू, लपट उपहास, व्यंग, लताड़ और मारधाड़ है। उसमें काल का 'होता हुआ' रूप सताए हुए लोगों का विरेचन और विद्रोह है, द्रोह है।"[1] समकालीन कविता के सशक्त हस्ताक्षर धूमिल ने अपने विचार व्यक्त करते हुए इसमें स्वतन्त्रता, तनाव, यथार्थपरक स्थितियों का होना स्वीकार किया है। उनका अभिमत है "सही आदमी सार्थक कविता तथा सही सार्थक माने में कविता ने यथार्थ को महत्ता प्रदान की है।"[2]

समकालीन कविता के काल निर्धारण के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों के विभिन्न मत हैं। डॉ0 उपाध्याय समकालीन कविता को नई कविता के बाद की मानते हैं। जबकि रवीन्द्र भ्रमर ने समकालीन हिन्दी कविता को स्वतन्त्रता के पश्चात् की कविता माना है। लेखक का अभिमत है "स्वतन्त्रता के बाद की कविता समकालीन हिन्दी कविता स्वाधीन भारत की कविता है। समकालीन हिन्दी कविता में पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा कच्छप गति से विकास करने वाले देश की असफलताओं का विक्षोभ और आक्रोश भी मुखरित हुआ है।"[3] समकालीन कविता को साठोत्तरी कविता के अन्तर्गत रखा जा सकता है। स्वतन्त्रता के पश्चात् देश की जनता बड़े ही विश्वास और आशा के साथ सुनहरे सपने संजोए जी रही थी परन्तु 1962 में चीनी आक्रमण से उसका मोहभंग हुआ। जनता के समक्ष राजनेताओं की देश भक्ति व कर्मठता, निष्ठा की पोल खुल गई। उसका विश्वास ठगा गया, जिसका प्रभाव समकालीन कवियों की कविताओं में तीव्रता से अभिव्यंजित हो उठा। जनतन्त्र के नाम मात्र के प्रदर्शन, चुनाव, दल परिवर्तन, टोपी बदलाव, कुर्सीप्रियता, राष्ट्रीय चरित्र में निरन्तर पैर पसारती गिरावट ने युवा कवियों के अन्तस् को झकझोरने लगी इसी की यथार्थ अभिव्यक्ति समकालीन कविता में मुखरित हो चली। इस आशय की कविता में राजनीतिक चेतना को स्पष्ट रूप से रेखांकित किया जा सकता है, जिसके मध्य में कवियों का जनवादी दृष्टिकोण ही है।

यहाँ पर यह भी स्पष्ट होना आवश्यक है कि 'नई कविता' एवं जनवादी कविता में क्या समानता एवं असमानता है?नई कविता से जुड़े हुए कवि भी अपने को समकालीन कविता का अंग मानते हैं परन्तु यदि विचारपूर्वक देखा जाए तो नई कविता एवं समकालीन जनवादी कविता में अन्तर स्पष्ट हो जाएगा। नई कविता में कवियों की दृष्टि अन्तर्मुखी है, वैयक्तिक दुख के यथार्थ चित्रण में निराशा कुंठा की झलक है परन्तु समकालीन कविता में वैयक्तिक दुख, पीड़ा, घृणा, निराशा की अभिव्यक्ति इस प्रकार हुयी है कि वह सामाजिक सरोकारों से जुड़ गयी है। समकालीन कविता का कथ्य यथार्थ पर आधारित वर्तमान समाज एवं राष्ट्र का एक सच्चा दस्तावेज है। समकालीन कविता के स्वरूप विश्लेषण के उपरान्त उनकी कतिपय मूलभूत प्रवृत्तियों पर ध्यान केन्द्रित करना अपेक्षित होगा।

समकालीन कविता वस्तुतः यथार्थबोध की कविता है जिसमें कवि का जनवादी दृष्टिकोण सर्वोपरि होता है। वास्तविक जीवन में सुबह से शाम तक घिसटता हुआ मनुष्य जनपूंजी और अधिकारियों के घात प्रतिघात को सहता हुआ मनुष्य जब तिलमिला उठता है और उस तिलमिलाहट में जो कुछ अभिव्यक्त करता है वह कला का दुराग्रह स्वीकार नहीं करता, वह अपने अंतस् की पीड़ा को सहजतापूर्वक कह उठता है। उसका कथ्य ही कविता बन जाता है। एक उदाहरण देखिए –

जब बाप मरा तब यह पाया
भूखे किसान के बेटे ने
घर का मलवा, टूटी खटिया
कुछ हाथ भूमि– वह भी परती
बनिए के रुपये का कर्जा
जो नहीं चुकाने पर चुकता
बस यही नहीं जो भूख मिली
सौ गुनी बाप से अधिक मिली

समकालीन कविता में राजनीतिक सामाजिक हलचलों का सीधा सहज चित्रण उपलब्ध होता है। सन् 1967 के पश्चात् कविता में एक ऐसा मोड़ परिलक्षित होता है, जो देश की दुर्दशा का यथार्थ चित्रण अंकित करता है। ग्राम्य जीवन की विषमताओं, विद्रूपताओं, नाममात्र की आजादी, संसद का चुनाव, सत्ता को हथियाने का षड़यन्त्र इन सब तथ्यों का खुलासा इन शब्दों में साकार है –

क्यों? आजादी सिर्फ तीन थके हुए रंगों का नाम है
जिन्हें एक पहिया ढोता है
या इसका कोई खास मतलब होता है।[4]

(धूमिल, बीस साल बाद कविता से)

युवा वर्ग की निराशा एवं कुंठा को देखिए –

दोस्त मेरे! तुम मुझे गुमराह मत करो
डिगरियों की बैसाखियों का आदी होकर मैं जैसे चलना ही
भूल गया हूँ।
और जब जब मेरे पांव फासला मापना चाहते हैं
मेरे हाथ अनायास इन बैसाखियों की ओर लपकते हैं
और मैं चाहकर भी इस व्यवस्था को ठोकरें नहीं लगा पाता
जिसने मुझे! पांव होते पंगु बना दिया है।[5]

हमारे राजनेताओं ने कैसा छद्म रूप धारण कर रखा है इसका पर्दाफाश करते हुए मदन डागा लिखते हैं –

राष्ट्रीय व्यवस्था के ताले में
गांधी वादी चाबी टूट जाने पर
वे समाजवादी 'मास्टर की' ले तो आये हैं
पर उसे जानबूझकर घुमाया नहीं जा रहा है
और शोर किये जा रहा है कि समाजवाद आ रहा है
समाजवाद आ रहा है।
ताकि समाजवाद का जाप करते करते
हमारी जिबड़ियों में छाले पड़ जायें
और हम थक–थक कर मर जायें।
(गोया जिन्दगी जिन्दगी न हो कविता से– मदन डागा)

स्वतन्त्रता, राजनीति और सुखी समाज के स्वप्नों से जब मोह भंग हुआ तो देश के समक्ष नक्सलवादी आन्दोलन, तेलंगाना का किसान विद्रोह, जयप्रकाश नरायण के नेतृत्व में छात्र आन्दोलन, पंजाब का आतंकवाद एवं वर्तमान में कश्मीर की कराह यह सब ऐसी ज्वलन्त समस्यायें हैं, जिनकी यथार्थ अभिव्यक्ति समकालीन कविता में भरपूर मात्रा में मिलती है।

चलो चलें जलते असम को बचायें
लगी आग खूने जिगर से बुझायें
नहीं हमको गिननी है लाशें वहाँ पर
जो जिंदा है उनसे कदम हम मिलायें
.... वो जुल्मों सितम से कहो, बाज आयें
तिजारत न लाशों की अब होने देंगे
ये पैगाम सारे जहां को सुनायें।[6]

आज के युग का कटु सत्य है कि मनुष्य की नियति राजनीति के द्वारा परिचालित है। राजनीतिक घटना चक्रों का तत्काल प्रभाव देश की अर्थव्यवस्था पर पड़ता है। दलबदलू नेताओं से बनी सरकारों द्वारा नई नई अर्थ नीति की घोषणा जन–सामान्य के जीवन को व्यापक रूप से प्रभावित करती है। नेताओं की वाचालता जनता के समक्ष कितनी निरर्थक हो चुकी है देखिए –

देश में लगी आग को
लफ्फाजी नेता

शब्दों से बुझाते हैं
वाग्धारा से
ऊसर को उर्वर
और देश को
आत्मनिर्भर बनाते हैं
लोकतन्त्र का शासन
भाषण–तन्त्र से
चलाते हैं।

राजनीति के घृणित खेल में मानवीय संवेदनाओं को कोई स्थान नहीं होता। दंगे भड़कते हैं, आतंकवादी हमले होते हैं। उनकी बर्बरता से मनुष्यता कांप उठती है और यह राजनेता मरने वालों की लाशों की चंद कीमतें चुकाकर वायुयान में बैठकर दिल्ली चले आते हैं। इतना ही नहीं इन घृणित अपराधों के लिए एक दूसरे पर आरोपों प्रत्यारोपों की बौछार कर राजनीतिक सरगरमी पैदा करने का ढोंग करते हैं। जनवादी लेखकों की लेखनी ऐसे ज्वलंत प्रश्नों पर मौन नहीं है। देखिए –

वे दलीलें दे रहे हैं
वे हिसाब कर रहे हैं
एक ओर लाशें, दूसरी ओर वोट
वे लाशों को बांटकर पड़ताल कर रहे हैं
वे उनसे जुड़ी पार्टियों का अनुमान लगा रहे हैं
और अपने हिस्से की वोटों का वे लाशों के वोटों में
और वोटों को लाशों में बदल रहे हैं

(नरेन्द्र मोहन– एक अदद् सपने के लिए)

'पतझड़' कविता में धूमिल ने बेकारी की समस्या पर गहरा आघात किया है। देशप्रेम की वास्तविकता धूमिल ने जानी है तभी तो वह कहते हैं कि आदमी का भ्रम और देशप्रेम बेकारी की फटी हुई जेब से खिसक कर बीते हुए कल में गिर पड़ता है। भूखा बेकार व्यक्ति तो शैतान बन सकता है, विद्रोही और बागी भी बन सकता है, पर उसमें देशप्रेम किस स्तर का होगा, यह विचारणीय है। ''पठकथा'' तो सामाजिक, राजनीतिक विसंगतियों का काव्यात्मक लेखा–जोखा है। इसमें उनकी दृष्टि सदैव मूल्यहीनता पर स्थिति रही है। वहीं सदाचार, प्रेम, सद्भाव एवं अहिंसा सरीखे मूल्य आज उनकी दृष्टि में समाप्त हो चुके हैं। चारों ओर स्वार्थन्धता है, मूल्यों के टूटने की झनझनाहट है, देखिए –

मैंने अहिंसा को
एक सत्तारूढ़ शब्द का गला काटते हुए देखा

मैंने ईमानदारी को अपनी चोर जेबें
भरते हुए देखा है
मैंने विवेक को
चापलूसों के तलबे चाटते हुए देखा ....।[7]

(धूमिल– कल सुनना मुझे पृ0 80)

विरोधी, विपरीत परिस्थितियों एवं उससे उत्पन्न अन्तः विरोध का खुला चिट्ठा समकालीन कविता में उपलब्ध है। इतना ही नहीं इन विपरीत परिस्थितियों के प्रकाशन में सार्थकता की तलाश भी करता है। यहीं पर 'नई कविता' के यथार्थ बोध से भिन्न जनवादी चैतन्य से सम्प्रक्त हो जाता है। वह अपनी कविताओं में ऐसे पात्रों, सन्दर्भों को लेता है जो सहजता से युगबोध को मुखरित कर सके। धूमिल की "मोची राम" कविता इसी वर्ग चेतना की कविता है। "जूते की नाप" से धूमिल ने आदमी की पहचान करनी चाही है।

इतना ही नहीं समकालीन कविता में समाज के निराश लोगों में उद्बोधन भरने की अपार क्षमता भी है। वह मात्र निराशा कुंठा की अभिव्यक्ति नहीं है। उसमें गतिशील और परिवर्तनकारी दृश्य हैं, ऐसे जो स्वयं भी बदल रहे हैं और दूसरों को भी बदला रहे हैं। देखिए –

इसलिए उठो और भीतर
सोये हुए जंगल को
आवाज दो
उसे जगाओ और देखो
कि तुम अकेले नहीं हो
और न किसी के मुहताज हो
लाखों हैं जो तुम्हारे इन्तजार में खड़े हैं
वहाँ चलो उनका साथ दो
और इस तिलस्म का जादू उतारने में
उनकी मद्द करो और साबित करो
कि वे सारी चीजें अंधी हो गई हैं
जिनमें तुम शरीक नहीं हो?[8]

(पटकथा से, धूमिल)

समकालीन कविता में रचना प्रक्रिया में भी इस तथ्य पर निरन्तर दृष्टि रही है कि वह जन मन तक पहुँच सके। उसमें कला का आग्रह नहीं है, प्रतीकों की जटिलताओं को स्थान न देकर सीधे सहज रूप में

आदमी की बात को आम आदमी तक पहुँचाने का प्रयास है। कविता में जब तक तन्मय करने, संवेदित करने या गंभीर सोच के लिए प्रवृत्त करने वाली बुद्धि, राग–समन्वित भाव प्रणाली विकसित नहीं होती तब तक पाठक तक अपनी समग्रता में नहीं पहुँच पाती, क्योंकि ऐसी स्थिति में कविता का जो रूप होता है वह काम चलाऊ होता है। जीवन का वैविध्य उसका राग, शोक, कर्म दर्शन, उत्कर्ष, अपकर्ष, सफलता, असफलता, तात्कालिक समस्या यानी एक तरह समूचा जीवन कविता का क्षेत्र नहीं होता तब तक जनजीवन में कविता की भागीदारी संभव नहीं होती। जनजीवन में आत्मसात् होकर ही कवि उसे बदल सकता है, उसके भीतर विवेक, प्रतिरोध और उत्पीड़न की शक्तियों को विकसित करने की सही प्रक्रिया को प्रारम्भ कर सकता है। इस दृष्टि से समकालीन कविता को देखा परखा जाय तो पूर्णतः खरी उतरती है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि समकालीन कविता का प्रमुख स्वर जनवादी भावना ही है। जन–जीवन की ठोस विसंगतियों का एक खुला हुआ दस्तावेज है। जन–जीवन का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जिसे इन जनवादी कवियों ने खुली आँखों से न देखा हो। मानवीय संवेदनाओं से सम्पृक्त इनकी रचनाओं में मन को झकझोरने की अपार क्षमता है, जो पाठकों को कुछ सोचने के लिए विवश करती है। यही उनकी महत् उपलब्धि है।

सहायक ग्रन्थ

1. उपाध्याय विशम्भर नाथ तथा उपाध्याय मंजुल, नई दिल्ली, मैकमिलन (1976) समकालीन कविता की भूमिका, पृ0 34
2. राजपाल, हुकुम चन्द (1983), समकालीन बोध और धूमिल का काव्य, पृ0 10
3. राजपाल, हुकुम चन्द (1983), समकालीन बोध और धूमिल का काव्य, पृ0 11
4. भ्रमर रवीन्द्र (1972), राजेश प्रकाशन, समकालीन हिन्दी कविता, पृ0 21
5. धूमिल, सुदामा पाण्डे – (1975), संसद से सड़क तक, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
6. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना– 26.04.83 को समता युवा जनसभा, काशी विश्वविद्यालय, द्वारा प्रसारित।
7. धूमिल, सुदामा पाण्डेय (राजकमल प्रकाशन) संसद से सड़क तक, पृ0 93
8. धूमिल, सुदामा पाण्डेय – पटकथा से।

कितने पाकिस्तान : एक राजनीतिक चिन्तन

✍ अरूण बाला

कमलेश्वर आधुनिक हिन्दी कथा जगत के एक श्रेष्ठ एवं समर्थ उपन्यासकार एवं कथाकार हैं और आपका उपन्यास कितने पाकिस्तान परम्परा से हटकर विशिष्ट शैली में लिखा गया एक श्रेष्ठ राजनीतिक उपन्यास है। इस उपन्यास में मानवीय सम्बन्धों, संवेदनाओं, करूणा, प्रेम, दया एवं अंहिसा की पड़ताल की गई है। लेखक ने अपने वृहद् उपन्यास में जीवन के विविध पक्षों, रूपों एवं अंगों को केवल छूआ ही नहीं वरन् उन तमाम जटिल समस्याओं को लेखकीय ईमानदारी एवं साहस के साथ उभारा है जो लोगों के दिलों को झकझोरती है, कचोटती है, मथती हैं। आपकी यह पुस्तक अपने समय और समाज के प्रति आपके मन के भीतर 'निरन्तर चलने वाली एक जिरह का नतीजा' है।

इस उपन्यास में आपके विचारों का केन्द्र समूची मानवता और उसके ह्रदय पर लगे वे टीसते हुए घाव हैं जो उन्हे सत्ताधीशों, मठाधीशों, साम्राज्यवादियों, कट्टर धर्मांधों और आतंककारियों ने प्रदान किये है। मानव जाति की इसी पीड़ा को कम कर सुकून और शान्ति की खोज का सतत प्रयास है यह उपन्यास। इस उपन्यास में आपने विश्व स्तर की समस्याओं को वाणी प्रदान कर उसके मूल में सत्ता की हवस को बार–बार स्वीकार किया है। सत्ता की यह भूख व्यक्ति विशेष को आम से हटाकर 'खास' के झूठे दंभ के शिखर पर बिठाती है और उसके नीचे दबा आम आदमी अपनी पहचान के लिए तिलमिला रहा है, छटपटा रहा है।

लेखक ने साहस का परिचय देते हुए उपन्यास के प्रारम्भ में वर्तमान नेताओं की मौका परस्ती, घूसखोरी, संवेदनहीनता एवं नैतिक पतन की पराकाष्ठा का चित्र खींचते हुए कहा है कि ये नेता शहीदों के कफन में भी दलाली करने से बाज नहीं आते। करगिल युद्ध के दौरान नेताओं के रवैये से लेखक खफा है और वह इन नेताओं को धिक्कारने का साहस रखता है "प्रधानमंत्री जी यह तो आपके नैतिक पतन की पराकाष्ठा है कि जब आपकी सरकार गिराई गई तो दूसरे ही दिन आप देश की जनता को संदेश देने के लिए दूरदर्शन पर उपलब्ध थे...............जब.................स्क्वाड्रन लीडर अजय कुमार आहूजा मारा गया .... नचिकेता अपनी जान को खतरे में डालकर क्षतिग्रस्त जहाज से कूदा .... हमारी सेना के 29 जवान मारे गये, 28 घायल हुए और 12 लापता हैं तब देश को विश्वास में लेने .... उसके दुख में शामिल होने के लिए आपको दूरदर्शन पर आने की जरूरत महसूस नहीं हुई ? यह संवेदनहीनता की इन्तिहा है।"[1]

तत्कालीन रक्षामंत्री, विदेश मंत्री और प्रसार मंत्री को भी लेखक ने बड़े साहस के साथ बेनकाब किया है।

✍ व्याख्याता हिन्दी, राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर (राजस्थान)

लेखक को इस बात की बड़ी पीड़ा है कि कोई नेता या राजनेता मंत्री या पार्टी भारत के उत्तरी सीमांत में चल रहे इस विस्फोटक युद्ध पर न चिन्ता व्यक्त कर रहे हैं न संतोषजनक बयान दे रहे हैं। दूसरी तरफ दो तिहाई बहुमत से चुनी गई पाकिस्तान में नवाज शरीफ की लोकतांत्रिक सरकार सेना के हाथ की कठपुतली बनी हुई है और इस खूनी जंग की मूक, बेबस समर्थक।

वैश्विक आंतकवाद पर भी लेखक ने चिन्ता व्यक्त की है। विश्व का लगभग हर कोना किसी ना किसी रूप में आतंकवाद का दंश झेल रहा है। यह आंतकवाद धर्म, भाषा, क्षेत्र के नाम पर सम्पूर्ण विश्व को अपने भुजदण्डों में समेटे हुए है। मानवता के हन्ता में आतंकवादी मनुष्य के पुरूषार्थ, प्रेम, कर्मनिष्ठा और जीवट से बिलबिलाकर उसे नष्ट करने के नये–नये तरीके खोज रहे हैं। इस समस्या के मूल में भी कुत्सित राजनीतिक सोच काम कर रही है। ज्यादातर आतंकवाद राजसत्ताओं द्वारा प्रायोजित है यह बात अलग है कि वह अपने प्रायोजकों के लिए ही भस्मासुर सिद्ध हो रहा है।

इस उपन्यास में रूस के विभाजन की समस्या उसके पीछे काम कर रही राजनीतिक वर्चस्व की लड़ाई, स्वयं को वैश्विक शक्ति के रूप में स्थापित करने की लालसा और विभिन्न वैश्विक समस्याओं पर संयुक्त राष्ट्र का एक पक्षीय निर्णय सभी की विस्तार से चर्चा है : नाटो नाम के एक दशानन ने जन्म लिया है .... सागर पार का एक ओर राक्षस उसका सरगना है ...... अपने हितों के लिए उसने हमें बर्बाद कर दिया हैं।

संयुक्त राष्ट्र के पक्षपातपातपूर्ण रवैये पर लेखक की टिप्पणी है ''एक ध्रुवीय शक्ति के पक्ष में उने अपने नैतिक हथियार भी डाल दिये हैं।'' इसके साथ ही ईराक एवं अफगानिस्तान में अपने राजनीतिक स्वार्थो की पूर्ति हेतु अमेरिकन दखलंदाजी और खूनी संघर्ष ने दोनों देशों को कब्रिस्तान बना दिया है।

इसी राजनीतिक हवस के चलते अनेक देशों को विभाजन की त्रासदी झेलनी पड़ी। भारत का विभाजन भी उनमें से एक है। इण्डोनेशिया भी उपनिवेशवादियों की साजिश का शिकार हुआ। धर्म के नाम पर उसे राजनीति का मोहरा बनाया गया और ब्रिटिश उपनिवेशवादियों ने भारत में हिदू मुस्लिमों को मोहरा बनाकर धर्म के नाजुक बिन्दु पर भड़काकर भारत को विभाजन के कगार पर ला दिया। जिन्ना एवं नेहरू की राजनीतिक लिप्सा ने आग में घी का काम किया। 1933 में जब रहमत अली ने पाकिस्तान की परिकल्पना पेश की तो जिन्ना उनसे सहमत नहीं थे वे राजनीतिक से निराश और खफा होकर लंदन चले गये और अवसर पाकर अंग्रेजों ने उनकी राजनीतिक महत्वकांक्षा की आग को हवा दी। चर्चिल जैसे नेताओं ने तो विभाजन की भूमिका पहले ही तैयार कर रखी थी और जिन्ना उनकी तुरूप के पत्ते सिद्ध हुए। इस तरह भारत के विभाजन का आधार धर्म नहीं अंग्रेजों की राजनीतिक चाल थी जिसके द्वारा वे भारत की एकता को खण्डित कर उसे कमजोर करना चाहते थे। अंग्रेजों की साम्राज्यवादी सत्ता भारत से उसकी 1857 की एकता का बदला लेना चाहती थी।

धार्मिक कट्टरता के मूल में काम कर रही राजनीतिक भावना को लेखक ने समय की अदालत के माध्यम बाबर, हुमायूं, शाहजहां, औरंगजेब आदि के समय तक ले जाकर स्थिति स्पष्ट करने का साहसिक कार्य किया है। दाराशिकोह को उन्होंने एक सहिष्णु युवराज के रूप में तथा औरंगजेब को कट्टर मुस्लिम शासक के रूप में प्रस्तुत करते वक्त इस बात पर विशेष बल दिया है कि दाराशिकोह की हत्या का जो षड्यंत्र औरंगजेब ने उसे इस्लाम विरोधी बताकर रचा था वस्तुतः वह सत्ता का खूनी खेल था जिसे धर्म का चोला पहनाकर औरंगजेब ने खुद को इस्लामपरस्त सिद्ध करने की कोशिश की क्योंकि हिन्दुस्तान का तत्कालीन बादशाह शाहजहां दाराशिकोह के पक्ष में था। अतः औरंगजेब को भय था कि कही दाराशिकोह हिन्दुस्तान के तख्तोताज का मालिक न बन जाये इसलिए उसने धर्म का सहारा लिया तथा उलेमाओं को अपने पक्ष में कर दारा को इस्लाम विरोधी घोषित करवाकर उसके विरूद्ध मौत का फतवा जारी करवा दिया। ''मुगलिया सल्तनत का ताज हासिल करने और शहंशाह बनने की छुपी हवस को इस धर्माज्ञा ने जाहिर होने के खतरे से बचा लिया। सत्ता और महत्वकांक्षा की लालसा जीवन मलिक, जयपुर, जोधपुर, कश्मीर के नरेशों को किस तरह अपने उसूलों, धर्मनिष्ठा, विश्वास और मानवीयता को दरकिनार कर सत्ता के केन्द्र औरंगजेब का पिछलग्गू बना देती है यह उपन्यास में दर्शनीय है। आज के समय में भी तथाकथित मुजाहिदीन धर्म के लिए नहीं वरन् अपने आर्थिक और राजनैतिक स्वार्थो के चलते सत्ता और साम्राज्य प्राप्ति की स्पर्धा के कारण इन्सानियत के दुश्मन बनकर मानव रक्त के प्यासे हो गये हैं। सोमालिया, जार्डन, मिश्र, लीबिया, बोस्निया, ईरान, ईराक, भारत, पाकिस्तान, अफगानिस्तान आदि सभी देश इसका दंश झेल रहे हैं। जब तक सत्ता की यह हवस बनी रहेगी विभाजन की यह परम्परा समाप्त नहीं हो सकती.. .... जब तक दुनिया की पहली शक्ति बनने का नशा नहीं टूटता ..... जब तक सत्ता और वर्चस्व की हवस नहीं टूटती। तब तक इस धरती पर पाकिस्तान बनाने की नृशंस परम्परा जारी रहेगी।

इस उपन्यास में इस बात को भी दर्शाया गया है कि दुनिया भर में जितना भी आर्थिक असंतुलन है वह साम्राज्यवादियों की नीतियों के कारण ही है। आज का यह बाजारवाद भी साम्राज्यवाद का नया अवतार हैं इसी साम्राज्यवाद की जड़ों को मजबूत बनाने के लिए बाजार बनाये जा रहे हैं। साम्राज्यवाद, पूंजीवाद, बाजारवाद उपविवेशवाद सब एक ही वृक्ष की विविध शाखाएं हैं। आज विश्व में बाजार रूपी सौदागरों की एक पूरी जमात उग आई है जिसने भारत जैसे विकासशील देशों को अपनी गिरफ्त में ले लिया है। इसी बाजारवाद की उपज है विषमता, अवसाद, नशा, बीमारी, बेकारी, कृत्रिम, आनन्द और उल्लास। जहां एक ओर गांवों में पीने के लिए पानी उपलब्ध नहीं है वहीं दूसरी ओर यह बाजार नशे का साजो सामान आसानी से उपलब्ध करा रहे हैं।

कमलेश्वर का यह उपन्यास 'कितने पाकिस्तान' मेरी दृष्टि में एक श्रेष्ठ राजनीतिक उपन्यास है। इसमें लेखक ने यह दर्शाने का सफल प्रयत्न किया है कि वैश्विक स्तर पर चलने वाले विभिन्न राजनीतिक कुचक्र चाहे वे आतंकवाद का रूप हों, प्रथम एवं द्वितीय विश्व युद्ध का नरसंहार हो। भारत पाक का विखण्डन अथवा रूस का टुकड़े–टुकड़े होना -- सदा से मानवता का दलन करते आये हैं और आज के समय में सारा विश्व इन्हीं राजनीतिक दुश्चक्रों में फंसकर अनेक समस्याओं से जूझ रहा है। निश्चय ही

यह उपन्यास पाठक की मानवीय संवेदना और राजनीतिक चेतना को झकझोरने और जगाने का एक सफल प्रयास है।

संदर्भ ग्रन्थ

मूल ग्रन्थ -- कितने पाकिस्तान – कमलेश्वर

1. साठोत्तर हिन्दी काव्य में राजनीतिक चेतना, डॉ. एस. गम्भीर
2. हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा –रामदरश मिश्र
3. साहित्य और राजनीति -- डॉ. कुंवर पाल सिंह
4. स्वातन्त्र्योत्तर उपन्यासों में पुरूष पात्र– डॉ. दुर्गेश नन्दिनी प्रसाद

हिन्दी के युग प्रवर्तक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

✍ डॉ. रजनी सिंह

आधुनिक युग के अग्रदूत एवं पुनर्जागरण काल के प्रवर्तक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एक बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न रचनाकार थे। इसे विदुषी महादेवी वर्मा ने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की जन्मशती समारोह का उद्घाटन करते हुए कहा था कि – "जो कुछ शंकराचार्य ने धर्म की दृष्टि से किया, जो दयानन्द ने आर्यवाणी के लिए किया, जो विवेकानन्द ने दर्शन के लिए किया, वही भारतेन्दु ने हिन्दी साहित्य के लिए किया। सम्मिलित रूप में सब कुछ भारतेन्दु के साहित्य में है। इतना काम किसी ने एक साथ नहीं किया।"

इस हिन्दी के उन्नायक महापुरूष का जन्म काशी के एक सम्पन्न वैश्य कुल में 9 सितम्बर सन् 1850 को हुआ। इनके पिता का नाम गोपालचन्द उपनाम 'गिरधर' था। ये इतिहास– प्रसिद्ध सेठ अमीचन्द की वंश परम्परा में आते हैं, यें अत्यन्त संवेदनशील व्यक्ति थे। ये कवि, नाटककार, निबन्ध लेखक, सम्पादक, समाज सुधारक सभी कुछ थे। हिन्दी गद्य के तो ये जन्मदाता समझे जातें हैं। बालक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पर पिता के कवित्व का प्रभाव पड़ा। सात वर्ष की अवस्था में ही उन्होने छंद रचना कर अपनी प्रतिभा का परिचय दिया –

लै न्योढ़ा ठाढ़ भए, श्री अनिरूद्धसुजान।
बानासुर की सैन को, हनन लगे भगवान।।

भारतेन्दु ने स्वाध्ययन से हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, फारसी, मराठी, गुजराती, बग्ंला आदि भाषाओं और उनके साहित्य का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। इसी बीच उन्होंने समूचे उत्तर भारत का भी भ्रमण किया। अध्ययन और देशभ्रमण से उनमें देश–प्रेम और साहित्यानुराग का उद्भव हुआ। वे अत्यन्त कोमल ह्रदय, उदार गुणियों और सुकवियों के आश्रयदाता तथा स्वाभिमानी थे। अपनी दान–शीलता और उदारता में उन्होंने अपना सर्वस्व गवाँ दिया और जीवन के अंतिम दिनों में आर्थिक संकट भी झेला। उन्होंने पाश्चात्य शिक्षा का अभाव मिटाने के लिए अपने घर पर ही अंग्रेजी का चौखंभा स्कूल शुरू किया जो आज हरिश्चन्द्र महाविद्यालय के नाम से प्रसिद्व है। सन् 1880 ई0 में उनकी हिन्दी सेवा और देश भक्ति को सम्मानित करने के लिए उन्हे 'भारतेन्दु' उपाधि से अलंकृत किया। वास्तव में वह भारत के इन्दु (अर्थात– भारत के चन्द्र) थे। हिन्दी गद्य के तो ये जन्मदाता समझे जाते हैं। इन्होंने सन् 1868 में 'कवि वचन सुधा' और सन् 1873 में 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' का सम्पादन किया था जो 8 अंको के बाद 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' नाम में परिवर्तित हो गयी। हिन्दी गद्य को 'नयी चाल में ढालने का श्रेय' हरिश्चन्द्र चन्द्रिका को ही है। नाटकों के क्षेत्र में इनकी देन सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

✍ प्रवक्ता, हिन्दी, वीर लोरिक सुघर महाविद्यालय, विगह चरौवाँ, बलिया

भारतेन्दु जी के समय से हिन्दी कविता में एक नया मोड़ आया। उसका एकांगीपन–सा दूर हुआ और तत्कालीन आवश्यकतानुसार देश की राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक, आर्थिक स्थितियों को व्यक्त किया जाने लगा। लोगों में जीवन के प्रति जागृति भी आ रही थी, जिसका बहुत कुछ श्रेय अंग्रेजी और बंग्ला साहित्य के अध्ययन को दिया जा सकता है।

लोगों का अंग्रेजी और बंग्ला के प्रभाव से सीमित और संकुचित दृष्टिकोण समाप्त हुआ। अब केवल नायक –नायिकाओं के भेद–उपभेद, चेष्टायें, हाव–भाव और संयोग–वियोग की गाथा गाना ही कवि को अभीसिप्त नहीं था, वरन् उनमें चेतना थी। इसीलिए देशोद्धार, देशप्रेम, जागृति और जीवन को व्यक्त करने वाले विचारों को प्रमुखता मिली तथा सामाजिक दशा की ओर भी उनकी दृष्टि गयी किन्तु हम यह नही कह सकते कि भारतेन्दु के साहित्य मंच पर पदार्पण करते ही एक दम जादू की तरह सारी रीतिकालीन पद्धति लुप्त हो गयी। इतने वर्षों से जिस लय और धुन में गीत गाये गये, वह इतनी शीघ्र समाप्त भी कैसे हो सकती थी, पर निःसंदेह कहा जा सकता है कि उसमें परिवर्तन आया, परिवर्तन पर्याप्त मात्रा में आया और जो कुछ श्रृंगार–गीत गाये भी गये उन पर युग–परिस्थिति और युग चेतना की थोड़ी बहुत छाप अवश्य ही दिखलाई देती रही। उदाहरण के लिए भारतेन्दु की निम्न पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं –

"तेरी अंगियां में चोर बसे गोरी,
छोड़ी दे किन बन्द चोलियां पकरैं चोर हम अपनों री।"

इस प्रकार की कविता करने वाले ने तभी अपने निम्न विचार भी रखें, जिनमें तत्कालीन चेतना की सुगन्ध भी मिलती है –

" निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटै न हिय को सूल ।।
अंग्रेजी पढ़िके जदपि सब गुन होत प्रवीन ।
पै निज भाषा ज्ञान बिन अंत हीन के हीन।।

भारतेन्दु जी के प्रभाव से जहाँ रीतिकालीन विचार के स्थान पर नवीन विचारों का प्राधान्य रहा, वही भाषा में परिवर्तन होना आरम्भ हो गया। भारतेन्दु ने कुल मिलाकर छोटी–बड़ी लगभग दो सौ पुस्तकों की रचना की इनकी प्रमुख रचनायें निम्नवत् है–

1.	प्रेम सरोवर,	2.	प्रेम माधुरी,	3.	प्रेम तरंग
4.	प्रेम फुलवारी (सभी काव्य)	5.	चंद्रावली		
6.	वैदिकी हिंसा, हिंसा न भवति	7.	भारत–दुर्दशा		
8.	नील देवी	9.	अंधेर नगरी	10.	प्रेम योगिनी
11.	विषस्य विषमौशधम् तथा	12.	'नाटक' सम्बन्धी निबन्ध– संग्रह		

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त भारतेन्दु ने विभिन्न भाषाओं के अनेक ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद भी किया। इनकी साहित्यिक मण्डलीय में उपाध्याय पं0 बदरीनारायण चौधरी "प्रेमधन" पं0 बाल कृष्ण भट्ट तथा प्रताप नारायण मिश्र आदि थे। वस्तुतः भारतेन्दु का व्यक्तित्व बहुमुखी था। ये जब–जब जो कहना चाहते थे उसके अनुरुप शैली व भाषा स्वयं ढ़ल जाती थी। इनकी भाषा व्यवहारिक बोल चाल के निकट प्रवाह मयी और जीवन्त है।

भारतेन्दु का सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान है कि उन्होने हिन्दी में गद्य–रचना का मार्ग प्रशस्त किया। उनके पूर्व हिन्दी–गद्य की दो धारायें प्रचलित थी। एक का प्रतिनिधित्व राजा शिव प्रसाद 'सितारे हिन्द' करते थे। इस धारा में लिपि तो देवनागरी थी किन्तु उसमें उर्दू–फारसी शब्दों की बहुलता थी, उनकी भाषा सामान्य जन के लिए सहज नही थी। दूसरी धारा का नेतृत्व राजा लक्ष्मण सिंह कर रहे थे। उनकी भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों का बाहुल्य था, उनकी भाषा भी सहज नही थी। भारतेन्दु ने इन दो अतिवादी रुपों का एक मध्यम मार्ग खोज निकाला। उन्होंने व्यवहारिक भाषा को गद्य के लिए प्रयुक्त किया। इस भाषा में उर्दू–फारसी के प्रचलित शब्दों के प्रयोग के साथ ही संस्कृत के प्रचलन में आए शब्दों का भी निषेध नही था। आगे चलकर भारतेन्दु द्वारा व्यवहृत भाषा ही हिन्दी गद्य के लिए स्वीकृत हुई। हिन्दी गद्य में आधुनिक विषयों पर निबन्ध, नाटक, इतिहास, राजनीति, साहित्य आदि पर लिखा। भारतेन्दु ने समाज और देश के कल्याण के लिए 'निज भाषा' (हिन्दी) की उन्नति को मूल–मंत्र माना और कहा –

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल ।
बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को शूल ।।

भारतेन्दु के निबन्धों में उनकी प्रगतिशील मान्यताएं, व्यंग्य–विनोद, उदारता, देश–प्रेम आदि सभी के दर्शन होते है। उनके निबन्धों में रुढ़ियों पर चोट की गयी है। 'काशी' नामक निबन्ध में उन्होंने हिन्दुओं के अंधविश्वास और अज्ञान का पर्दाफाश किया। 'तदीय सर्वस्व' में अस्पृश्यता और वाह्याडम्बर पर करारा प्रहार किया। 'सबै जाति गोपाल की' नामक निबन्ध में उन्होने जाति–भेद का विरोध किया। उन्होने जनता को अंग्रेजों के शोषण से सचेत और सावधान करने तथा स्वदेशी को अपनाने के लिए अपनी प्रतिभा को प्रयुक्त किया। इस सम्बन्ध में उन्होने विविध प्रकार की रचनाएं की। नाटक, निबन्ध, मुकरी, चने का लटका आदि सभी कुछ लिखा। 'अंधेर नगरी' नाटक में उन्होंने तत्कालीन शासन के अविचारित कार्यो पर व्यंग्य किया –

'अंधेर नगरी चौपट राजा। टके सेर भाजी, टके सेर खाजा ।।
'चने का लटका' में उन्होने अंग्रेजी के शोषण का पर्दाफाश किया।

उसके साथ ही उसमें अधिकारियों की रिश्वतखोरी, पुलिस का कानून–विरोधी रुप आदि पर भी व्यंग्य किया गया है –

चूरन हाकिम सब जो खाते, सब पर दूना टैक्स लगाते ।
चूरन साहब सब जो खाएं, दूनी रिश्वत तुरत पचावै ।।
चूरन पुलिस वाले सब खाते, सब कानून हजम कर जाते ।
चूरन साहेब लोग जो खाता, सारा हिन्द हजम कर जाता ।।

भारतेन्दु दूरदृष्टि सम्पन्न व्यक्ति थे। उन्होने यह जान लिया था कि अपने अत्याचारों के कारण ही अंग्रेजी राज्य का अन्त होगा। इस तथ्य को उन्होने 'अंधेर नगरी' के अंत में लिखा है, जिस राज्य में धर्म, नीति, बुद्धि या सज्जनों का समाज नही होता, वह स्वयं चौपटराज की तरह समाप्त हो जाता है –

जहाँ न धर्म, न बुद्धि नीति न सुजन समाज ।
ते ऐसे हि आपुहिं नसैं जैसे चौपट राज ।।

अंग्रेजों के शोषण के विरुद्ध लोगों को जगाने के लिए व्यंग्यपूर्ण 'मुकरियों' की रचना की। इनमें उन्होंने अंग्रेजों के छली–प्रपंची रुप का चित्र उपस्थित किया। इस सम्बन्ध में यह मुकरी यहाँ दृष्टव्य है –

'भीतर –भीतर सब रस चूसे,
हंसि–हंसि के तन, मन, धन, मूसे,
जाहिर बातन में अति तेज,
क्यों सखि साजन, नहिं अंगरेज ।

भारतेन्दु चाहते थे कि यहाँ के निवासियों को उद्योग–धन्धों की उन्नति पर ध्यान देना चाहिए। ऐसा न होने पर हम उन्नति नही कर सकेंगे। अंग्रेजी शासन–व्यवस्था में पनपे बृद्धिजीवियों और मूर्खतापूर्ण सोच का मजाक उड़ाते हुए लिखा– "एडीटर जी कहते है– एजुकेशन की एक सेना बनायी जाये। कमेटी की फोंज, अखबारों के शस्त्र और स्पीचों के गोले मारे जाएं।" 'भारत दुर्देव' नाटक में कवियों के नपुंसक चिंतन पर भी भारतेन्दु ने करारा प्रहार किया है– "सब हिन्दु मात्र अपना फैशन छोड़कर कोट– पतलून इत्यादि पहनें, जिसमें जब दुर्देव की फौज आवे तो हम लोगों को यूरोपियन जानकर छोड़ दें। 'भारत दुर्दशा' नाटक में भारतेन्दु ने भारतीयों की कायरता पर भी व्यंग्य अत्यन्त चुटीला है। वे लिखते है– "छी: छी: जियोगे तो भीख माँग खाओगे। प्राण देना तो कायरों का काम है। क्या हुआ धन–मान सब गया एक जिन्दगी हजार नियामत।"

इस प्रकार भारतेन्दु ने विभिन्न वर्गो में फैली बुराईयों पर व्यंग्य कर उन्हें उनके कर्तव्य का बोध कराया। वे चाहते थे कि भारत अपने अतीत गौरव को प्राप्त करे। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर वे अपने पूरे जीवन–काल में प्रयत्नशील रहें। इसीलिए उन्होंने स्वदेशी आन्दोलन चलाया। उन्होंने लोगों से स्वदेशी वस्तु को अपनाने का आग्रह करते हुए लिखा– "परदेशी वस्तु परदेसी भाषा का भरोसा मत रखो। इसके द्वारा भारत को अपने स्वत्व की प्राप्ति नहीं हो सकती।" बलिया के अपने जुझारु भाषण में उन्होंने कहा

कि– "हम इससे बढ़कर क्या कहें कि जैसे तुम्हारे घर में कोई पुरूष व्यभिचार करने आवे, तो जिस क्रोध से उसको पकड़ कर मारोगे और जहाँ तक तुम्हारे में शक्ति होगी उसका सत्यानाश करोगे। उसी तरह इस समय जो–जो बातें तुम्हारी उन्नति पथ में काँटा हों, उनकी जड़ खोदकर फेंक दो। "

भारतेन्दु ने व्यंग्य के माध्यम से अंग्रेजी और उनके शोषण को निरावृत्त किया। उस काल में ऐसा करना बड़े साहस का कार्य था। 'लेवी प्राणलेबी' और 'अंग्रेज स्तोत्र लिख्यते' इस सन्दर्भ में पठनीय है। 'अंग्रेज स्तोत्र' में उन्होंने लिखा– " खजाना तुम्हारा पेट है, लालच तुम्हारी क्षुधा है, सेना तुम्हारे चरण, खिताब तुम्हारा प्रसाद है, अतः हे विराट रुप अंग्रेज, हम तुम्हें प्रणाम करते है। इसके अतिरिक्त भारतेन्दु ने 'पॉचवे चूसा" में अंग्रेजो की शोषण नीति पर तीखा प्रहार किया। 'चूसा' भारतीयों को सीख देता है कि 'देखो, शराब पियो.........ताव खाना सीखो, स्पीच दो, क्रिकेट खेलो, दरबारी करो, पोशाक तंग रखो।" उस समय ऐसा लिखना बहुत बड़े साहस का कार्य था, किन्तु भारतेन्दु ने सारे खतरे उठाकर यह ऐतिहासिक कार्य किया।

भारतेन्दु के निबन्ध–साहित्य में काफी विविधता है। उनमें एक ओर कालिदास, सूरदास जैसे महाकवियों की जीवनियाँ है, तो दूसरी ओर शंकराचार्य, रामानुजाचार्य जैसे दार्शनिकों का सामान्य जन के लिए परिचय मिलता है। इसी तरह मुहम्मद साहब, बीबी फातिमा, सुकरात और नेपोलियन के सम्बन्ध में भी निबन्ध है। इसके अतिरिक्त पुरातत्व सम्बन्धी जैसे 'कन्नौज का दानपत्र' तथा 'चित्रकुटस्थ रमाकुण्ड' और इतिहास ग्रंथों में 'कश्मीर कुसुम, 'बादशाह दर्पण', 'महाराष्ट्र देश का इतिहास' इत्यादि है।

भारतेन्दु की मान्यता थी कि देश और समाज की उन्नति के लिए एक सुविचारित शिक्षानीति होनी चाहिए। लार्ड रिपन द्वारा नियुक्त शिक्षा–आयोग को भारतेन्दु ने अपने ज्ञापन में गणित, सामान्य ज्ञान व्यापार, कृषि शिक्षा, रोजगार परक एवं क्रियात्मक उच्च शिक्षा, साम्प्रदायिक भेद–भाव की समाप्ति, स्त्रीशिक्षा का प्रसार, राजकीय छात्रवृत्ति आवंटन में खुली प्रतियोगिता का सुझाव दिया। उन्होंने लिखा– "देखो, शिक्षा माता, उस माता से बड़ी है क्योंकि माता केवल बालपन में रक्षा करती है, पर विद्या अपने बल से सब अवस्था में रक्षा करती है।"

यह तथ्य सर्वविदित है कि भारतेन्दु जितने अच्छे गद्य–लेखक थे, उतने ही महान कवि थे। उन्होने भक्ति और श्रृंगारपरक रचनाओं के साथ समाज और देश के उत्थान सम्बन्धी कविताएं लिखी। उन्होंने कृष्ण भक्ति छंद भी उत्तम कोटि के लिखे –

" नाधिबे को नाले पर, परगन में छाले परें।
तऊ लाल–लाल परे, राउरे दरस के ।।

उन्होंने अपनी देश–प्रेम सम्बन्धी कविताओं से लोगों में देश–प्रेम का भाव जागृत किया। भारत की दुर्दशा की ओर भारतीयों का ध्यान आकृष्ट करने के लिए उन्होने लिखा –

"रोवहु सब मिलकै, आवहु भारत भाई ।
हा, हा भारत दुर्दशा देखी न जाई ।।

भारतेन्दु ने लोगों को स्वावलंबी बनने और अंग्रेजों से सावधान रहने का आग्रह किया। उनकी निम्नवत् पंक्तियाँ दृष्टव्य है

" अपनों काम अपने ही हाथन मल होई ।
परदेशियन परधर्मिन ते आश नहि कोई ।।
धन धरती निज हरी सुकरहिं कौन भलाई ।
जोगी काके मित, कलन्दर केहि के भाई ।।

भारतेन्दु अपने युग की सम्पूर्ण चेतना के केन्द्र बिन्दु थे। ये प्राचीनता के पोषक भी थे और नवीनता के उन्नायक भी। वर्तमान के व्याख्याता भी थे और भविष्य के दृष्टा भी। उन्नीसवीं शती के अन्तिम चरण में हिन्दी साहित्य को सही दिशा की ओर अग्रसर करने के लिए जिस समुन्नतशील प्रतिभा की आवश्यकता थी, भारतेन्दु के रुप में वह हिन्दी को प्राप्त हुई थी। इस हिन्दी के युग प्रवर्त्तक भारतेन्दु का देहावसान अल्पायु महज पैतीस वर्ष में सन् 1885 में हो गया। इनके द्वारा किया गया कार्य युगों–युगों तक भारतीयों को प्रेरणा देता रहेगा। पंत जी के शब्दों में यही कहा जा सकता है कि –

"भारतेन्दु कर गये भारती की वीणा निर्माण ।
किया अमर स्पर्शों ने जिसका बहुविधि संधान।।

आर्थिक विकास बनाम कृषि क्षेत्र का कम महत्व

✍ श्रीमती उर्मिला गौड़

आर्थिक विकास काल के प्रारम्भिक में उत्पादन साधन, कृषि क्षेत्र द्वारा ही उपलब्ध होते हैं चाहे वह कच्चा माल हो या श्रम हो अथवा पूँजी, इन सभी का स्रोत कृषि क्षेत्र ही होता है। परन्तु जैसे–जैसे अर्थव्यवस्था में प्रगति होती जाती है और औद्योगिक क्षेत्र का विकास होता जाता है, वैसे–वैसे ही कृषि क्षेत्र का महत्व कम होता जाता है। कृषि क्षेत्र का महत्व एक ऐसे क्षेत्र के रुप में जो अन्य क्षेत्रों में विकास प्रक्रिया को आरम्भ कराते हुए फिर, पुनः इसे बनाए रखने में सहायता करता है साथी ही अर्थव्यथा सकल घरेलू उत्पाद के सबसे वृहद स्रोत के रुप में।

विकास प्रक्रिया को बनाये रखने में कृषि का घटता हुआ महत्व

जैसे–जैसे औद्योगिक क्षेत्र का विकास होता है, इसकी उत्पादन साधनों की आपूर्ति हेतु कृषि क्षेत्र पर निर्भरता कम होती जाती है।

औद्योगिक क्षेत्र विकसित होने के पश्चात कृषि ही औद्योगिक क्षेत्र पर निर्भर करने लगता है। औद्योगिक क्षेत्र, कृषि क्षेत्र को उत्पादन के नाना प्रकार के आधुनिक साधन जैसे मशीनें, उर्वरक, कीटाणुनाशक दवाईयाँ आदि उपलब्ध करता है। कृषि उत्पादन हेतु सबसे महत्वपूर्ण आधुनिक साधन अर्थात् ऊची उत्पादकता वाले बीज भी एक विकसित औद्योगिक क्षेत्र कृषि की देन है।

आर्थिक विकास होने के साथ ही गैर–कृषि क्षेत्र की कृषि क्षेत्र पर कई साधनों के लिए निर्भरता कम होती जाती है। अर्थात् कृषि क्षेत्र का अर्थिक विकास को आरम्भ करने या इसको बनाए रखने वाले क्षेत्र के रुप में महत्व अत्यधिक कम हो जाता है।

औद्योगिक व अन्य गैर–कृषि क्षेत्रों को खाद्यान उपलब्धता हेतु कृषि क्षेत्र के महत्व में कमी आने की कोई सम्भावना स्पष्ट नहीं होती बल्कि गैर कृषि क्षेत्र से सम्बन्धित व्यक्तियों की आयु में वृद्धि होने के कारण, उनकी खाद्यान्न हेतु माँग बढ़ जाने के कारण इस दृष्टि से कृषि का महत्व बढ़ जाये।

अर्थव्यवस्था के उत्पादन के मुख्य स्रोत के रुप में कृषि महत्व में कमी

जैसे–जैसे अर्थव्यवस्था का विकास होता है वैसे–वैसे कृषि क्षेत्र का देश की कुल आय में योगदान

✍ रीडर, अर्थशास्त्र, सर्वोदय विद्यापीठ (पी. जी.) कालेज, सलोन, रायबरेली

(एक भाग के रुप में) कम होता जाता है। राष्ट्रीय आय का मुख्य भाग कृषि क्षेत्र में ही निहित है जो आय का मुख्य स्रोत होता है परन्तु विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं के विकास से यह ज्ञात होता हे कि जैसे–जैसे अर्थव्यवस्था में अन्य क्षेत्रों का विकास होगा। कृषि का कुल राष्ट्रीय आय में अनुपातक रुप में योगदान घटता गया है।

स्पष्ट है कि भारत के अतिरिक्त सभी देश विकसित देश है। विकसित देशों में कुल श्रमिक वर्ग का बहुत थोड़ा भाग कृषि से सम्बद्ध है। सकल घरेलू उत्पाद का बहुत थोड़ा भाग कृषि क्षेत्र में उत्पन्न होता है। प्रत्येक देश में कृषि में लगे हुए श्रम तथा इसके कुल श्रम के मध्य अनुपात, कृषि में उत्पन्न सकल घरेलू उत्पाद तथा इसके सकल घरेलू उत्पाद के मध्य अनुपात से अधिक है। अर्थात् कृषि क्षेत्र की प्रति व्यक्ति आय से कम है। समय के व्यतीत होने पर कृषि में उत्पन्न हुए घरेलू उत्पादन का सम्पूर्ण देश के समल घरेलू उत्पादन में भाग कम होता है।

यह जानना नितान्त आवश्यक है कि जिस कारण से वह क्षेत्र जिसका कि किसी समय अन्य क्षेत्रों में विकास को आरम्भ करने तथा इसको बनाये रखने में एक महत्व योगदान था, अर्थव्यवस्था के सम्पूर्ण विकास के कारण सकल घरेलू उत्पाद की दृष्टि से अर्थव्यवस्था में अपना प्रथम स्थान समाप्त कर बैठता है। इसके निम्न कारण है –

1. समय व्यतीत होने के साथ कृषि व गैर कृषि क्षेत्र दोनों का ही विकास

भारत का वर्ष 1950–51 में, 1980–81 के मूल्यों पर सकल घरेलू उत्पाद 42871 करोड़ रुपया था। उस समय मात्र कृषि क्षेत्र का सकल घरेलू उत्पाद 20860 रुपया था। (1990–91 में 1980–81 के मूल्यों पर आधारित) यह सम्पूर्ण भारत के लिये 209791 करोड़ रूपया था मात्र कृषि क्षेत्र के लिये 61426 करोड़ रूपया था।

1990 के पश्चात् भी भारत के सकल उत्पाद व कृषि क्षेत्र के सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि हुई है। 1993–94 के मूल्यों पर आधारित वर्ष 1994–95 में कुल भारत तथा कृषि क्षेत्र के समल घरेलू उत्पाद क्रमशः 838031 करोड़ रुपया व 233099 करोड़ रुपया के बराबर थे। वर्ष 2002–03 में दोनों बढ़कर 1318362 करोड़ रुपया व 256836 करोड़ रुपये के बराबर हो गये थे। स्पष्ट है कि समय के साथ–साथ भारत में कृषि क्षेत्र तथा गैर कृषि क्षेत्र दोनों का ही विकास हुआ है।

2. कृषि विकास की अपेक्षा गैर कृषि क्षेत्र विकास दर अपेक्षा कम रही है :

यदि समय के साथ कृषि क्षेत्र का देश के समल घरेलू उत्पाद में भाग कम होने के कारण यही है कि कृषि क्षेत्र के विकास दर उतनी नहीं थी जितनी की गैर कृषि क्षेत्र के विकास दर।

भारत में जहाँ वर्ष 1951 में देश के सकल घरेलू उत्पाद का 48.79 प्रतिशत भाग कृषि क्षेत्र में उत्पन्न हुआ था, वही वर्ष 1990–91 में घटकर 29.3 प्रतिशत हो गया था। वर्ष 1990–91 के पश्चात के आकड़ों से स्पष्ट है कि वर्ष 2000–01 में कृषि क्षेत्र का देश के घरेलू उत्पाद में भाग लगभग 23 प्रतिशत (1993--94 के मूल्यों पर आधारित) रह गया था।

यदि कृषि क्षेत्र में उसी दर से विकास होता जिस दर से गैर कृषि क्षेत्र में है तो कृषि क्षेत्र का कुल घरेलू उत्पादन में (प्रतिशत) भाग कम न होता, अर्थात सकल घरेलू उत्पाद में योगदान की दृष्टि से महत्व बना रहता।

3. पूर्ति पक्ष को छोड़ कर माँग पक्ष पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए

कृषि क्षेत्र में और साधन इसलिए न लगाये गये हो क्योकि विकास करती हुई अर्थ व्यवस्था में कृषि उत्पादों हेतु माँग में वृद्धि दर, औद्योगिक क्षेत्र की माँग की अपेक्षा कम थी और वास्तविकता यह है कि अपने विश्लेषण के दृष्किोण में ऐसा परिवर्तन करते ही उस कारण का पता चल जाता है, जिससे समय के व्यतीत होने के साथ कृषि क्षेत्र का विकास अन्य क्षेत्रों के अपेक्षा कम दर से होता रहा है।

विकासोन्मुख अर्थव्यवस्था में कृषि क्षेत्र के कम विकास दर का मूल कारण है

कृषि उत्पादों की माँग की, गैर कृषि क्षेत्र के उत्पादों की अपेक्षा कम आय का होना।

जैसे–जैसे एक देश में प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि होती है तो खाद्यान्न माँग की वृद्धि दर प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि दर कम होगी सम्भव है कि सम्पूर्ण देश के लिए खाद्य फसलों की माँग जनसंख्या वृद्धि के कारण कुछ थोड़ी सी और बढ़े। वास्तव में कृषि क्षेत्र में खाद्य फसलों के अतिरिक्त कई और फसल भी उगाई जाती है। जबकि भूमि का अधिकांश भाग खाद्य फसलों के अधीन होता है, इसलिए सम्पूर्ण कृषि क्षेत्र के उत्पादों की माँग की आय सापेक्षता इकाई से नीचे है।

गैर कृषि क्षेत्र उत्पादों की माँग की आय के सापेक्षता कम होने का कोई कारण नहीं स्पष्ट होता है। आय वृद्धि के साथ इनकी माँग सदैव बढ़ती रहती है। मनुष्य की इच्छायें असीमित है, परन्तु कुछ को छोड़ कर बाकी सब इस लिए उभर कर सामने नहीं आती क्योकि मनुष्य के पास उन्हें पूरा करने हेतु पर्याप्त साधन नहीं है। आर्थिक विकास का तात्पर्य मनुष्य की आय में वृद्धि और इसके कारण उसकी असीमित इच्छाओं में से कुछ और की सन्तुष्टि स्पष्ट है कि ऐसी इच्छाओं का मनुष्य कि उन मौलिक आवश्यकताओं से कोई सम्बन्ध नहीं है जो उसकी जैविक प्रकृति के कारण उत्पन्न होती है तथा जो सदैव ही कृषि के क्षेत्र उत्पादों द्वारा पूर्ण की जाती है। मनुष्य की मौलिक इच्छाओं को छोड़कर लगभग सभी अन्य इच्छाओं की सन्तुष्टि गैर कृषि क्षेत्र के उत्पादों से होती हैं।

वास्तव में गैर कृषि क्षेत्र के विकास ने कृषि क्षेत्र के उत्पादों (विशेषतः गैर या खाद्य फसलों) के माँग वृद्धि में एक और प्रकार से भी बाधक है बनावटी कपड़ा, बनावटी रबड़, प्लास्टिक के थैलों आदि में, जो कि गैर कृषि क्षेत्र के उत्पाद है, कपास, ऊन, पटसन, प्राकृतिक रबड़ आदि की माँग में वृद्धि दर को और भी कम कर दिया है। यहाँ तक की आज कल स्वस्थ रहने हेतु कुछ कृषि उत्पादों की माँग में वृद्धि को नियंत्रित कर दिया है। जैसे कैन्सर नियन्त्रण हेतु तम्बाकु तथा मोटापे और इसके कारण होने वाली बीमारियों से बचने के लिए तेल, दूध से बने हुए उत्पाद, चीनी तथा अन्य खाद्य पदार्थों के प्रयोग को सीमित करने, कृषि उत्पादों की माँग के सम्बन्ध में शुल्टज का मत है कि जनसंख्या में वृद्धि होने की अवस्था में आर्थिक विकास के कारण कृषि उत्पादों की मौलिक माँग में कोई परिवर्तन नहीं होता। माँग तो मात्र उन सेवाओं की बढ़ती है जो की कृषि उत्पादों के साथ जुड़ जाती है।

मेलर ने एक विकास करते हुए एक देश की कुल आय में कृषि क्षेत्र के अनुपातिक रुप से घटते हुए योगदान का एक और कारण बताते हुए कहते है कि विकास के साथ-साथ उत्पादन से जुड़ी कुछ प्रक्रिया का विशिष्टिकरण होने लगता है। इस प्रकार विशिष्टिकरण कृषि क्षेत्र में होने वाली कई सेवाओं को वहाँ से निकाल कर शहरी क्षेत्र केन्द्र स्थानान्तरित कर देता है। जैसे कई कृषि उत्पादों के संसाधन से सम्बन्ध सेवायें, जैसे कपास में से बिनौले निकालना, चावलों का छिलका उतारना, या गेहूँ की पिसाई इत्यादि। इस कारण जहाँ गैर कृषि क्षेत्र में उत्पन्न होने वाली आय बढ़ जायेगी वहीं कृषि क्षेत्र में उत्पन्न होने वाली आय कम हो जायेगी।

अर्थ व्यवस्था में कृषि फार्म समस्या

जब सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था का विकास होता है तो कृषि विकास दर गैर कृषि क्षेत्र के विकास दर की अपेक्षा कम होती है। क्योंकि कृषि क्षेत्र के उत्पादों की माँग की आय सापेक्षता गैर कृषि क्षेत्र के उत्पादों की माँग की आय सापेक्षता की अपेक्षा में कम होती है। फलतः जैसे-जैसे किसी देश का अर्थिक विकास होता जाता है वैसे-वैसे कृषि क्षेत्र का देश के सकल घरेलू उत्पाद में (कृषि उत्पादन में अपेक्षाकृत कम वृद्धि दर के कारण) भाग कम होता जाता है और यदि विकास काल में कृषि क्षेत्र व गैर कृषि क्षेत्र से सम्बन्ध जनसंख्या अनुपात में कोई परिवर्तन नहीं होता जिसका तात्पर्य होगा की जैसे-जैसे अर्थ व्यवस्था का विकास होता जाता है, कृषि क्षेत्र में गैर कृषि क्षेत्र की अपेक्षा प्रति व्यक्ति वास्तविक आय भी, जो कि इन क्षेत्रों द्वारा उत्पादित की गई वस्तुओं और सेवाओं के रुप में प्रकट होती है, कम होती जायेगी।

कृषि को एक और समस्या का भी सामना करना पड़ता है, जिस समय कृषक अपने द्वारा उत्पादित की गई वस्तुओं और सेवाओं को बाजार में बिक्री करते है तथा इस प्रकार अपनी वास्तविक आय को मौद्रिक आय में परिवर्तित करने की चेष्टा करते है। वास्तव में कृषि उत्पादों की माँग की मूल्य सापेक्षता न केवल गैर कृषि उत्पादों की अपेक्षाकृत कम है बल्कि अपने आप में यह इकाई से भी कम है उनके अनुसार, कृषि उत्पादों की नाँग मूल्य सापेक्षता की यही विशेषता है, जो कि कृषि से सम्बन्धित एक प्रसिद्ध तथ्य ''समृद्धि

में निर्धनता" का कारण है। सैम्पूल्सन का मत है कि यदि मात्र एक कृषक अधिक परिश्रम करता है तथा उत्पादन में वृद्धि करता है तो वह मौद्रिक आय की दृष्टि से और धनवान हो जायेगा। लेकिन यदि सभी कृषक अधिक परिश्रम करते है तथा अधिक उत्पादन करते है तो उनमें से हर एक मौद्रिक आय की दृष्टि से पहली परिस्थिती की अपेक्षा निर्धन हो जायेगा। क्योंकि मूल्यों में अत्यधिक गिरावट ही इसका मूल कारण है।

शुल्टज के अनुसार वास्तव में यह समस्या प्रकट ही नहीं होती यदि कृषि क्षेत्र से सम्बन्ध व्यक्तियों के एक विशेष भाग को इस क्षेत्र से गैर कृषि क्षेत्र में स्थानान्तरित कर दिया जाता लेकिन कृषि क्षेत्र से सम्बन्ध व्यक्तियों की आय गैर कृषि क्षेत्र से सम्बन्धित व्यक्तियों की आय की अपेक्षा कम होने पर भी वे कृषि क्षेत्र को नहीं छोड़ सके। यदि उनका कृषि क्षेत्र से गैर कृषि क्षेत्र में स्थानान्तरण हो जाता है तो कृषि क्षेत्र में शेष व्यक्तियों की प्रतिव्यक्ति आय अन्य क्षेत्रों में प्रति व्यक्ति आय के बराबर हो जाती। तथा फार्म समस्या समाप्त हो जाती। शुल्टज इस कारण "फर्म समस्या" तथा श्रम को कृषि क्षेत्र से गैर कृषि क्षेत्र में स्थानान्तरण की समस्या को समानार्थक मानते है।

कृषि क्षेत्र की प्रति व्यक्ति आय गैर कृषि क्षेत्र की प्रति व्यक्ति आय से कम है प्रत्येक देश में कृषि क्षेत्र में उत्पन्न होने वाले "सकल घरेलू उत्पाद" का देश के सकल घरेलू उत्पाद में भाग कृषि क्षेत्र में काम कर रहे श्रम के देश के कुल श्रम के भाग से कम है। अर्थात कृषि क्षेत्र में प्रतिव्यक्ति आय अन्य क्षेत्रों के प्रति व्यक्ति आय से कम है।

शुल्टज के अनुसार तो इस समस्या का सामाधान का मुख्य उपाय कृषि क्षेत्र से श्रम का निकास, सरकार द्वारा कृषि क्षेत्र के अधीन भूमि क्षेत्र का नियंत्रित करना या कृषि में हो रहे तकनीकि विकास की विपरीत दिशा में ले जाना आदि। ऐसे उपाय फसलों के उत्पदन को कम करके कृषकों के आय को अधिक कर देंगे क्योकि कृषि उत्पादों की माँग की मूल्य सापेक्षता, साधारणतः इकाई से कम है। यह उपाय उतनी ही अवांछनीय है जितनी की कृषि उत्पादों के मूल्य को उनके कुछ भागों को समुद्र में फेक कर या विनाशकारी प्रयोग से, या उन्हें जलाकर, बढ़ाने का प्रयास करना।

अमेरिका में कई फसलों के उत्पादन को भी उनके अधीन भूमि क्षेत्र के नियन्त्रण द्वारा कम करने की चेष्टा की गई कृषकों ने इन फसलों की प्रति ट्रैक्टर को उत्पादकता को कई तरीके अपना कर बढ़ा लिया तथा इस प्रकार उनके उत्पादन में उनके अधीन भूमि के क्षेत्र की कमी के बाद भी किसी प्रकार की कटौती न हो सकी। दूसरे देशों को कृषि उत्पादों का निर्यात करना भी हल समस्या का सामाधान हो सकता हैं। अधिकांश देश जिनको यह उत्पाद निर्यात किये जा सकते है कम विकसित देश है तथा ये वही देश है जो की आज कल अपने कृषि उत्पदन को बढ़ाने में लगे हुए है। इन देशों में कृषि उत्पादों के आयात में निरन्तर कमी आने की सम्भावना है।

कृषकों की आय के प्रत्यक्ष हस्तानान्तरण द्वारा सहायता करना परन्तु जहाँ फार्म समस्या स्थाई समस्या है वही प्रत्यक्ष आय हस्तानान्तरण विधि कभी–कभी अपनाया जा सकता है। फार्म समस्या सामाधान का उचित विधि मात्र श्रम को कृषि क्षेत्र से गैर कृषि क्षेत्र में स्थानान्तरित करने का ही है। परन्तु श्रम को कृषि क्षेत्र से गैर कृषि क्षेत्र में स्थानान्तरित करना कोई आसान काम नहीं है जिसके विभिन्न कारण है –

सर्वप्रथम उन श्रमिकों की संख्या अधिक है जिनको कृषि क्षेत्र से गैर कृषि क्षेत्र में स्थानान्तरित किया जाना है। उनमें मात्र वही श्रमिक सम्मिलित नहीं है जो कि अब भी कृषि क्षेत्र से जुड़े हुए हैं अपितु वे श्रमिक भी हैं जो कि कृषि में किसी समय जुड़े हुए थे परन्तु कृषि में मशीनों के अत्यधिक प्रयोग के कारण वहाँ से विस्थापित हो गये हैं तथा इस समय वे कृषि से पूर्णतः नहीं सम्बद्ध हुए हैं। समय के साथ श्रम मशीनों के अपेक्षाकृत महँगा होता जा रहा है तथा इसीलिए उत्पादक (कृषकों सहित) श्रम के स्थान पर मशीनों का प्रयोग करने लगे हैं जिससे कृषि में भी मशीनों ने श्रम का स्थान ले लिया है। शुल्टज इसको फार्म समस्या का स्थापन पहलू की संज्ञा देते हैं। इस प्रकार के श्रम के होने के कारण, कृषि से स्थानांतरित किये जाने वाले श्रमिकों की संख्या काफी अधिक हो गयी है।

श्रमिकों के अत्यधिक संख्या के अतिरिक्त, इसको कृषि क्षेत्र से वास्तविक रुप से स्थानान्तरित करने में भी कई समस्यायें उत्पन्न होती हैं खेती के साथ दीर्घ समय से चले आ रहे सम्बद्ध नये कार्य को सीखने में बाधायें गैर कृषि क्षेत्र की अपनी अस्थिरता तथा कृषकों की एक ऐसी प्रभावी संस्था की अनुपस्थिति जो कि श्रमिकों को कृषि क्षेत्र के स्थान पर अन्य क्षेत्रों में कार्य करने हेतु प्रोत्साहन दे, आदि। ये सभी समस्यायें श्रम को कृषि क्षेत्र से अन्य क्षेत्र में स्थानान्तरित करने में बाधक सिद्ध होती हैं।

कृषि की निम्न उत्पादकता

निःसन्देह अविकसित देश की अर्थव्यवस्था प्रायः कृषि प्रधान होती है। परन्तु कृषि का महत्व होते हुए भी इन देशों की कृषि एक अकुशल व पिछड़ी हुई कृषि होती है ऐसे देशों में कृषि के पिछड़ेपन के कई कारण हैं -- जोतों का उपविभाजन व विखण्डन, अशिक्षित श्रम का रुढ़िवाद, ऋणात्मकता, अस्वस्थता, निर्बल पशु, दोषपूर्ण यन्त्र, सिंचाई की अपर्याप्त सुविधायें, अच्छे बीजों के प्रयोग का अभाव, उर्वरक व खाद की अपर्याप्त आपूर्ति, कीटाणुनाशक दवाओं का प्रयोग न होना, दोषपूर्ण भूमि धारण, अधिकारों की प्रणाली, पट्टेदारी की दोषपूर्ण शर्तें तथा अकुशल बाजार प्रणाली इत्यादि। फलतः औसत रुप से अविकसित देशों में कृषि उत्पादकता तथा उत्पादन बहुत कम होता है। वास्तव में उत्पादन मात्र कम ही नहीं होता बल्कि इसमें अधिक उच्चावचन भी आते रहते हैं। कई परिस्थितियों में खाद्यान की कम उत्पादन क्षमता देश की जनसंख्या की आवश्यकताओं को पूर्ण करने में सक्षम नहीं होते जिससे खाद्यान्न समस्या उत्पन्न हो जाती है।

दोषपूर्ण वितरण प्रणाली

किसी अविकसित देश में खाद्यान्न समस्या उस समय उत्पन्न होगी जब वहाँ खाद्यान उत्पादन में असाधारण कमी आ जाती है तथा देश में सम्पूर्ण जनसंख्या की आवश्यकताओं को पूर्ण करने हेतु पर्याप्त मात्रा में खाद्यान्न उपलब्ध है परन्तु परिवहन की दोषपूर्ण प्रणाली के कारण ये एक स्थान से दूसरे स्थान पर सुगमतापूर्वक नहीं पहुँचाये जा सकते है तथा उनका उचित प्रकार से वितरण प्रणाली का अभाव रहता है।

कृषि में नकारात्मक ढाल वाले पूर्ति वक्र का होना

नकारात्मक ढाल वाले पूर्ति वक्रों को पिछड़ी हुई कृषि की एक विशेषता मात्र माना जाता है। जबकि सभी अर्थशास्त्री अविकसित देशों में इस प्रकार के वक्र के होने से सहमत नहीं हैं। लेकिन कुछ अर्थशास्त्री मानते हैं कि खाद्यान्न या किसी और कृषि उत्पाद के मूल्यों के बढ़ने पर उसके पूर्ति में कमी आ जाती है।

स्पष्ट है कि कम विकसित देशों में खाद्यान्न समस्या मात्र इसी कारण से नहीं उत्पन्न होती की इनकी कृषि एक पिछड़ी हुई कृषि है बल्कि देश में कुछ अन्य कारण भी है जो इस समस्या को और गम्भीर बना देते है।

सन्दर्भ

रुद्र दत्त एवं के0 एम0 सुन्दरम्	:	भारतीय अर्थशास्त्र
मिश्रा एवं पूरी	:	भारतीय अर्थशास्त्र
Schultz. t. w. (1945)	:	Agriculture in unstable economy, New York Mc. Grew Hill.
Mellor, j.w. (1947)	:	Towards a theory of Agricultural Development.
Herman	:	M. southworth and Brace F Johnston(eds) Agricultural Development and Economic growth, London Cornell University press.

उद्यमिता विकास के लिये मानव संसाधन प्रबन्धन की चुनौतियाँ

✍ डॉ. श्वेता गर्ग ✍ डॉ. सत्यदेव गर्ग

वर्तमान में, विश्व भर के युवाओं और वरिष्ठों में बेरोजगारी व्याप्त है। सकल घरेलू उत्पाद के अलावा हमारा देश गरीबी से भी पीड़ित है। अगर हम इन कारकों के मुख्य कारण पर गौर करें तो पायेंगे कि उद्यमशीलता की कमी एक मुख्य कारण हैं। उद्यमशीलता को उत्पन्न करने के लिये मानव संसाधन प्रबंधन की प्रथाओं का उचित उपयोग अत्यंत आवश्यक है।

उद्यमिता के विकास के के लिए मानव संसाधन विकास प्रबंधन को कर्मचारियों की सूची रखने के अतिरिक्त व्यापक एंव कर्मप्रधान होना आवश्यक है। एक उद्यमी को अपने मानव संसाधन की कार्यप्रणाली पर ध्यान केंद्रित करना चाहिये एवं उनकी समस्याओं का समाधान तर्कसंगत नीतियों से करना चाहिए। यह उनकी क्षमताओं के पूर्ण विकास एवं उनके बेहतर प्रदर्शन के लिये प्रोत्साहित करता है। प्रोत्साहन का कार्य– उचित चयन प्रक्रिया, प्रशिक्षण, विकास एवं उचित पुरस्कार व्यवस्था से संभव है। मानव संसाधन प्रबंधन व्यक्तिगत एवं सामूहिक स्तर पर इस्तेमाल किया जाता है। जोकि उनके संबधित कार्यों में अच्छे परिणामों के लिए सहायक है। अच्छे परिणाम कर्मचारियों को ज्यादा उत्पादकता एवं सुधार के लिये प्रोत्साहित और पुरस्कृत करता है। प्रभावी मानव संसाधन प्रबंधन संगठन को उनके लक्ष्यों को पूरा करने में मदद करता है।

मानव संसाधन प्रबंधन विभिन्न स्तर के लोगों के बीच अच्छे संबंध बनाने और बनाये रखने के लिये कार्यरत है। इसके लिए उचित प्रशिक्षण एवं भिन्न–भिन्न प्रकार के कार्यों में लगातार उनके अनुभव के स्तर में सुधार करना है। मानव संसाधन प्रबंधन किसी भी संगठनात्मक निर्णय से संबंध रखता है अगर दो संबधित लोगों से जुड़ा हुआ है। यह कार्यरत लोगो के प्रबंधन से संबधित है। यह सभी प्रकार के लोगों से संबध रखता है। व्यक्तिगत काम, विभिन्न रूपो के आकार ले सकता है। मानव संसाधन प्रबंधन को सारी व्यवस्थायें बनाने के लिये अपने कर्मचारियों को एक अच्छा प्रशिक्षण देना पड़ता है। एक अच्छे प्रशिक्षण और विकास के बाद कर्मचारियों के द्वारा की गई उत्पादकता में बहुत बढ़ोत्तरी होती है जोकि कंपनियों के विकास के लिये बहुत आवश्यक है। मानव संसाधन प्रबंधन को समय–समय पर नई तकनीकियों का विकास करना पड़ता है ताकि वो अपनी कंपनी का और अपने कर्मचारियों का सही रूप से विकास कर सकें। कार्य का वितरण समय–समय पर सुचारू रूप से होना चाहिये। उद्यमिता की पहचान के लिये उचित है कि हम अपने कर्मियों की जरूरतों पर भी ध्यान केंद्रित करें। मानव संसाधन प्रबंधक को निर्णय

✍ असिस्टेंट प्रोफेसर, आर. के. जी. ई. सी. गाजियाबाद
✍ प्रोफेसर, एल. के. सी. ई. गाजियाबाद

लेने के लिये स्वतंत्र और सक्षम होना चाहिये। मानव संसाधन प्रबंधन के लक्ष्यों को यथार्थवादी होना चाहिये।

एक उद्यमशीलता की कार्य संस्कृति कर्मचारियों के कार्यों को प्रभावित करती है। मानव संसाधन प्रबंधक व्यापार रणनीति के साथ गठबंधन करता है। मानव संसाधन प्रबंधक व्यवहार उद्यमशीलता को प्रोत्साहित करता है।

उद्यमिता के लिये नवाचार, सक्रिय--अभिनव बल एवं जोखिम लेने की क्षमता जैसे गुण आवश्यक हैं। उद्यमशीलता किसी भी संगठन के कर्मचारियों को रचनात्मक व्यक्तिगत जिम्मेदारी लेने में सक्षम, सहिष्णु एवं उन्मुख बनाता है। जिससे वे अपने कार्य में स्वतंत्रता का अनुभव करें एवं अपने रचनात्मक गुणों का भरपूर उपयोग अपने संगठन के विकास के लिये करें।

व्यापार के प्रारंभिक चरण में किसी उद्यमी को जिस चुनौती का सामना करना पड़ता है वह है-- अपने कार्यबल का प्रबंधन और कार्यबल के प्रबंधन के लिये मानव संसाधन की प्रथाओं का उपयोग आवश्यक बन जाता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि उद्यमिता के लिये अगर किसी प्रारंभिक कड़ी की आवश्कता है तो वह है--मानव संसाधन प्रबंधन।

आज के दौर में उद्यमियों के विकास की बाधा उनकी पारम्परिक सोच है। जिसके लिये नई रणनीतिक सोच एवं मानव संसाधन प्रबंधन की आवश्यकता है। आज के दौर में किसी संगठन का बाजार मूल्य, परिसंपत्तियों, ग्राहक एवं ब्रांड इक्विटी पूंजी से बदलकर उस संगठन की कार्यबल पूंजी हो गया है।

मानव संसाधन प्रबंधन प्रथाओं का उपयोग कर्मचारियों की उच्च शिक्षा, प्रशिक्षण और इस तरह संगठन के मानव संसाधन के बाजर मूल्य में वृद्धि के लिये किया जा रहा है।

विकास हेतु यथार्थवादी दृष्टिकोण आवश्यक है कि मानव संसाधन के प्रबंधन के लिये रीढ़ की हड्डी साबित हो सकता है। प्रतिभा प्रबंधन पर ध्यान केंद्रित करना चाहिये, इसके लिये अभिनव प्रथाओं का उपयोग आवश्यक है। मानव संसाधन प्रबंधन का उपयोग कर्मचारी और नियोक्ता के संबंधों को बेहतर बनाने एवं उनके तालमेल को बेहतर बनाये रखने मे मददगार सिद्ध होना है।

कर्मचारी की गोपनीयता बनाये रखने, रणनीतिक मानव, दीर्घकालिक लक्ष्यों पर ध्यान केंद्रित करने, कर्मचारियों, हितधारकों के कल्याण के लिये किया जा सकता है।

लाभ एवं पुरस्कार के अलावा कर्मचारियों की किसी भी क्षतिपूर्ण हेतु मानव संसाधन प्रबंधन की अभिनव रणनीतियों के उपयोग द्वारा किया जा सकता है। मानव संसाधन प्रबंधन अपनी नई रणनीतिक

प्रथाओं के उपयोग से दोनों संगठन के कर्मचारियों में अच्छे संबंध बनाने में मददगार साबित होता है।

औद्योगिक संस्कृति आज के दौर में प्रतिभा प्रबंधन एवं प्रतिभा–संचय के ऊपर ज्यादा जोर दे रही है। मानव संसाधन प्रबंधन प्रथाओं का उपयोग संगठन की वातावरण एवं संस्कृति एवं विभिन्न कारकों को निर्धारित करने में मददगार साबित होती है।

ग्रामीण विकास में मास–मीडिया की भूमिका

✍ अमित शर्मा

मीडिया शब्द का नाम आते ही हमारे जेहन में टेलीविजन, रेडियों, समाचार पत्र व अन्य परंपरागत माध्यम घूमने लगते हैं। मीडिया से हमारा सीधा तात्पर्य उस माध्यम से है जिसके द्वारा सूचना का जाता है। अगर हम ग्रामीण विकास में मीडिया की भूमिका विषय पर जानकारी प्राप्त करेंगें तो पायेंगें कि ग्रामीण इलाकों में मुख्यतः साप्ताहिक दैनिक मासिक समाचारपत्र, मैंगजीन, तथा इलेक्ट्रानिक मीडिया के साधन जैसे रेडियो, टेलीविजन का प्रयोग बहुतायत में किया जाता है। ग्रामीण इलाको में वेव मीडिया का ज्यादा प्रचार एवं प्रसार नहीं हुआ है।

ग्रामीण इलाकों में ज्यादातर स्थानों पर समाचार पत्रों का प्रयोग मीडिया के माध्यम के रूप में किया जाता है। इसका प्रमुख कारण है कि ग्रामीण क्षेत्रों में औसत शिक्षित लोगों का निवास है और ये लोग अन्य नवीन तकनीकी व महगें माध्यमों का प्रयोग कर पाने में सक्षम नहीं है। समाचार पत्र से अन्य लाभ यह है कि इसको प्रमाण के तौर पर इस्तेमाल किया जा सकता है। गाँव की चैपाल में जब कोई राष्ट्रीय स्तर की बहस छिड़ जाती है तो ये समाचार पत्र प्रमाण के तौर पर इस्तेमाल किए जाते है। इसके अतिरिक्त ग्रामीण इलाकों में समाचार पत्रों का प्रयोग खाली समय में बहुतायत में किया जाता है।

रेडियो का प्रयोग ग्रामीण इलाकों में बहुतायत में किया जाता है क्योंकि यह सबसे सस्ता माध्यम है। इसके अतिरिक्त इसे आसानी से एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाया जा सकता है। रेडियो से एक अन्य लाभ यह है कि इसको चलाने के लिए बहुत कम तकनीकी जानकारी की आवश्यकता होती है। भारतीय ग्रामीण परिवेश में शिक्षा का प्रतिशत् बहुत ही कम होने से अशिक्षित इलाकों में इसे आसानी से अपना लिया जाता है, रेडियो के परिचालन में विद्युत की आवश्यकता का न होना इस माध्यम के सोने पर सुहागा है। टीवी एक दृष्य–श्रव्य माध्यम है ऐसा माना जाता है कि किसी जानकारी के बारे में पढ़ने से 30 प्रतिशत सूचनाए स्मरण हो जाती है इसी प्रकार सुनने से 20 प्रतिशत जानकारी स्मरण हो जाती है। तथा देखने से 50 प्रतिशत जानकारी स्मरण में आ जाती है चूकि टेलीविजन दृश्य–श्रव्य माध्यम है अतः इसमें देखने, सुनने व पढनें तीनों की सुविधा होने के कारण कुल मिलाकर 100 प्रतिशत जानकारी को याद आ जाना चाहिए पर व्यावहारिक जीवन में यह संभव नहीं होने पर भी यह एक प्रभावी माध्यम बन कर सामने आया है। ग्रामीण क्षेत्रों में विद्युत की पूर्ण व्यवस्था न हो पाने की स्थिति में इस बहुउपयोगी माध्यम का विस्तार एक सीमा तक ही संभव हो पाया है। इस बहुउपयोगी माध्यम का विस्तार करने के लिए सरकार व्यापक कदम उठा रही है। हक्सले ने टीवी की लोकप्रियता को देखते हुए इसे मानव संस्कृति पर आक्रमण की संज्ञा तक दे डाली। 15 सितंबर 1959 को भारत में वह स्वर्णिम दिन भी आया जब यहाँ पर टेलीविजन

✍ Lecturer, Journalism and Mass communication, Brahispati Mahila Mahavidyalaya Kanpur

का प्रथम सफल प्रसारण किया गया।

सर्वप्रथम यूनेस्को ने ग्रामीण विकास एवं शिक्षा के लिए 2200 टेलीविजन सेट दिए। इनको गुजरात, हरियाणा, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश के गावों में स्थापित कर टेलीविजन क्लब की स्थापना की गयी, इसमें दर्शकों की संख्या काफी अधिक थी। इसमें केवल शिक्षा व सूचनात्मक कार्यक्रमों का प्रसारण किया जाता था। प्रारम्भ में टेलीविजन का प्रसारण का समय काफी कम एक से दो घण्टे था। कार्यक्रम शुरू होने के एक घण्टे पहले से ही गाँव के लोगों का जमावाड़ा टेलीविजन सेट के सामने लग जाता था। उस समय टेलीविजन सेट को अजूबा या उससे भी कहीं अधिक समझा जाता था। टेलीविजन शब्द दो शब्द टेली तथा विजन से मिलकर बना है जिसका शाब्दिक अर्थ है दूर का दर्शन। भारत के सन्दर्भ में टेलीविजन के राष्ट्रीय प्रसारण को दूरदर्शन कहा जाता है। हमारे देश में दूरदर्शन सत्यम शिवम् सुन्दरम की परिकल्पना पर आधारित है। वर्तमान समय में दूरदर्शन पर ऐसे कार्यक्रमों का प्रसारण किया जाता है जिनका सीधा सरोकार ग्रामीण विकास से है। मीडिया की विकास में उपयोगिता को देखते हुए यूनेस्को ने सीन मैकब्राइड के नेतृत्व में एक कमीशन गठित किया जिसका रिर्पोट "मैनी वाइसेंस, वन वर्ड" में इस बात का खुलासा हुआ कि विश्व के सूचना तंत्र पर यूरोपीय देशों (प्रथम विश्व) का 80प्रतिशत व शेष विश्व का केवल 20 प्रतिशत अधिकार है। एटीएन (द एशियन टेलीविजन नेटवर्क) की स्थापना जुलाई 1992 में प्रथम विश्व के मीडिया पर वर्चस्व को तोड़ने के उददेश्य से की गयी है।

देश के ग्रामीण क्षेत्रों में वेव मीड़िया का प्रचार ज्यादा नहीं हुआ है। इसके पीछे मुख्य कारण अशिक्षा, गरीबी, व विद्युत समस्या है। भारत एक कृषि प्रधान देश है अतः ज्यादा से ज्यादा जानकारी मीडिया को देना प्रथम कार्य है। इसी सन्दर्भ में ई–चौपाल का प्रारम्भ हुआ जिसके द्वारा कृषक कृषि सम्बन्धी जानकारी घर बैठे आसानी से प्राप्त कर सकतें है या वे भारत के किसी भी बाजार का भाव पल भर में प्राप्त कर सकते है, इसके अलावा कई प्रकार की सहूलियत का साथ इंटरनेट माध्यम ने ग्रामीण परिवेश में प्रवेश किया, बस समस्या यह है कि इसको चलाने के लिए एक प्रशिक्षित कम्प्यूटर आपरेटर की आवश्यकता पड़ती है।

ग्रामीण परिवेश में सदियों से ही परंपरागत संचार एक प्रभावी माध्यम के रूप में अपने को प्रस्तुत करता रहा है। भारत में लगभग 500 परंपरागत लोकनृत्य पाये जाते हैं, गुजरात का गरबा, पंजाब का भागडा, राजस्थान का गैरनृत्य, उत्तरप्रदेश की रामलीला, रासलीला, नौटंकी, बंगाल का जात्रा आदि इसके प्रमाण हैं जो सदियों से जनसंचार का सशक्त माध्यम का दर्जा लिए रहे हैं।

ग्रामीण विकास में सहयोग करने वाली कुछ प्रमुख एन जी ओ एवं बैंक संगठन :–

UNICEF

UNESCO

CIRDAP

AARDO

UNESCAP

WORD BANK

ADB

UNDP

DRMAS

NABARD

HUDCO

INTERNATION CO-OP

INTERNATION SITES OF RD

इन संगठनों ने किसी न किसी रूप में मीडिया के द्वारा ही विकास के रास्ते पर अपना रूख किया है।

ग्रामीण विकास में मीडिया की भूमिका विषय पर लघु शोध प्रबन्ध तैयार करने में निम्न सुझाव सामने आये हैं –

1. मीडिया ग्रामीण विकास में उपयोगी भूमिका निभा रहा है परन्तु यदि सरकारी एवं प्राईवेट सेक्टर के मीडिया संस्थान थोडी और नरमी बरते तो परिणाम और ज्यादा अच्छे हों।
2. मीडिया के विस्तार ग्रामीण क्षेत्रों में और ज्यादा होना चाहिये।
3. मीडिया के दबाव में विकास कार्य ज्यादा प्रगतिशील ढंग से होता है अतः हमें ग्रामीण क्षेत्रों में मीडिया को पूर्ण सहयोग देना चाहिये। मनरेगा जैसे विकासपरक् कार्यक्रम पर अगर मीडिया की नजर रखी जाये तो परिणाम और ज्यादा प्रभावी आयेंगें।
4. मीडिया के कारण ग्रामीणों ने शिक्षा के महत्व को समझा है इस तरह स्पष्ट हो जाता है मीडिया ने ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा के प्रचार प्रसार में उपयोगी भूमिका निभाती है।
5. ग्रामीण स्तर पर अभी भी एक बड़ा ग्रामीण समुदाय नवीन संचार तकनीकी यानि इंटरनेट से अनभिज्ञ है। यदि वास्तविक रूप से ग्रामीण क्षेत्रों का विकास बिना इंटरनेट के संभव नहीं दिखता अतः सरकार को चाहिये की इंटरनेट से लगभग सभी ग्रामीणों को फेमलियर कराया जाये।
6. इस बात को भी ध्यान रखा जाये कि ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं के बढ़ावे या ज्यादा ध्यान दिया जाये क्योंकि महिलायें ही ग्रामीण विकास में सबसे प्रबल भूमिका अदा करती है।

बाल श्रमिक एक भयावह समस्या एवं चुनौतियाँ

✍ श्रीमती नीतू जैन

बाल श्रम भारत की भयावह ज्वलंत समस्या है। भारतीय संविधान की धारा 24 के द्वारा 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को काम पर लगाने से रोक , 20 नबम्बर 1989 को 'संयुक्त राष्ट्र महासभा' द्वारा 'बाल अधिकार' घोषणा 10 दिसम्बर 1986 को माननीय उच्चतम् न्यायालय द्वारा बाल मजदूरी को गैर कानूनी घोषित करने के बाबजूद अधिकांश बालकों को सामाजिक परिस्थितियों एवं आर्थिक विषमता के कारण शिक्षा प्राप्त करने के बजाय श्रमिक बनना पड़ता है।

बाल श्रमिक अथवा बाल मजदूरी से तात्पर्य समाज में व्याप्त उस गलत व्यवस्था से है जिसमें कम आयु के छोटे बच्चे अपनी इच्छा के विपरीत अथवा विवशता के कारण छोटी उम्र में ही मजदूरी करने के लिए विवश हो जाते है। एक सर्वे के अनुसार कोई भी बालक अपनी इच्छा से इस उम्र में श्रम नहीं करना चाहता है, किंतु हमारे समाज में फैली असमान आर्थिक व्यवस्था एवं बिगड़ते असमाजिक ढांचें के कारण ही इस बुराई का जन्म हुआ है और बाल मजदूरी जैसे अनैतिक कार्य को बढ़ावा मिला है।

बाल मजदूरी कहाँ से उत्पन्न होती है ? इसका सीधा सा एक ही उत्तर है गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले घर परिवारों से। फिर चाहे ऐसे घर परिवार ग्रामीण हो या शहरी झुग्गी झोपड़ियों मे रहने वाले, दूसरे अपने घर परिवारों से गुमराह होकर आए बालक। पहले वर्ग की विवशता तो समझ में आती है कि वे लोग मजदूरी करके अपने घर परिवार के अभावों की खाई पाटना चाहते हैं। यद्यपि उन्हें पढ़ने लिखने के अवसर एवं सुविधाऐं नहीं मिल पाती है। किंतु गुमराह होकर बालमजदूरी करने वाले वर्ग के साथ कई प्रकार की कहानियाँ एवं समस्यायें जुड़ी रहा करती हैं, जैसे पढ़ाई में मन न लगना या फेल हो जाने पर मार के भय से भाग जाना, सौतेली माँ या पिता के कठोर व्यवहार से पीड़ित होकर घर त्याग देना, बुरी आदतों तथा बुरे लोगों की संगति के कारण घरों में न रह पाना या फिर कामचोरी आदि कारणों से घर से भागकर मजदूरी करने के लिए विवश हो जाना पडता है। किंतु बच्चों को किसी भी कारण से मजदूरी करनी पड़े, इसे मानवीय नहीं कहा जा सकता है।

बालश्रम विश्वव्यापी समस्या है जिसका पूर्णतः निराकरण असंभव नहीं कठिन अवश्य है ,क्योकि हम अपनी आर्थिक सामाजिक एवं पारिवारिक परिस्थितियों से मुँह नहीं मोड़ सकते हैं तथापि निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किए जा सकते जिन्हे अपनाकर बालश्रम की समस्या काफी हद तक दूर हो सकती है। ये सुझाव निम्न है –

बालश्रम के स्थान पर व्यस्क श्रम अपनाया जाए जिससे गरीबी का प्रमुख कारण बेरोजगारी एवं विशाल समाप्त होगी।

✍ शोध छात्रा, अर्थशास्त्र, भोज विश्वविद्यालय, भोपाल

मानव अधिकार आयोग की भांति एक राष्ट्रीय बालश्रम आयोग की स्थापना करना। जिससे प्रतिष्ठित शिक्षाविद एवं कानूनविद सम्मिलित हों। अपने निर्णयों का पालन कराने के लिए इस राष्ट्रीय बालश्रम आयोग को समुचित न्यायिक तथा वित्तीय अधिकार प्रदान किए जाए।

देश में छह करोड़ बच्चे ऐसे हैं जिन्हें अपने मूल अधिकारों से वंचित रखा जा रहा है। शिक्षा उनका मूल अधिकार है लेकिन उसके बदले उन्हे कठोर परिश्रम करना पड़ता है। संयुक्त राष्ट्र द्वारा पारित बाल अधिकार के अनुच्छेद 32 तथा भारतीय संविधान के अनुच्छेद 45 के अनुसार इन बच्चों को इस दिशा से तुरंत मुक्ति मिलनी चाहिए एवं उसके लिए शिक्षा का तुरंत प्रावधान होना चाहिए।

जिस प्रकार से सन् 2000–2001 तक सभी को रोजगार, सभी को को स्वास्थ्य एवं सभी को शिक्षा प्रदान करने का लक्ष्य रखा गया है ठीक उसी प्रकार 2005 तक सभी बालश्रमिकों को मुक्ति प्रदान कर उनके लिए उचित शिक्षा एवं पुर्नवास करने का दृढ़ संकल्प रखा गया था जिससे बाल श्रमिक उपेक्षात्मक एवं शोषणात्मक जीवन छोडकर मानवीय जीवन जी सके, जो अभी तक पूर्ण नहीं हो सका है।

बालश्रमिकों को काम से हटाने के पश्चात् उनके पुर्नवास की ओर भी विशेष ध्यान केंद्रित करना होगा अन्यथा बाल मजदूर जीविका के साधनों से वंचित होकर असामाजिक कार्यो में लिप्त होगें एवं समाज के सामने अनेक समस्यायें उत्पन्न करेंगे।

प्रत्येक मुक्त हुए बालश्रमिक के लिए निःशुल्क शिक्षा के साथ–साथ खाद्यान्न एवं छात्रवृत्ति का प्रावधान किया जाए। इससे एक ओर जहाँ अभिभावक अपने बच्चों को विद्यालय भेजने में अधिक रूचि लेंगे तथा परिवार की अन्य सुरक्षा भी बढ़ेगी वहीं विद्यालय त्याग दर में कमी होगी तथा नामांकन दर में उत्तरोत्तर वृद्वि होगी। यह सब आर्कषक एवं रूचिपूर्ण प्राथमिक शिक्षा से ही संभंव है।

भारतीय संविधान में उल्लिखित 6 वर्ष से 12 वर्ष तक के बच्चों के लिए सार्वभौमिक अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा का प्रावधान सुनिश्चित करना होगा। इसके अनुपालन के लिए संविधान में संशोधन कर सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा को मूल अधिकार एवं साथ ही साथ अभिभावक के लिए मूलभूत उत्तरदायित्व घोषित किया जाए ।

बाल मजदूरों के अशिक्षित माता पिता के लिए प्रौढ़ शिक्षा की व्यवस्था करना जिससे वे बच्चों के भविष्य के संबंध में सकारात्मक चिंतन कर सकें ।

आयोग अधिनियम एवं कानून निश्चित रूप से बाल श्रम को रोकने में सहायक सिद्ध हो सके लेकिन आवश्यकता इस बात की है कि बालश्रमिक के प्रति मानवीय दृष्टिकोण रखा जाए क्योंकि बाल श्रम को दृढ़ इच्छाशक्ति एवं सहयोग के द्वारा ही दूर किया जा सकता है न कि दबाब से।

उपर्युक्त सुझावों में से बहुत से सुझाव तो लागू भी हो गए हैं पर ऐसा लगता है कि तमाम नियम कानून बनाने के बाद भी हम इस समस्या को नहीं सुलझा पाए हैं यह समस्या दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है ।

बाल श्रमिकों को श्रम से मुक्त कर उनका कल्याण करने संबंधी तमाम शासकीय योजनाऐं बेमानी साबित हो रही हैं। व्यापारिक प्रतिष्ठानों, भट्टो, ढांबों आदि पर बालश्रमिकों का शारीरिक व मानसिक शोषण किया जा रहा है यह बाल श्रमिक बंधुआ मजदूर जीवन जीने को विवश है। सबसे दुखद बात तो यह है कि जिन हाथों में खेलने के लिए खिलौने और पढ़ने के लिए कलम होना चाहिए उन हाथों में झूठे बर्तन या कपड़े थमा दिए जाते हैं। सरकार द्वारा बनाए गए नियम कानून भी बाल श्रम को रोकने में कामयाब नहीं हो रहे हैं।

उल्लेखनीय यह है कि शासन ने बाल मजदूरी को समाप्त करने के लिए वर्ष 1997 में एक सर्वेक्षण अभियान चलाया था। प्रारम्भ में इस अभियान के दौरान बाल श्रमिकों का पता लगाने का कार्य किया था, लेकिन समय के साथ–साथ शासन की यह योजना ठंडे बस्ते में चली गई। स्थिति यह है कि बालश्रमिक आज भी अपनी बेहाली पर आंसू बहा रहे हैं। बाल श्रमिकों की दशा सुधारने एवं उनको शिक्षित करके समाज की मुख्य धारा से जोड़ने के उद्देश्य से जिला प्रशासन ने तहसील स्तर पर कुछ समय पूर्व समितियां गठित करने का आदेश दिया था। इन समितियों में प्रशासन के अधिकारी व जनप्रतिनिधि शामिल थे, लेकिन किसी को दिलचस्पी न होने की वजह से यह योजना कागजों पर सिमठ कर रह गई ।

जिले में श्रम एवं प्रर्वतन विभाग के तमाम छात्रों के बाबजूद बंधुआ और बालश्रमिकों की संख्या में कोई कमी नहीं आई है। इतना ही नहीं नगर में छोटा मोटा काम करने वाले बच्चों की संख्या में काफी इजाफा ही है, पहले गरीब घरों के बच्चे छोटे मोटे होटलों या किसी ढावे पर ही कार्य करते देखे जाते थे लेकिन आबादी बढ़ने से यह समस्या और भी जटिल हो गई है। आर्थिक मंदी का शिकार निर्धन वर्ग के लोग अपने बच्चों के भविष्य को लेकर चिंतित हैं लेकिन उनकी पहली प्राथमिकता अपने बच्चों का पेट पालने की है। यही कारण है कि आज ये गरीब परिवार अपने बच्चों को किसी न किसी काम में लगाना चाहते है। अधिकांश बच्चे निम्न परिवारों के है। यह लोग पेट की खातिर किसी भी तरह का काम करने के लिए मजबूर हो जाते हैं। इन बच्चों को बेतदारी, रद्दी कागज, टीन डिब्बा, प्लास्टिक आदि ढूंढते हुए कभी भी देखा जा सकता है। यह बच्चे उन स्थानों पर भी काम करते हुए देखे जा सकते हैं जहां उनकी जान को हमेशा खतरा रहता है। इन प्रतिष्ठानों के संचालक भी उनसे 12 घंटों से अधिक काम लेते हैं। इसके बावजूद यह लोग उन्हें उचित मजदूरी नहीं देते हैं।

इतना ही नहीं आर्थिक रूप से कमजोर बच्चों को शोषण से बचाने के लिए सरकार द्वारा बालश्रम विद्यालय की स्थापना भी की गई जिससे वो शोषण से बच सकें और स्वनिर्भर हो सकें पर इस योजना का लाभ भी उन्हें नहीं मिल पा रहा है ऐसा लगता है सरकार की बालश्रम विद्यालय परियोजना केवल कागजी आंकडों के मकड़जाल में फंसकर रह गई है ।

हर माता पिता की इच्छा होती है उसका लाल खूब पढ़े। पढ़ लिखकर इतना काबिल बन जाए कि परिवार की जिम्मेदारियों को ठीक ढंग से संचालित कर सके लेकिन समाज का एक वर्ग ऐसा भी है जो अपने नन्हे मुन्ने के हाथों में कलम किताब को थमाने की आयु में हथौडा और प्लाश थमा देते हैं।

यदि यही स्थिति रही तो एक दिन ऐसा आएगा कि 'सोने की चिडिया' कहा जाने वाला देश एक दिन मजदूरों का देश कहा जाने लगेगा। हमें यह स्थिति आने से पूर्व ही मिलजुलकर कोई ठोस कदम उठाने पड़ेगें। हम सोचते रहे कि ये काम तो सरकार का है सरकार ही इस समस्या का समाधान करे पर ऐसा नहीं है सरकार ने तो अपनी तरफ से कई नियम कानून बना दिए हैं परन्तु उन नियमों का पालन न होने का कारण क्या है। कारण हम ही लोग है जो नियमों का पालन नहीं करते हैं। यदि हम पूर्ण ईमानदारी से उन नियमों का पालन करे और संकल्प करें कि हम अपने घरों में या फैक्टरियों में बाल मजदूरों को नहीं लगाएगें। यदि कोई बालक मजदूरी के लिए हमारे पास आता भी है तो हम उसकी आर्थिक रूप से सहायता बिना मजदूरी कराकर दें और उसे स्कूल जाने के लिए प्रेरित करें तो वह दिन दूर नहीं जब हमारे देश से बालमजदूरी नाम के कलंक का नामोनिशान तक मिट जाएगा।

किसी भी शिशु के जन्म से व्यस्क होने तक के बीच की अवस्था अत्यन्त कोमल और संवेदनशील होती है। इसी बालपने की अवस्था में बालक को अपने भविष्य व जीवन की सही दिशा व दशा का ज्ञान होना आवश्यक होता है। अनेक ऋषिमुनियों से लेकर विद्वानों ने बच्चों की तुलना कच्ची मिट्टी से करते हुए कहा है कि बच्चा उस कच्ची मिट्टी के समान है जिसे जिस रूप व आकार मे ढाला जाए वह उसी के अनुसार बन जाता है। बच्चों को कोमल फूल व पौधे के समान भी माना गया है, जिसकी अगर सही प्रकार से देखभाल न हो तो वे मुरझा जाते हैं व समय से पहले नष्ट हो जाते हैं। हम सभी का कर्तव्य बन जाता है कि हम बच्चों व राष्ट्र के भविष्य की रक्षा करें तथा बाल मजदूरी जैसी बुराई को जड़ से समाप्त करें।

संदर्भ ग्रंथ सूची

बाल श्रम अपराध एवं समाधान (डॉ हरिदास रामजी शेण्डे 'सुदर्शन')
भारतीय संविधान की धारा 24
बालक (श्रम गिरवीकरण) अधिनियम 1933
यूनीसेफ की रिपोर्ट 1977
दैनिक जागरण, 14 दिसम्बर 2008
भारतीय संविधान का, अनुच्छेद 45
राजएक्सप्रेस, 10 फरवरी 2009

इक्कीसवीं सदी में बालश्रम : चुनौती एवं समाधान

✍ प्रभाकर कुमार द्विवेदी

किसी भी राष्ट्र के विकास एवं प्रगति में बच्चों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है बच्चे देश के भावी कर्णधार होते हैं अतः बालकों का समुचित शारीरिक मानसिक शैक्षिक विकास करके ही वास्तविक अर्थों में विकास की संकल्पनाओं को पूरा किया जाना संभव है। आज सारा विश्व बाल श्रम की समस्या से जूझ रहा है जहां तक भारत का प्रश्न है स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद निरन्तर किए जा रहे प्रयासों के बावजूद यह समस्या एक चुनौती बनी हुई है विचारणीय प्रश्न यह भी है बालश्रमिकों को कार्यस्थलों पर जिन परिस्थितियों में कार्य करना पड़ता है वे भयावह व चिन्ताजनक है। प्रस्तुत शोध आलेख इक्कीसवीं सदी में बालश्रम के परिदृश्य को रेखांकित करते हुए समाधान ढूढने की एक कोशिश है।

" जिस देश में बच्चों का कोई भविष्य नहीं होता।
उस देश का अपना भी कोई भविष्य नहीं होता "

बच्चे किसी भी देश के भावी संसाधन और भविष्य होते हैं समाज और देश अपने बच्चों का जिस प्रकार पालन पोषण करेगा, शिक्षाप्रदान करेगा संस्कारिक बच्चे देश और समाज को उसी के अनुरूप प्रतिफल देगें जिस उम्र में बच्चों को स्कूल के डेस्क पर बैठे कर अपना पाठ याद करना चाहिए तथा एक आदर्श नागरिक बनने के लिए सुसंस्कार ग्रहण करने चाहिए, उसी उम्र में ये बच्चे होटल, ढाबों और रेस्टोरेन्टों की मेजे साफ करते हैं, कप–प्लेट, जूठे और जले अपने वजन से भी बड़े बर्तन धोते हैं कल–कारखानों फैक्ट्रियों में दूषित वातावरण में खतरनाक मशीनों से जूझते है तथा मालिकों व अपने सेवा योजकों की झिड़कियॉ सुनते हैं प्रताड़ना झेलते हैं।

प्राचीनकाल में बाल श्रम को सामाजिक बुराई के रूप में नहीं माना जाता था क्योंकि राजतंत्रीय युग में प्रजा व शासक के बीच एक भी स्वामी सेवक के संबंध की मर्यादाएं होती थी और सामन्ती युग में बच्चे अपने माता–पिता के साथ कृषि कार्य, पशुपालन व लघुउद्योगों आदि के कार्यों में लगे रहते थे, गुलामी व दासता का जीवन आम आदमी की नियति थी। तभी तो अरस्तु जैसे राजनीति विज्ञान के पुरोधा विचारक ने दासों को सजीव सम्पत्ति व दास प्रथा को "प्राकृतिक माना" था लेकिन जैसे–जैसे परिस्थितियाँ बदली प्रजातंत्र की बयार चलना शुरू हुई मानव अधिकारों को महत्व प्राप्त होने लागा मानव अधिकार घोषणा–पत्र (10 दिसम्बर 1948 संयुक्त राष्ट्र संघ में) के अस्तित्व में आने के बाद से मानवता मानव द्वारा शोषण अपराध घोषित कर दिया गया सभी देशों से आग्रह किया गया कि वे मानव अधिकारों की रक्षा सुनिश्चित करें।

✍ शोध छात्र टी. आर. एस. महाविद्यालय, रीवा (म. प्र.)

जहां तक बाल श्रम का प्रश्न है यह एक विश्वव्यापी जटिल और विकराल समस्या है तथा इक्कसवीं सदी के लिए एक चुनौती भी। इस समस्या ने लोगों का ध्यान तब आर्कषित किया जब औद्योगिक क्रांति के बाद पूंजीपतियों के द्वारा मुनाफा बढ़ाने के उद्देश्य से बच्चों का तीव्रगति से सामाजिक व अमानवीय शोषण प्रारम्भ किया गया। इग्लैण्ड में चार्टिस्ट आन्दोलन ने सर्वप्रथम बालश्रम की अमानवीय प्रक्रिया की ओर विश्व का ध्यान आकृष्ट किया, विक्टर ह्यूगो, आस्कर वाइण्ड आदि साहित्यकारों ने अपने साहित्य के माध्यम से इस विषय को गंभीरता प्रदान की। अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के आंकलन के अनुसार सारे विश्व में लगभग 25 करोड़ बाल श्रमिक हैं। इनमें से 61 प्रतिशत बाल श्रमिक एशिया महाद्वीप में निवास करते हैं। विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत् बाल श्रमिक के गरीबी परिवार का वातावरण वर्तमान शिक्षा प्रणाली अज्ञानता, बेरोजगारी औद्योगिकरण एवं नगरीकरण के कारण कार्य करने के लिए मजबूर हैं।

विरोधाभास यह है कि जैसे–जैसे राष्ट्र विकास की डगर पर बढ़ रहे हैं उसी गति से बाल श्रमिकों की संख्या भी बढ़ रही है। आज विश्व में बाल श्रमिकों की अधिकतम् संख्या अफ्रीका में है इसके बाद एशिया और लैटिन अमेरिका की बारी आती है मगर श्रम शक्ति में बच्चों की अधिकतम् संख्या भारत में है। यूनिसेफ के प्रतिवेदन के अनुसार–बच्चे प्रत्येक प्रकार का काम करते हैं मलेशिया में बच्चे कीड़े–मकोड़ों व सॉपों के बीच रबर के उद्यानों में कार्य करते हैं अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के प्रतिवेदन के अनुसार–कुछ विकासशील देशों में कुल श्रम का एक–तिहाई खेतिहर मजदूर बच्चे हैं। ब्राजील में गन्ना काटने का कार्य तथा चारकोल की भट्टियों में कार्य करते हैं। तंजानिया में कॉफी चुनने का कार्य करते है, पुर्तगाल में भवन निर्माण, मोरक्कों व भारत में कालीन में गाँठे बांधनें का कार्य करते हैं, फिलीपींस में मछली पकड़ने के लिए समुद्र में गोता लगाकर जाल फैलाने में सहायता करते देखे जा सकते हैं। बंगलादेश में ईंटे बनाने, पत्थर तोड़ने साइकिल की मरम्मत करने कूड़ा–कचरा बटोरने खेतों व बागानों में कार्य करते हैं। आइवरी कोस्ट और दक्षिण अफ्रीका में हीरे व सोने की खानों में, कोलंबिया में सोने की खानों व ईंट उद्योग में इंडोनेशिया में तंबाकू के बगानों और थाइलैण्ड में गन्ने और रबर के बागानों में बाल श्रमिक काम पर रखे जाते हैं।

जहां तक हमारे देश का प्रश्न है स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही कई समस्याएं– गरीबी, बीमारी, बेरोजगारी, जनसंख्या विस्फोट, भ्रष्टाचार, कालाधन, भिक्षावृत्ति, वैश्यावृत्ति, दहेज प्रथा, बाल विवाह श्रम शोषण, अपराध और अपराधी बालश्रम और बाल अपराध आदि चुनौती के रूप में थी। भारत में गंभीरता के साथ इन सभी चुनौतियों से निपटने के लिए प्रयास प्रारम्भ किए गए। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 24 में न कवेल बाल श्रम का निषेध किया गया बल्कि 14 वर्ष से कम उम्र के बालकों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का दायित्व नीति निर्देशक सिद्धान्तों के माध्यम से राज्यों को सौंपा गया अनुच्छेद 14, अनुच्छेद 15 (3), अनुच्छेद 21, अनुच्छेद 21 (क), अनुच्छेद 23, 24, 29 (2), 32, 39 (ड.) 39 (ब) 41, अनु0 45 संशोधित 2002 अनुच्छेद 47 अनुच्छेद 51 (क2) आदि के माध्यम में बालकों के संवैधानिक संरक्षण की व्यवस्था की गई, इसके साथ ही विभिन्न अधिनियमों यथा–भारतीय दण्ड विधान की धारा (82) दंड प्रक्रिया संहिता की धारा (125) संरक्षक एवं परिपाल्य अधिनियम, (1890) हिन्दू दण्ड के ग्रहण एवं

भरणपोषण अधिनियम (1956) कारखाना अधिनियम (1948) जन्म–मृत्यु पंजीकरण अधिनियम (1969) बाल विवाह निषेध (संशोधन) अधिनियम 1978 शिशु अधिनियम (1961) किशोर न्यायालय अधिनियम 1986 संशोधित (2000) बालश्रम (प्रतिषेध तथा विनियमन) अधिनियम (1986) प्रसवपूर्व जांच अधिनियम (1994) यथा संशोधित (2002) बालश्रम निषेध विषयक केन्द्रीय अधिसूचना (2006) बाल अधिकार संरक्षण आयोग (प्रस्तावित 2006) गठित (मार्च 2007) बाल विवाह निषेध अधिनियम (2006) बच्चों के विरूद्ध अपराध अधिनियम (2006) किशोर न्याय संशोधन अधिनियम (2006) आदि अधिनियमों के माध्यम से देश में बच्चों के समुचित विकास, उनके अस्तित्व की रक्षा व उन्हे पोषण एवं अन्याय से निजात दिलाने का प्रयास किया गया है, इसके साथ ही संयुक्त राष्ट्रसंघ के अनुदानों व केन्द्र राज्य के सहयोग से बाल कल्याण की कई योजनाओं (यथा कन्या विद्याधन योजना, निःशुल्क स्कूली यूनीफार्म योजना कन्या विवाह अनुदान योजना, उत्तरप्रदेश अपनी बेटी अपना धन योजना, छात्राओं हेतु निःशुल्क साइकिल योजना बालिका अभिभावक पेंशन योजना, लाड़ली बेटी योजना, हरियाणा, छात्राओं हेतु सावधि जमा योजना, मुख्यमंत्री कन्यादान योजना झारखण्ड, मेधावी बालिकाओं निःशुल्क स्कूटर योजना, इंदिरा सूचना शक्ति योजना, छत्तीसगढ़ सूचना पर पुरस्कार योजना, कुंवर वाइनुं मामेरू योजना गुजरात, बालिका संरक्षण योजना आंध्रप्रदेश, छात्राओं हेतु निःशुल्क पोषक योजना बिहार, आपकी बेटी योजना राजस्थान, गांव की बेटी योजना, प्रतिभा किरण योजना म0 प्र0 के माध्यम से बालिकाओं के कल्याण का लक्ष्य पूरा करने की कोशिश की जा रही है। लेकिन इन सबके बावजूद भारत में इक्कीसवीं सदी के प्रवेश की पूर्व संध्या पर यह चुनौती ज्वलंत रूप में विद्यमान है। जो इस तालिका से स्पष्ट है :–

भारत में बाल श्रमिकों की संख्या

सन् 1971	सन् 1981	सन् 1991	सन् 2001
1 करोड़ 57 लाख	1 करोड़ 11 लाख	1 करोड़ 42 लाख 18 हजार 588	1 करोड़ 26 लाख

भारत सरकार के श्रम मंत्रालय द्वारा 1996 में किए गए अध्ययन के अनुसार देश में 4.40 करोड़ बाल श्रमिक हैं। अर्न्तराष्ट्रीय श्रम संगठन के अनुसार – भारत में 2.5 करोड़ बाल श्रमिक हैं जिसमें 12 करोड़ बच्चे पूरे समय काम करते हैं विश्व बैंक की मानव विकास रिपोर्ट के अनुसार भारत में 10 से 14 करोड़ के बीच बाल श्रमिक हैं। इनमें से 05–14 वर्ष आयु वर्ग के बच्चों की संख्या लगभग 12.13 करोड़ है। जिनमें गिट्टी खदान, क्रेशर व्यवसाय में 30 प्रतिशत होटल चाय की दुकानों में 20 प्रतिशत घरेलू कार्यों में 28 प्रतिशत ईंट के भट्टें/कालीन उद्योग में 20 प्रतिशत तथा अन्य कार्यों में 02 प्रतिशत बाल श्रमिक कार्यरत हैं। यहाँ बालश्रम को बढ़ावा देने वाले कई सामाजिक, आर्थिक, व्यावसायिक गरीबी बेरोजगारी तथा अशिक्षा घोर दरिद्रता परिवारों को बड़ा आकार, कम मजदूरी उद्योग मालिकों का दृष्टिकोण श्रमिक संगठनों का दृष्टिकोण स्वयं बाल श्रमिकों की मनोस्थिति आदि हैं।

यह तथ्य ध्यान देने योग्य हैं कि नियोक्ता के सामने यदि बच्चे और बड़े दोनों हों तो वे बच्चों को नौकरी देना अधिक पसंद करते हैं जिससे बाल मजदूरी को बढ़ावा मिलता है। कालीन उद्योगों के मालिकों के अनुसार–बच्चे छोटी–छोटी उंगलियों व उनके लचीलेपन के कारण कालीन में शीघ्रता से व अधिक गाठें लगाते हैं। चाय बागान के मालिकों के अनुसार–बच्चों के लिए चाय की पत्तियां तोड़ना आसान है क्योंकि उनकी उंगलियां मुलायम होती हैं और चाय की झाड़ियों तक पहुंचती है। चाय बागान के श्रम संघों की भी सोच है कि यदि अधिकारी या मालिक बच्चों को काम पर नहीं रखेंगे, तो बाहर से मजदूर लाए जाएंगे और स्थानीय लोगों को मजदूरी मिलने में दिक्कत होगी। बच्चे आज्ञाकारी होते हैं उनसे किसी भी तरह का काम लिया जा सकता है साथ ही बड़े मजदूर कार्य के घंटे और छुट्टी के अधिकारों व अपने पारिश्रमिक के प्रति ज्यादा सजग रहते हैं। जबकि इनकी अपेक्षा बच्चों से नियोक्ता जब तक चाहे काम कराते रहते हैं। कई काम वे–बड़ों से बेहतर ढ़ंग से करते हैं। लाभ हानि और वेतन स्तर के बारे में अबोध होते हैं। अपने वर्तमान और भविष्य के बारे में निर्णय लेने की समझ भी उन्हें नहीं होती। घरेलू कार्यों में लगे हुए बाल मजदूरों का भविष्य सबसे अधिक शोचनीय है। ये अपने माता पिता से महीनों बाद मिल पाते हैं। भावनात्मक तनाव में गुलामी की जिंदगी बिता रहे ये बच्चे कई मानसिक और शारीरिक बीमारियों के शिकार हो जाते हैं। विडम्बना यह है कि जीवन की सारी सुविधाओं को देखते हुए ये स्वयं सुविधओं से वंचित रहते हैं। कुछ नियोक्ता घरेलू बाल नौकरों से जानवरों से भी बदतर व्यवहार करते हैं। घरेलू नौकर यदि बच्चियों होती हैं तो दैहिक शोषण के साथ–साथ उन्हें नियोक्ता तथा उनके सगे संबंधियों व इष्ट मित्रों की घूरती आंखों का भी सामना करना पड़ता है। बाल मजदूरी के कारण बच्चे शिक्षा से वंचित रह जाते हैं। शिक्षा के अभाव में अकुशल रह जाते हैं और ऐसे में हीन भावना का जीवन जीने के लिए विवश रहते हैं। बंधुआ मजदूरों के रूप में काम करने वाले बच्चों का शोषण और भी अधिक होता है। अथक् शारीरिक परिश्रम करने से बच्चे का विकास रूक जाता है। मानसिक विकास पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। क्योंकि गुलामी का जीवन जीते हुए बच्चों का आत्म–सम्मान लुप्त हो जाता है। विभिन्न तरह के उद्योगों में काम करते–करते उनके स्वास्थ्य पर बेहद प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। वे क्षय रोग, दमा, एनिमिया आंखों के, रोग कुपोषण के शिकार, हाथ–पैरों में खराबी कैंसर आदि रोगों के छोटी ही उम्र में वाहक हो जाते हैं। श्रम मंत्रालय के एक सर्वेक्षण के अनुसार– भारत के हर तीसरे परिवार में एक बाल श्रमिक है तथा 5–15 वर्ष की आयु का प्रत्येक चौथा बालक मजदूर है। कई स्थानों पर स्थिति इतनी गम्भीर है कि कुछ कारखानों व उद्योगों पर 90 प्रतिशत कार्य बाल मजदूरों द्वारा कराया जा रहा है। भारत में ग्रामीण क्षेत्रों में बढ़ रही बेरोजगारी से प्रभावित तथा शहरों की चमक–दमक भरी जिंदगी से आकर्षित होकर ग्रामीण क्षेत्रों के बाल मजदूरों का प्रवास शहरी क्षेत्रों की ओर निरन्तर बढ़ रहा है। शहरों में पहुंचने वाले बच्चे अधिकांशतः असामाजिक तत्वों के हाथों में पड़ जाते हैं तथा ये बच्चे बाल श्रम के साथ–साथ अनेक गैर कानूनी कार्यों अपराधिक गतिविधियों में जाने–अनजाने लिप्त हो जाते हैं। जिससे साधारण से बाल श्रमिक दिन में श्रम करते हैं तथा रात में आपराधिक गतिविधियों में शामिल होते हैं। जैसे– जुआं खेलना व इसकी पहरेदारी करना कार्य–योजकों द्वारा इन बच्चों से सामान की चोरी करवाना, सेंधमारी करवाना, चलती ट्रेनों में अपराध को अंजाम देना। गांजा, अफीम, बीड़ी पीना, बेचना, उसके लिए ग्राहक तैयार करना, समलैंगिकता की ओर उन्मुख होना तथा इसके लिए ग्राहकों को ढूढ़ना, कुछ रूपयों के लिए हत्याओं व

लूट में शामिल हो जाना, दिन में कमाये हुये रूपयों को गलत कार्यों में खर्च करना। जैसे– गांजा, सिगरेट तथा अन्य धूम्रपान वस्तुओं का सेवन करना। कुछ शिक्षित बाल श्रमिक विभिन्न साइबर कैफे में जाकर पोर्न साइटो को देखते हैं। अपने पोर्न, वीडियो क्लिपिंग्स इंटरनेट में लोड कर देते हैं। ताकि कुछ धन कमा सकें। कभी–कभी वो अपनी वयस्कता के आधार पर वैश्यालयों में भी जाना पसंद करते हैं।

स्पष्ट है कि बाल श्रम की समस्या इक्कीसवीं सदी में एक चुनौती के रूप में है। चाइल्ड नाट इन स्कूल इज चाइल्ड लेबर "बाल श्रम को इन शब्दों में परिभाषित करते हुये, राज्य मानव अधिकार आयोग के अध्यक्ष न्यायमूर्ति गुलाब गुप्ता ने कहा है कि:– "इक्कीसवीं सदी में बाल श्रम मानवता पर कलंक है। निकट भविष्य में बाल श्रम के खत्म होने की कोई संभावना नजर नहीं आ रही है। अनिवार्य शिक्षा लागू कर एवं नया कानून बनाकर ही बाल श्रमिक पर अंकुश लगाया जा सकता है।" लेकिन जैसा कि भारत के पूर्व मुख्य न्यायधीश पी.एन. भगवती ने कहा था कि बाल श्रमिकों से संबंधित अधिकतर कानून कागजों तक सीमित हैं और दूसरी ओर उनका क्रियान्वयन लगभग नगण्य है। आज भी इस कथन की सत्यता सामने है। बाल श्रम कानून कागजों तक सीमित होकर फाइलों में बंद पड़े हैं और कानूनो की धज्जियां उड़ाते हुये बाल श्रमिकों का शोषण व उसके भयावह परिणामों का प्रवाह बदस्तूर जारी है। इतना ही नहीं 1000 से अधिक स्वैच्छिक संस्थाएं (एन.पी.ओ.) बाल विकास के क्षेत्र में काम कर रही हैं। आंध्रप्रदेश में 254, उत्तरप्रदेश में 123, मध्यप्रदेश में 14, बिहार में 61, उड़ीसा में 75 एवं पश्चिम बंगाल में 133 संस्थाएं कार्यरत हैं। दुर्भाग्य यह है कि समाज सेवा जैसे संबोधन का औचित्य भूमण्डलीकरण और बाजार की सत्ता ने बदल डाला है। कुछ संगठनों को छोड़कर अधिकांश सेवा की आड़ में राजनैतिक हित साधक व स्वहित साधन के केन्द्र बने हुये हैं। राजनैतिक व्यक्ति के देख–रेख में विदेशी मदद से स्वैच्छिक संस्थाएं लाभों को केन्द्रित कर सकें। यह तभी संभव है जब बाल कल्याण अथवा महिला कल्याण के लिये नीतिगत निर्णयों को प्रभावित किया जावे। फण्ड रिलीज कराने में तरलता हो। जनता के मन इनके प्रति जागरूकता व इनसे लाभ उठाने की भावना, सहयोगात्मक दृष्टिकोण के साथ हो।

भारतीय संविधान के मूल अधिकारों में तीसरा स्थान शोषण से संरक्षक को दिया गया है इसके बावजूद बाल श्रमिकों की स्थिति का यह भारतीय परिदृश्य स्पष्ट करता है कि इक्कीसवीं सदी में भी यह एक भयावह चुनौती है। अतः बाल श्रम की समस्या के निवारण के बहुआयामी उपायों व समग्र सोच की आवश्यकता है। बाल श्रम के उन्मूलन के लिये सर्वप्रथम आवश्यक है कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिये गये निर्देशों का राज्य सरकार ईमानदारी से पालन करे।

बाल मजदूरी जैसी सामाजिक बुराई को समाज से समाप्त करने के लिये सरकार के विभिन्न विभागों को मिलकर कार्य करना होगा। इस समस्या से स्वयंसेवी संस्थाएं अकेले नहीं जूझ सकतीं। लेकिन अगर सरकारी विभागों का सहयोग मिल जाये तथा स्थानीय लोग भी सक्रियता के साथ सहयोग प्रदान करें तो परिणाम निश्चय ही आशानुकूल होंगे। किसी भी कार्यक्रम को सफलतापूर्वक लागू करने के लिये प्रोत्साहन भी बहुत जरूरी है। ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय संस्थाएं ग्राम पंचायतों आदि को इस कार्य में

सक्रियता के साथ सहयोग करना चाहिए। हमारे देश का यह दुर्भाग्य है कि हर योजना भ्रष्टाचारिता अकर्मण्यता लालफीताशाही और भाई–भतीजावाद तथा प्रेस मीडिया में प्रचार की भेंट चढ़ जाती हैं। कहा जा सकता है कि दृढ़ चरित्र बच्चों के प्रति स्नेही कर्तव्य भाव व स्वयं की जागरूकता के बिना केवल कानून निर्माण, विधिक संरक्षण, संवैधानिक उपाय व न्यायिक निर्णय बाल श्रम के निदान में सफल नहीं हो सकते। जब तक भारतीय जनमानस जागरूक नहीं होगा। मिल बांट खा लेने की प्रवृत्ति और जो कुछ भाग्य में है वो होगा ही के नियति चक्र की भावना से ऊपर नहीं उठेगा। बाल श्रम की समस्या का समाधान संभव नहीं होगा।

संदर्भ सूची

1. डॉ0 पाण्डेय, बालेश्वर (1992) भारत में बाल श्रम एवं कल्याण, उत्तरप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ, अकादमी लखनऊ।
2. गुप्त रघुराज (1992), औद्योगिक समाजशास्त्र, विकास पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
3. दीक्षित, धुव्र कुमार (2002) बाल श्रम उन्मूलन एक चुनौती, जयपुर पॉइंटर पब्लिसर्स।
4. इन्टरनेशनल लेबर आर्गनाइजेशन (1995) वर्ल्ड लेबर रिपोर्ट जिनेवा।
5. भारत (2005), प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली।
6. क्रॉनिकल ईयर बुक (2006)
7. पत्रिका ईयर बुक (2007) राजस्थान पत्रिका, प्रकाशन।
8. कुरूक्षेत्र नवम्बर (2008) ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली।
9. दैनिक भास्कर, भोपाल 10 अक्टूबर, 2009

साझी विरासत की अनुपम मिसाल–भारतीय समाज

✍ डॉ. सबीहा रहमानी

'मजहब नही सिखाता आपस में बैर रखना,
हिंदी हैं हम वतन हैं हिन्दोस्तान हमारा'।

यकीनन धर्म हमें असत्य से सत्य की ओर अपवित्र से पवित्र की ओर अनुचित से उचित की ओर हिंसा से अहिंसा की ओर ले जाने का मार्ग प्रशस्त करता है। कोई धर्म, अधर्म (हिंसा, हत्या, आगजनी, नफरत, घृणा, चोरी, असत्य) का पाठ नहीं पढ़ाता। फिर हम क्यों ? धर्म के नाम पर एक दूसरे से घृणा, द्वेष रख हिंसात्मक एवं बर्बर हो जाते हैं। हम क्यों भूल जाते हैं ? कि 'धर्म तोड़ता नहीं जोड़ता है'। हमारी भारतीय सभ्यता व संस्कृति आज भी अडिग व अजर खड़ी है केवल सभी धर्मों व सम्प्रदाय के लोगों के साझा प्रयासों एवं सहिष्णुता के बल पर। सभी धर्म, जाति, वर्ग, सम्प्रदाय की साझी कोशिशों का ही नतीजा है, हमारी साझी सांस्कृतिक विरासत, हमारी 'अनेकता में एकता।'

भारत भूमि का कण–कण साझी विरासत की अनुपम मिसाल है। आजादी की लड़ाई साझी शहादत की साक्षी है और 15.08.1947 को मिली स्वतंत्रता हमारी सबसे बड़ी साझी विरासत। गांधी ने आजादी का जो स्वप्न संयोया था वह उसका साकार रूप है। यह गांधीवादी दर्शन ही था कि– 'गांधी ने स्वतंत्रता संग्राम की राजनीति से धर्म को अलग नहीं रखा। उनकी सम्पूर्ण राजनीतिक शैली धर्म की विद्या में निहित थी; परन्तु इन्होंने किसी एक धर्म को नहीं अपितु सभी धर्मों को सामान रूप से स्थान दिया। (1) वस्तुतः गांधी के इन्ही विचारों से फलीभूत होकर स्वतंत्र भारत का धर्मनिरपेक्ष चरित्र निर्धारित किया गया। यह गांधी नेतृत्व का ही प्रतिफल था कि नेहरू ने व्यापक हिंसात्मक वातावरण एवं साम्प्रदायिक कटुता के बावजूद भारत में धर्मनिरपेक्ष गणतंत्र की स्थापना की। (2)

यदि भारत की प्राचीन ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर दृष्टिपात करें तो इसकी संस्कृति के निर्माण और विकास की प्रक्रिया में यहाँ के ऋषि–मुनियों के तप और त्यागमय जीवन की मिसाल विश्व में अन्यत्र कहीं नहीं मिलेगी। बुद्ध और उनके अनुयायियों का त्याग, चाणक्य के नवीन राजनीतिक प्रतिमान, शैव, हर्षबर्द्धन के धार्मिक उत्सव तथा उसके द्वारा वैष्णवों, तांत्रिकों, बौद्ध व जैनों को दिया गया दान आदि सभी भारतीय राष्ट्र की साझी विरासत का मूल उदगम स्रोत हैं। भारत में तुर्कों का राज्य प्रारम्भ हुआ, दो संस्कृतियों व धर्मों का तालमेल व सामंजस्य प्रारम्भ हुआ। किन्तु ऐसे में जब अलाउद्दीन का अंहकार बढ़ा तब निजामुद्दीन औलिया जैसे संत भारतीय विरासत के संरक्षण हेतु उसके सामने खड़े हो गये, जिनके समक्ष अलाउद्दीन की तलवार उसी प्रकार झुक गई जिस प्रकार बुद्ध के सामने अजातशत्रु की तलवार झुक गई थी।(3) दौलत खां लोदी का अहंकार जब कबीर को बांधकर नदी में फेंक देता है, तब भी कबीर जीवित बच

✍ प्रवक्ता, समाज शास्त्र, रा. म. स्ना. महा., बाँदा

निकलते हैं इस विरासत को बचाने हेतु लोदी भयभीत होता है। यही भारत की ताकत है। कबीर, रैदास, मीरा, रसखान, रहीम, ज्ञानेश्वर की विरासतें ऐसा माहौल बना देती हैं कि अकबर से लेकर दारा शिकोह तक भारतीय संस्कृति की धारा को प्रतिध्वनित करते हैं। जब क्रूर ब्रिटिश शासक भारत पर अपना शिकंजा कस हमें दासता की बेड़ियों में जकड़ते हैं तो 1857 में नाना साहब, अजीम उल्ला खाँ, रानी लक्ष्मीबाई, बेगम हजरत महल, बहादुरशाह जफर इत्यादि अपनी शहादत देकर अपनी साझी विरासत को बचाने का प्रयास करते हैं। अन्ततः संघर्ष का चरमोत्कर्ष 1942 में महात्मा गांधी के नारे ' अंग्रेजों भारत छोड़ों' के साथ आगे बढ़ता है और हम परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त होते हैं। परन्तु उसी समय अंग्रेजों का पूर्व रचित षड़यंत्र 'फूल डालो राज्य करो' के कुप्रभाव से भारत–पाक विभाजन की त्रासदी घटित होती है और इसी त्रासदी का मूल्य चुकाना पड़ता है हमारे राष्ट्रपिता को अपनी शहादत देकर।(4)

भारत में स्वतंत्रता आन्दोलन से लेकर आज तक इस साझी राष्ट्रीय विरासत को बचाने हेतु हुई असंख्य शहादतें इतिहास के पन्नों पर स्वर्णिम अक्षरों में अंकित हैं। शहादत की श्रृंखला में 1927 की शहादत कौन भूल सकता है ? माह दिसम्बर (17–20 दिसम्बर) भारत माता के चार सपूतों ने जीत लिया 'मृत्यु' को। हंसते–हंसते फांसी के तख्तों पर झूल गये, और कसम दे गये कि –'राह कुर्बानियों की न वीरान हो।'........ये राष्ट्र नायक थे– राम प्रसाद बिस्मिल, अशफाक उल्ला खाँ, राजेन्द्रनाथ लाहिरी, रोशन सिंह। भारत के असंख्य राष्ट्रनायकों ने चाहे वे हिन्दू हों, सिक्ख, ईसाई, मुसलमान एक ही धर्म–'स्वदेश प्रेम को अपनाकर खून पसीना बहाते हुए हमें स्वतंत्रता की राह दिखाई। हिन्दुओं में लाल–बाल–पाल गांधी, नेहरू इत्यादि को मुसलमानों की ओर से मौलाना आजाद, अब्दुल रसूल, लियाकत हुसैन, हसरत मोहानी, खान अब्दुल गफ्फार खान, सैफउद्दीन किचलू, जिन्ना, अरूणा आसफ अली आदि। वहीं सिक्खों में सरदार भगत सिंह, अजीत सिंह, करतार सिंह प्रमुख थे जबकि दादा भाई नौरोजी, भीकाजी पारसी थे। इसके अतिरिक्त ऐनीबेंसेंट डेरोजियो, ए0ओ0ह्यूम ईसाई धर्मावलम्बी थे तथा डा0 भीमराव अंबेडकर ने बौद्ध धर्म ग्रहण किया था। नेता जी की आजाद हिन्द फौज के कप्तान आबिद हसन ने 'जय हिन्द' का मंत्र दिया। इस प्रकार दोस्ती व ईमान के साथ देश की रक्षार्थ विभिन्न धर्मो में आस्था रखने वालों ने साझा संघर्ष कर धर्म व सम्प्रदायवाद से परे सत्य व न्याय का साथ देते हुए इस भारतीय साझी संस्कृति का संरक्षण किया।

भारत की सरजमीन पर आजादी के बाद जन्में वीर सपूतों ने शहीदों की कसम की लाज रखी और यह याद रखते हुए कि 'जिंदा रहने के मौसम बहुत हैं मगर जान देने की ऋतु रोज आती नहीं..........' जब भी जरूरत पड़ी (1962, 1965, 1971 एवं कारगिल जंग) कुर्बानियां दीं और अपनी साझी विरासत की शान बढ़ाई। (5)

हिन्दुस्तान में साझी विरासत की जड़ें बहुत गहरी हैं और तना काफी मजबूत जिसका वटवृक्ष काफी विशालकाय है और उसकी डाली व शाखाएं आज दूर–दूर विदेशों में विस्तारित हो अनूंठे सुगंधित पुष्प खिला रही हैं। 'बसुधैव कुटुम्बकम' के बीज का अंकुरण केन्द्र भारत ही माना जाता है। सार्वजनिक जनमानस के हृदय में तो एक दूसरे के प्रति प्रेम ही है। प्रजावत्सल शासकों ने भी साझी विरासत को

सिंचित किया है। नवाब अवध 13 दिनों तक होली का त्यौहार मनाते थे। नवाब वाजिद अली शाह के दरबार में रामलीला तथा कत्थक की परंपरा शुरू हुई जो कि राधाकृष्ण के प्रेम की प्रतीक थी। प्रख्यात नाटक 'इन्द्रसभा' उनके दरबारी मुसलमान लेखक ने सृजित की थी। बादशाह शाहजहां के पुत्र दाराशिकोह ने भगवत गीता का फारसी में अनुवाद कर धार्मिक सहिष्णुता की अद्वितीय मिसाल कायम की। अमृतसर के स्वर्णमंदिर की नींव मुसलमान नवाब मियां मीर ने रखी थी। शिवाजी ने महल के पास मस्जिद बनवाई व टीपू सुल्तान ने मंदिर। (6)

वर्तमान में भी साझी विरासतें, परम्पराएं व प्रेम स्वरूप मौजूद हैं। भारत में सूफी संत 800 वर्षों से बंसत–पंचमी पर 'सरस्वती वंदना' गाते हैं। गुजरात के अहमदाबाद में शहर की सुहागन सूफी दुल्हनें आज भी हिन्दू रिवाजों के अनुसार साड़ी पहनती हैं और सिंदूर लगाती हैं। भागलपुर, भोपाल, मुंबई सहित कई जगहों पर साझा रूप में दीपावली, ईद व होली मिलन समारोह कई जगहों पर साझा रूप में दीपावली, ईद व होली मिलन समारोह आज भी आयोजित होते हैं। हिन्दुओं के घर रोजा और मुसलमानों के घर नवरात्रि व्रत रखते हैं। (हरदोई के मो0 आरिफ IBN 7 28.9.09 रात्रि 8 बजे) मुसलमान भाई सुहाग की लहठियां बनाते हैं और हिन्दू भाई ताजियादारी करते हैं। हमारे शहर बांदा में 100 वर्षों से पुराना रामा का इमामाबाड़ा व हिन्दुओं की मोहर्रम के प्रति अकीदत आपसी प्रेम व भाईचारे की अनुपम मिसाल है। प्रेम का प्रतीक ताजमहल, कुतुबमीनार, बापू की समाधि, राजघाट हमारी साझी सम्पत्ति है।

उक्त उदाहरण सिद्ध करते हैं कि हमारा इतिहास साझा है, सभ्यता व संस्कृति साझी है, हमारा मन साझा और इस साझी संस्कृति की गाथा अनंत है। पर क्या ऐसा हो गया है कि जिस साझी विरासत को संभालने की हमारी जिम्मेदारी थी, हम धर्म, भाषा और क्षेत्र व अलगाववाद के नाम पर उसी पर कुठाराघात कर रहे हैं। सत्तालोलुप राजनीति के तले दबी आज हमारी .... अमानत, हमारी निशानी, हमारी साझी विरासत कराह रही है। धर्म, भाषा व क्षेत्रीयतावाद, रूप, घृणा व नफरत के जख्मों से लहूलुहान होकर वह चीख चीख कर कह रही है कि गिरा दो इन नफरत की दिवारों को, हम सब एक हैं और एक होकर प्रेम व सद्भाव से जीने में ही हमारा अस्तित्व दृढ़ता के साथ विश्व पटल पर डिगा रहेगा।

सन्दर्भ

(1) आर0के0 मिश्र–'भारत में धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा का संवैधानिक विवेचन' (शोध पत्र) पुस्तक– भारतीय समाज व संस्कृति' विश्व वि0 प्रकाशन, वाराणसी, पृ0सं0 09

(2) तदैव– पृ0सं0–10–11

(3) स्टेट्समैन– दिनांक 19 सितम्बर 1947 प्र0सं0–1(पुस्तक भारतीय समाज व संस्कृति)

(4) डा0राकेश रफीक, डा0 ए0के0अरूण– 'विरासतें'–शहादतें सम्पादकीय 'युवा संवाद' दिसम्बर 2004 पश्चिम बिहार, नई दिल्ली–पृ0सं0–2

(5) सुधांशु शेखर– 'साझी शहादत' (शोध पत्र) युवासंवाद दिसम्बर 2004, पृ0सं0–29–30

(6) तदैव, पृ0सं0 29–30

ग्लोबल वार्मिंग एक वैश्विक चुनौती

✍ डॉ. शकील अहमद

मनुष्य ने विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति की है। मनुष्य की गतिविधियाँ संपूर्ण भौतिक पर्यावरण में हस्तक्षेप कर रही हैं कारखानों, बड़ी औद्योगिक इकाइयाँ, यातायात, तापीय और नाभिकीय संयंत्रों का निर्माण हो रहा है वह दूसरी तरफ पर्यावरण की क्षति को भी दर्शा रहा है जिस कारण पर्यावरण की समस्या विश्वव्यापी बनती जा रही है। भारत में पर्यावरण के रख रखाव की एक लम्बी सामाजिक परम्परा है जिसका प्रमाण असंख्य पक्षियों और बंदरों के बिना भय के इधर–उधर घूमने तथा पूरे देश में पीपल और बरगद जैसे वृक्षों की मौजूदगी से मिलता है। परम्परागत रूप से प्रशासनिक प्रणाली में पर्यावरण के रख रखाव की जिम्मेदारी नागरिक सुविधाओं हेतु उत्तरदायी अभिकरणों पर थी। पर्यावरणीय प्रभाव के नागरिक निकायों की सीमा से बाहर निकलने तथा प्रदूषण, प्राकृतिक संसाधनों का अति प्रयोग एवं भौतिक जैविक पर्यावरण के संरक्षण जैसे मुद्दों को संज्ञान में रखते हुए 1972 में केन्द्रीय सरकार ने पर्यावरण नियोजन और समन्वय पर एक राष्ट्रीय समिति (NCEPC) का गठन किया। योजना आयोग की एक उच्च शक्ति प्राप्त समिति की सिफारिशों पर 1980 में केन्द्रीय स्तर पर पर्यावरण विभाग की स्थापना की गयी। इस विभाग का उत्तरदायी क्रान्तिक परितंत्र प्रणालियों का संरक्षण एवं नियमन, प्रदूषण निगरानी एवं सामुद्रिक परितंत्रों का संरक्षण करना था। विभाग में पर्यावरण संरक्षण एवं परिस्थितिकी विकास हेतु एक केन्द्रीय अभिकरण के रूप में कार्य किया तथा विकास परियोजनाओं का पर्यावरणीय मूल्यांकन किया। प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में केन्द्रीय गंगा प्राधिकरण स्थापित किया गया। 1985 में पर्यावरण एवं वन मंत्रालय अस्तित्व में आया। कालान्तर में NRCP और NLCP का गंगा कार्य योजना में विकास हुआ तथा देश में पर्यावरणीय विषयों से जुड़े कई पर्यावरण प्राधिकरण का निर्माण किया गया। एक व्यापक पर्यावरणीय समाशोधन अधिसूचना 1994 को 2006 में पुनर्समीक्षा किया गया।

वैज्ञानिकों के अनुसार भारत में प्रति एक सौ वर्ष में हवा में 0.57 डिग्री सेल्सियस गर्मी बढ़ रही है। अवश्य ही यह गर्मी औद्योगिक क्रान्ति के बाद ही बढ़ी है जब फैक्ट्रियाँ, कारखानों और वाहनों ने धुआं उगलना शुरू किया। इस तरह की गर्मी गत कुछ वर्षों में पूरे भारतीय प्रायद्वीप – पाकिस्तान, नेपाल, बांग्लादेश और श्रीलंका आदि में विशेष रूप से अधिक गति से बढ़ती देखी गई है। हाल के वर्षों में जहाँ पश्चिमी तट, उत्तरी आंध्र प्रदेश और उत्तर–पश्चिम भारत में बरसात ज्यादा होने लगी है, वहीं पूर्वी मध्य प्रदेश, उड़ीसा और उत्तर–पूर्वी भारत में वर्षा में कमी का रूख पाया गया है। इस सदी के अन्त तक यदि वाहनों और चिमनियों से धुआँ कम न किया गया तो भारत प्रायद्वीप का औसत तापमान 5.5 डिग्री सेल्सियस बढ़ सकता है और अगर धुआँ कम किया गया तो 3.5 डिग्री सेल्सियस बढ़ने के आसार हैं। उत्तर भारत में औसत गर्मी 2050 तक है 3 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ सकती है। दक्षिण भारत में यह बढ़त

✍ इन्वायरमेण्टल ऑफिसर, डिपार्टमेन्ट ऑफ इन्वायरमेण्ट, दुबई म्यूनिसिपॅलिटी, दुबई (यू. ए. ई.)

वैज्ञानिकों ने एक डिग्री सेल्सियस कम यानी 2 डिग्री सेल्सियस आँकी है। इस सदी के अंत तक वर्षा 7 से 10 प्रतिशत अधिक होने लगेगी। हाँ जाड़ों की तुलना में 5 से 25 प्रतिशत की कमी हो सकती है। मानसूनी वर्षा में 10 से 15 प्रतिशत की बढ़ोतरी अनुमानित है। शीतऋतु में मध्य भारत के अधिकांश क्षेत्रों में वर्षा 10 से 20 प्रतिशत तक बढ़ सकती है। सन् 2050 तक भारत के पश्चिमी अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में भी अधिक वर्षा होने के अनुमान लगाए गए हैं। वर्ल्ड फूड प्रोग्राम; डब्लयू एफ पी के सहयोग से तैयार एक रिसर्च में कहा गया है कि भारत में ग्लोबल वार्मिंग का असर अनाज उत्पादन पर भी पड़ेगा। भारत के फूड बास्केट के नाम से मशहूर पंजाब–हरियाणा क्षेत्र अगले 20 सालों में अनाज के मामले में काफी असुरक्षित हो जाएंगे।

पृथ्वी के ध्रुवीय क्षेत्रों, अण्टार्कटिक तथा अत्यन्त ठण्डे स्थलों पर पेड़–पौधे, फूलों तथा सब्जियों के विकास के लिए ताप की समुचित आवश्यकता की पूर्ति करने के लिए एक विशेष प्रकार की व्यवस्था की जाती है। ऐसी जगहों पर पौधे को काँच के घरों में उगाया जाता है जिनको हरित गृह कहते हैं। इन गृहों की यह विशेषता होती है कि सूर्य से आने वाली ऊष्मा इनके अन्दर आसानी से परावर्तित अवरक्त विकिरण (Infrared rediation) जिसकी तरंग दैर्ध्य होती है काँच के गृह के बाहर नहीं निकल पाती। परिणामस्वरूप इनके अन्दर का ताप पर्याप्त मात्रा में बढ़ जाता है। सूर्य की ऊष्मा को रोके जाने की इसी परिघटना को हरित गृह प्रभाव कहते हैं।

पृथ्वी के वायुमण्डल में 78.09 प्रतिशत नाइट्रोजन, 20.95 प्रतिशत आक्सीजन, 0.93 प्रतिशत आर्गन, 0.03 प्रतिशत कार्बन डाई ऑक्साइड तथा शेष अन्य गैस पायी जाती हैं। वायुमण्डल में विद्यमान कुछ गैसों जैसे कार्बन डाई आक्साइड, नाइट्रस आक्साइड, मीथेन, ओजोन, जलवाष्प आदि में ऊष्मा को सोखने की क्षमता होती है। इन गैसों को हरित गृह गैसें (Green House Gases) कहते हैं।

सूर्य से आने वाले विकिरण का कुछ हिस्सा इन्हीं गैसों द्वारा सोख लिया जाता है जिससे पृथ्वी पर रात्रि में एकाएक भीषण ठण्ड की जगह एक स्वस्थ तापमान की स्थिति पायी जाती है तथा पृथ्वी का औसत वार्षिक ताप भी लगभग एक निश्चित मात्रा में नियत रहता है। इस प्रकार पृथ्वी के वायुमण्डल में इन गैसों की उचित उपस्थिति मनुष्य तथा अन्य जीवों के लिए कल्याणकारी तरीके से वृद्धि पृथ्वी के लिए अभिशाप साबित होने लगी है। इनकी असमान मात्रा के कारण पृथ्वी का वायुमण्डल काँच के हरित गृह जैसा व्यवहार करने लगता है जिसके कारण सौर ऊष्मा बजट की स्वस्थकारी संतुलित स्थिति बिगड़ने लगी है।

वैश्विक ताप वृद्धि तथा विश्व मौसम परिवर्तन (Global warming and world climate change) जैसा कि पहले भी उल्लेख किया जा चुका है औद्योगिक, व्यवसायिक तथा परिवहनात्मक गतिविधियों के कारण हरित गृह गैसों के उत्सर्जन में लगातार वृद्धि हो रही है। परिणामस्वरूप पृथ्वी के औसत तापमान में वृद्धि हो रही है। संयुक्त राष्ट्र विश्व मौसम परिवर्तन संगठन की रिपोर्ट में बीसवीं शताब्दी को सबसे गर्म शताब्दी, 1990 के दशक को सबसे गर्म दशक तथा वर्ष 1999 को सबसे गर्म वर्ष बताया गया है। मौसम परिवर्तन पर अन्तर सरकारी पैनल द्वारा लगाया गया अनुमान बताता है कि अगर वर्तमान दर से हरित गृह गैसें बढ़ती रहीं तो अगले 50 वर्षों अर्थात् सन् 2050 तक पृथ्वी की औसत ताप में 1.5 से 4.5 डिग्री सेन्टीग्रेड तक वृद्धि हो जायेगी। नवीनतम अनुमान में 2050 तक होने वाली तापमान वृद्धि 50 सेन्टीग्रेड तक

वृद्धि हो सकती है। नवीनतम अनुमानों में सल्फर हेक्साफ्लोराइड सहित सल्फ्राइड कणों की ऊष्मायन क्षमता को भी ध्यान में रखा गया है जो बादल निर्माण में सहायक होते हैं और बादल ऊष्मा को पृथ्वी से बाहर जाने से रोकते हैं। यद्यपि बढ़ते तापमान से सम्बंध दुष्प्रभावों के कुछ लक्षण तो दिखने लगते हैं परन्तु भविष्य बहुत ही संकटग्रस्त तथा भयावह हो सकता है।

तापमान बढ़ने के कारण अगले पचास वर्षों में अण्टार्कटिका ध्रुवीय क्षेत्रों तथा पहाड़ों की बर्फ पिघलने के कारण समुद्र के महासागर स्तर में 15 से 90 सेमी की वृद्धि हो सकती है। इससे महासागर के छोटे–छोटे द्वीपीय देशों जैसे – टोंगा, टोबैगो, टुआलू, मालद्वीप आदि के सामने तो अस्तित्व का संकट होगा ही बांग्लादेश, नार्वे, ब्रिटेन, आदि के भी बड़े हिस्से जलमग्न हो जायेंगे।

गंगोत्री जैसे समृद्ध ग्लेशियरों का अस्तित्व भी खतरे में है। हाल में कराये गये सर्वेक्षण के अनुसार गंगोत्री ग्लेशियर की लम्बाई में 15 मील की कमी हो चुकी है और प्रतिवर्ष इसकी लम्बाई 18 मीटर की दर से घट रही है। अगर यह क्रम बरकरार रहा तो कुछ दशकों में सूखी गंगा देख श्रद्धालुओं के मन को तो आघात लगेगा ही। भारत और बंग्लादेश के समृद्ध कृषि क्षेत्र भी भंयकर अकाल की चपेट में आ जायेंगे।

पृथ्वी के विभिन्न हिस्सों में अस्त–व्यस्त तथा अभूतपूर्व गर्माहट (Heating) के कारण दाब अन्तर की विचित्र तथा प्रलयकारी स्थितियाँ पैदा होने लगी हैं जिसके कारण उड़ीसा चक्रवात जैसी आपदाओं की पुनरावृत्ति में तेजी आती जा रही है। 1960 के दशक में संसार को जहाँ 16 बड़ी मौसम सम्बन्धी प्राकृतिक आपदाओं की मार झेलनी पड़ी थी। वहीं 1990 के दशक में यह संख्या 70 पर पहुँच गयी है।

ऊष्मायन तथा दाब की स्थितियों में परिवर्तन के कारण वर्षा तथ मौसमों के मिजाज में भी परिवर्तन हो रहा है। सम्भव है कि अगले कुछ दशकों में सावन–भादों सूखे रहें और दिसम्बर–जनवरी में बाढ़ आये। इससे फसल चक्र टूटने तथा कृषिगत बीमारियों का प्रकोप बढ़ने की आशंका है। अगर ऐसी स्थिति बनी तो सम्भव है कि पूरा विश्व अकाल की चपेट में आ जाय।

ताप वृद्धि के कारण परजीवी आधरित बीमारियों (Vector Borne Diseases) जैसे मलेरिया, फाइलेरिया, डेंगू आदि अनियन्त्रित होकर महामारी का स्वरूप ले सकती है।

पंजाब, राजस्थान, हरियाणा जैसे शुष्क क्षेत्रों में बाढ़ या अतिवृष्टि पहले अकल्पनीय लगती थी। पिछले एक दशक में मौसम में आये परिवर्तन के चलते क्षेत्रों में वर्षा की मात्रा में 40–50 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई है तथा कम समय में हुई तीव्र वर्षा से बाढ़ की स्थितियाँ बननी प्रारम्भ हो गयी हैं। अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों जैसे केरल तथा पूर्वोतर क्षेत्र की मात्रा में कमी आती जा रही है।

उल्लेखनीय है कि हरित गृह गैसों में कुछ गैसें ऐसी हैं जो पृथ्वी पर जन जीवन को अन्य तरीके से भी नुकसान पहुँचा रही हैं। जैसे नाइट्रस आक्साइड पृथ्वी–उष्मायन के अतिरिक्त अम्ल वर्षा के लिए भी जिम्मेवार है। अम्ल वर्षा से पेड़ पौधें तथा सूक्ष्म जीवों के अस्तित्व को खतरा पैदा होने लगा है जिसके कारण पृथ्वी पर जैब विविधता पर संकट बढ़ता जा रहा है। क्लोरो फलोरो कार्बन हरित गृह गैस तो है ही

यह ओजोन परत के क्षरण के लिए भी जिम्मेदार है। इसके कारण पृथ्वी का रक्षा कवच नष्ट्र हो रहा है तथा खतरनाक अल्ट्रावायलट किरणें अधिक मात्रा में पृथ्वी पर पहुंचकर जीवधरियों पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रही हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Iyer Kv et.al : Guidelines Standards on pollution contral in Industry New Delhi 1991
2. Chaudhri J: An introduction to development & Regional planning

3- K.K singh, A.K Singh, Alka Tomar and Vinod Singh - Environmental Degradation and protection, Md pub. 2007

4. J. S Chahan and Arun Chauhan, Rawat : Environmental Degradation, Socio economic consequences. 1998
5. सविन्द्र सिंह : पर्यावरण भूगोल
6. श्रीवास्तव एवं राव– पर्यावरण एवं परिस्थैतिकी

पोथी की परख / समीक्षायन

दलित जीवन की इनसाइक्लोपीडिया

✍ डॉ. सुरेश कानडे

पुस्तक	:	दलित विमर्श के विविध आयाम
लेखक	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
प्रकाशक	:	राधा पब्लिकेशन्स, 4231/1 अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली–110002
मूल्य	:	रु. 750.00

शैक्षणिक गतिविधियों से जुड़े युवा साहित्यकार डॉ वीरेन्द्र सिंह यादव ने साहित्यिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा पर्यावरणीय समस्यायों से सम्बन्धित गतिविधियों को केन्द्र में रखकर अपना सृजन किया है। इसके साथ ही आपने दलित विमर्श के क्षेत्र में 'दलित विकासवाद' की अवधारणा को स्थापित कर उनके सामाजिक, आर्थिक विकास का मार्ग भी प्रशस्त किया है। आपके एक हजार से अधिक लेखों का प्रकाशन राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर की स्तरीय पत्रिकाओं में हो चुका है। आपमें प्रज्ञा एवं प्रतिभा का अद्भुत सामंजस्य है। दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, राष्ट्रभाषा हिन्दी एवं पर्यावरण में अनेक पुस्तकों की रचना कर चुके डॉ. वीरेन्द्र ने विश्व की ज्वलंत समस्या पर्यावरण को शोधपरक ढंग से प्रस्तुत किया है। राष्ट्रभाषा महासंघ मुम्बई, राजमहल चौक कवर्धा द्वारा स्व. श्री हरि ठाकुर स्मृति पुरस्कार, बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर फेलोशिप सम्मान 2006, साहित्य वारिधि मानदोपाधि एवं निराला सम्मान 2008 सहित अनेक सम्मानों से उन्हें अलंकृत किया जा चुका है। वर्तमान में आप भारतीय उच्च शिक्षा अध्ययन संस्थान राष्ट्रपति निवास, शिमला (हि. प्र.) में नई आर्थिक नीति एवं दलितों के समक्ष चुनौतियाँ (2008–11) विषय पर तीन वर्ष के लिए एसोसियेट हैं।

प्रसिद्ध ईसाई विद्वान मारकुस ओरिलस का एक प्रसंग मुझे याद आता है। मैं जब–जब डॉ. वीरेन्द्र यादव को एवं उनकी रचनाओं को देखता हूँ तो वह उद्धरण मेरे मन मस्तिष्क में आ जाता है – A man's life is what his thoughts make of it अर्थात् मनुष्य का जीवन वैसा ही होगा जैसी उसकी विचारधारा होगी। क्योंकि मनुष्य की विचारधारा के साथ उसका आचार होता है और आचार के साथ उसके संस्कार जुड़े होते हैं। डॉ. वीरेन्द्र यादव के जीवन की एक और विशेषता है उनके उच्च विचार और उच्च आचार। विचार और आचार मनुष्य जीवन के विशिष्ट पक्ष हैं और फिर संस्कार। यहाँ एक बात मैं स्पष्ट तौर पर कहना चाहूँगा कि डॉ. वीरेन्द्र यादव के संस्कार भी बहुत उच्चकोटि के हैं और यही कारण है कि मैं जब–जब उनके विषय में सोचता हूँ तो पाता हूँ कि वे वर्तमान साहित्य सृजन में समकालीन समस्याओं के अजात शत्रु हैं।

दलित विमर्श के विविध आयाम नामक पुस्तक के लेखक डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव ने दलित विमर्श के क्षेत्र में दलित विकासवाद की स्थापना कर उनके सामाजिक, आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त किया है। पांच अध्यायों में विभाजित पुस्तक में विद्वान वरिष्ठ लेखक ने दलित, अवधारणा, स्वरूप, परम्परा को रेखांकित करने के साथ–साथ दलित शब्द की उत्पत्ति, हरिजन शब्द की ऐतिहासिकता के साथ–साथ लोक में प्रचलित दलित सम्बन्धी अवधारणा को वृहद परिप्रेक्ष्य में रेखांकित किया है। दलित विकास की यह यात्रा सामाजिक क्षेत्र से निकलकर साहित्यिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में प्रवेश करने के साथ--साथ समकालीन दलित चिंतन पर व्यापक बहस को जन्म देकर इसे भूमण्डलीकरण की निपट वैज्ञानिक परम्परा से जोड़ती है, जहाँ भाग्य, भगवान, भरोसा का कोई स्थान देखने को नहीं मिलता है। वस्तुतः मनुष्य के भीतर स्थित उसकी सर्जनात्मक क्षमता ही निर्णायक तत्व है। परिवेश के सहयोग के साथ–साथ मनुष्य का संकल्प यदि जूझे तो वह कभी हारता नहीं। मानव का संकल्प उसमें कहीं–न–कहीं चमक पैदा करता है।

डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव अपनी पुस्तक में दलित
विशेष निष्कर्ष निकालते हुए यह बताना चाहते है कि हिन्दी
हैं। प्रथम श्रेणी में वे लेखक आते हैं जिनका जन्म दलित
है। दूसरी श्रेणी में सवर्ण लेखक आते हैं। जिन्होंने दलितों
श्रेणी उन प्रगतिशील लेखकों की है जो दलितों के प्रति
देखते हैं। दलित हित चिंतन का साहित्य कौन सा है। यह
जातिगत विभाजन केन्द्र में है। दलित साहित्य और दलित
वास्तविक दलित साहित्य वही है जो दलितों द्वारा लिखा
जानता है और जो भोगता है वही पूरा सच कहता है।
नहीं।

सदियों के अनुभव को समाज में लोकोक्ति का रूप
होती है। किन्तु उन मान्यताओं की भी पूर्णरूपेण प्रतिष्ठा
महामानव पैदा होता है जो उस लोकोक्ति की मान्यता का
महामानव डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव हैं।

डॉ. वीरेन्द्र का मानना है कि जिस दलित लेखन को
हैं, जहाँ अमरीका, इग्लैण्ड और कनाडा के शोधकर्ताओं ने
स्वदेश में इस साहित्य को और कब तक दबा कर रखा जा
है। हालाँकि इन दिनों दलित साहित्य विषयक वर्चस्व की
के बीच अदल–बदल हो रही है। जहाँ एक पर परम्परावादी
सवर्णों का वर्चस्व । दलित, बहुजन मूकदर्शी बने इस
बुराइयों के बावजूद वाम विचारधारा को दलित अपने
शोषण विहीन समाज का दर्शन है और दलित सब तरह से
परम्परा से नहीं काट सकती। हम कहाँ से किससे ले रहे हैं
क्या ले रहे हैं।

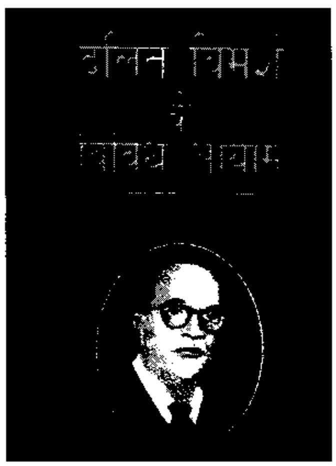

चिंतन एवं परम्परा को साहित्य लेखन के सन्दर्भ में एक
में दलित विमर्श की वर्तमान में तीन धाराएं परिलक्षित होती
जातियों में हुआ है, जिनके पास स्वानुभूति का विराट संसार
का चित्रण सौन्दर्य की विषय वस्तु मानकर किया है। तीसरी
अपनी सहानुभूति व्यक्त कर उन्हें सर्वहारा की स्थिति में
अभी विवाद का विषय बना हुआ है। इस साहित्य लेखन में
चिंतन से जुड़े अधिकांश विद्वत मनीषियों का मानना है कि
गया है। गुलामी की यातना को जो सहता है वही इसे
सचमुच राख ही जानती है, जलने का अनुभव कोई और

मिलता है जिन्हें प्रायः नैसर्गिक नियमों की मान्यता प्राप्त
तभी हो पाती है जब साधारण मानवों के बीच कोई ऐसा
अपवाद बन जाता है। ऐसे ही एक सीधे सहज, सरल

भारत के तथाकथित साहित्यकार स्वीकार नहीं कर पा रहें
अपने यहाँ इस पर व्यापक बहस शुरू कर दी हैं। वहीं
सकता है। यह अपने आपमें एक शोध का प्रश्न हो सकता
गेंदें मोटे तौर पर दक्षिणपंथी और वामपंथी दो विचारधाराओं
मनुवादियों का दबदबा है। वहीं दूसरी पर मार्क्सवादी
सबका तमाशा देख रहे हैं। फिर भी वर्णगत व्यवहारिक
नजदीक पाते हैं, क्योंकि मार्क्सवादी बुनियादी तौर पर
शोषित। मेरा मानना है कि विचारधारा मनुष्य को उसकी
– यह बात महत्वपूर्ण नहीं है, महत्वपूर्ण बात यह है कि हम

डॉ. वीरेन्द्र ने प्रस्तुत पुस्तक में तथ्यों एवं प्रमाणों की पुष्टि हेतु भारत के विभिन्न अंचलों महाराष्ट्र, राजस्थान, बिहार, हरियाणा, उ. प्र. के दलित एवं गैर दलित विद्वान, सामाजिक सरोकारों एवं न्याय के पक्षधर लोगों से मुलाकात कर उनके दलित जीवन के दग्ध अनुभव की दास्तान को उनकी जुबां से सुना और साक्षात्कार के तौर पर उनके अनुभवों को प्रस्तुत पुस्तक में एक अध्याय के रूप में उसे स्थान भी दिया है ।इन सभी विद्वत मनीषियों का मानना है कि दलित साहित्य आन्दोलन वर्तमान में अपनी विकास यात्रा में है और वैश्विक परिप्रेक्ष्य में इसे स्वीकृति भी मिलनी आरम्भ हो गयी है।

एक लेखक को देश, काल, वातावरण को दृष्टि में रखकर किसी भी संघर्ष –विकल्प से विचलित हुये बिना कर्तव्य का निर्वाह करते रहना चाहिए। जिस प्रकार स्वर्ण की परीक्षा निघर्षण, छेदन, ताप और ताड़न से होती है उसी प्रकार श्रुतिवान होना, शीलवान होना, कुलाचारी होना, कुल के वैभव को स्वीकार करना, कर्म में विश्वास करना ये चार गुण ही विद्वान लेखक की कसौटी होते हैं जिसमें डॉ. वीरेन्द्र यादव खरे उतरते हैं। आपकी प्रस्तुत पुस्तक दलित साहित्य आन्दोलन में अभी तक मेरे अध्ययन एवं जानकारी के आलोक में अपने आपमें पहली पुस्तक है जो दलित आन्दोलन के सामाजिक, साहित्यिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक पक्ष को इतनी बेबाक तरीके से विश्लेषण करती है। सामाजिक समता एवं सामाजिक न्याय का सपना देखने वाले एवं विद्वान सुधी पाठकों, शोधार्थियों के ज्ञान में डॉ. वीरेन्द्र यादव की यह पुस्तक एक नयी दृष्टि पैदा करेगी ऐसा मेरा मानना है।

✍ 8 साईधाम, अपार्टमेंट दादा जी कोंडदेव नगर, गंगापुर रोड, नासिक 422013 (महाराष्ट्र)

पोथी की परख / समीक्षायन

समकालीन ज्वलंत समस्याओं का अमर दस्तावेज

✍ डॉ. ज्योति सिन्हा

पुस्तक	:	समकालीन परिवेश : मुद्दे, विकल्प और सुझाव
लेखक	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
प्रकाशक	:	नमन पब्लिकेशन्स, 4231/1 अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली 110002
मूल्य	:	रु. 450.00

शैक्षणिक गतिविधियों से जुड़े युवा साहित्यकार डॉ वीरेन्द्र सिंह यादव ने साहित्यिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा पर्यावरणीय समस्यायों से सम्बन्धित गतिविधियों को केन्द्र में रखकर अपना सृजन किया है। इसके साथ ही आपने दलित विमर्श के क्षेत्र में 'दलित विकासवाद' की अवधारणा को स्थापित कर उनके सामाजिक, आर्थिक विकास का मार्ग भी प्रशस्त किया है। आपके एक हजार से अधिक लेखों का प्रकाशन राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर की स्तरीय पत्रिकाओं में हो चुका है। आपमें प्रज्ञा एवं प्रतिभा का अद्भुत सामंजस्य है। दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, राष्ट्रभाशा हिन्दी एवं पर्यावरण में अनेक पुस्तकों की रचना कर चुके डॉ. वीरेन्द्र ने विश्व की ज्वलंत समस्या पर्यावरण को शोधपरक ढंग से प्रस्तुत किया है। राष्ट्रभाषा महासंघ मुम्बई, राजमहल चौक कवर्धा द्वारा स्व. श्री हरि ठाकुर स्मृति पुरस्कार, बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर फेलोशिप सम्मान 2006, साहित्य वारिधि मानदोपाधि एवं निराला सम्मान 2008 सहित अनेक सम्मानों से उन्हें अलंकृत किया जा चुका है। वर्तमान में आप भारतीय उच्च शिक्षा अध्ययन संस्थान राष्ट्रपति निवास, शिमला (हि. प्र.) में नई आर्थिक नीति एवं दलितों के समक्ष चुनौतियाँ (2008–11) विषय पर तीन वर्ष के लिए एसोसियेट हैं।

वास्तव में देखा जाए तो किसी भी रचनाकार की रचनाएं, प्रकृति और जीवन से उसके सम्बन्ध और संवाद का जीवंत साक्ष्य होती हैं। उस रचनाकार के व्यक्तित्व से जुड़ने का सबसे महत्वपूर्ण और पहला माध्यम भी ये रचनाएं ही होती हैं। इन्हीं के द्वारा हम उन तमाम भावों, अनुभूतियों, संवेदनाओं, विचारों, द्वन्द्वों, पूर्वाग्रहों, प्रतिबद्धताओं और आस्थाओं से रूबरू होते हैं, जो लेखकीय अभिव्यक्ति को एक विशेष दर्जा प्रदान करने के साथ उसे औरों से अलग करती हैं। किसी रचनाकार के व्यक्तित्व की यही विशेषताएं सृजन क्षेत्र में उसके मूल्यांकन का आधार बनती हैं। साहित्य एवं सामाजिक समस्याओं पर लेखनी चलाने वाले डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव उन रचनाकारों में से एक ऐसे ही रचनाकार हैं जो अपनी विशिष्ट पहचान के कारण जाने जाते हैं।

डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव की नवीन पुस्तक समकालीन परिवेश : मुद्दे, विकल्प और सुझाव ,वर्तमान विश्व की ज्वलंत समस्याओं का मौलिक दस्तावेज है। जिसमें युवा विद्वान लेखक ने समकालीन समस्याओं का वैयक्तिक स्तर पर कुछ अपने विकल्प एवं सुझाव प्रस्तुत किये हैं। चाहे वह शिक्षा का गिरता स्तर हो या वैश्विक आतंकवाद की समस्या, भ्रष्टाचार का वैश्विक प्रसार या ग्लोबल वार्मिंग, प्राकृतिक आपदाओं का आसन्न संकट, धार्मिक, भाषाई, जातीय असमानता, क्षेत्रीय असामंजस्य, महिलाओं के विरूद्ध हो रही घर की चौखट के साथ बाहरी हिंसा, बालश्रम, बाल अपराध एवं उनमें आने वाली समस्याओं तथा अधिकारों के लागू होने में प्रशासनिक दिक्कतें एवं पेचीदगियाँ, मानवाधिकारों का खुलेआम उल्लंघन, जन–हानि की समस्याओं को बड़े बेवाक तरीके से उठाने की कोशिश की गई है।

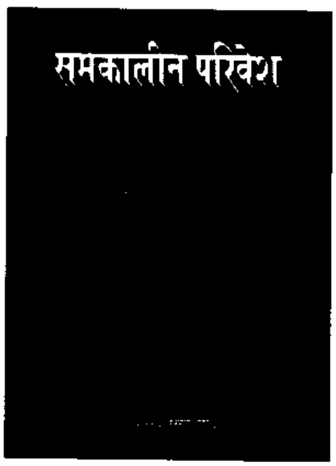

एक साहित्यकार में संवेदनशीलता और चिंतन दोनों का संयोग होना उसकी श्रेष्ठता की कसौटी माना जाता है। कभी–कभी इन दोनों में बड़ा असन्तुलन दिखाई पड़ता है। डॉ. वीरेन्द्र जी में इन दोनों का सन्तुलन होने के साथ–साथ आलोचनात्मक सजगता तथा रचनात्मक संवेदनशीलता भी देखी जा सकती है। मेरा अपना विचार है कि लेखन वही होता है जो कि लेखक स्वयं हुआ करता है। अगर लेखक सहज नहीं है अपने चिंतन में स्पष्ट नहीं है तो उसका लेखन भी उलझा हुआ होगा। डॉ. वीरेन्द्र अपने भीतर से जो महसूस करते हैं वही लिखते हैं इसलिए आपके लेखन में फ्राड बिल्कुल नहीं है क्योंकि मुझे ऐसा लेखन ही पसन्द है इसलिए एक लेखक के रूप में डॉ. वीरेन्द्र यादव को मैं स्वीकार करती हूँ। आपके सबसे अधिक लेख मुझे समकालीन समस्याओं से सम्बन्धित विषयों ने अधिक प्रभावित किया है।

डॉ. वीरेन्द्र यादव के समीक्षात्मक लेख अधिकांशतः कृतिपरक हैं ।आपने प्रायः वस्तुनिष्ठ, पाठपरक विवेचन किया है। स्पष्ट है कि समीक्षक के रूप में डॉ. वीरेन्द्र यादव का अवदान महत्वपूर्ण है। सम्प्रति ऐसी ही समीक्षाएं कालक्रम में सत समीक्षा की मानक सिद्ध होती हैं। डॉ. वीरेन्द्र यादव की प्रस्तुत पुस्तक अपनी बेवाक टिप्पणियों एवं भाषा की दृष्टि से सारगर्भित है। कहीं–कहीं कुछ शब्दों के प्रयोग नई समस्याओं एवं विवादों को जन्म देते प्रतीत होते हैं। पुस्तक का शीर्षक जितना सार्वभौमिक हैं उतनी ही व्याख्याएं, विकल्प एवं सुझाव भी व्यवहारिक एवं सैद्धान्तिक तौर पर सर्वमान्य से लगते हैं। डॉ. वीरेन्द्र के सारगर्भित सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक लेख उनके गम्भीर चिंतक की छवि उभारते हैं। परन्तु आपके समग्र कृतित्व से परिचित लोग जानते हैं कि आप एक उच्चकोटि के संवेदनशील लेखक है क्योंकि आपके लेखन में वादों, सिद्धान्तों की अभिव्यक्ति नहीं, प्रत्युत समकालीन परिवेश के विविध विवर्तों की स्पष्ट अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। कुल मिलाकर डॉ. वीरेन्द्र की यह पुस्तक समसामयिक ज्वलंत घटनाओं को बहुत व्यापकता के साथ हमारे समक्ष रखती है और एक नई समझ तथा नई बहस को जन्म देती है यही इस पुस्तक की सफलता है और उपलब्धि भी।

✍ प्रवक्ता, संगीत विभाग, महिला पी. जी. कॉलेज, जौनपुर (उ. प्र.)

पोथी की परख / समीक्षायन

वर्तमान सम्बन्धों के विघटन का जीवंत यथार्थ

✍ डॉ. दिव्या माथुर

पुस्तक	:	मोहन राकेश की रचनाओं में पारिवारिक सम्बन्धों की त्रासदी
लेखक	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
प्रकाशक	:	नमन पब्लिकेशन्स, 4231/1 अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली 110002
मूल्य	:	रु. 400.00

शैक्षणिक गतिविधियों से जुड़े युवा साहित्यकार डॉ वीरेन्द्र सिंह यादव ने साहित्यिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा पर्यावरणीय समस्यायों से सम्बन्धित गतिविधियों को केन्द्र में रखकर अपना सृजन किया है। इसके साथ ही आपने दलित विमर्श के क्षेत्र में 'दलित विकासवाद' की अवधारणा को स्थापित कर उनके सामाजिक, आर्थिक विकास का मार्ग भी प्रशस्त किया है। आपके एक हजार से अधिक लेखों का प्रकाशन राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर की स्तरीय पत्रिकाओं में हो चुका है। आपमें प्रज्ञा एवं प्रतिभा का अद्भुत सामंजस्य है। दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, राष्ट्रभाषा हिन्दी एवं पर्यावरण में अनेक पुस्तकों की रचना कर चुके डॉ. वीरेन्द्र ने विश्व की ज्वलंत समस्या पर्यावरण को शोधपरक ढंग से प्रस्तुत किया है। राष्ट्रभाषा महासंघ मुम्बई, राजमहल चौक कवर्धा द्वारा स्व. श्री हरि ठाकुर स्मृति पुरस्कार, बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर फेलोशिप सम्मान 2006, साहित्य वारिधि मानदोपाधि एवं निराला सम्मान 2008 सहित अनेक सम्मानों से उन्हें अलंकृत किया जा चुका है। वर्तमान में आप भारतीय उच्च शिक्षा अध्ययन संस्थान राष्ट्रपति निवास, शिमला (हि. प्र.) में नई आर्थिक नीति एवं दलितों के समक्ष चुनौतियाँ (2006–11) विषय पर तीन वर्ष के लिए एसोसियेट हैं।

वस्तुतः अतीत सदैव वर्तमान पर अपने प्रहार करता रहता है। यह तो उस व्यक्ति–विशेष पर आधारित होता है कि वह कितना उसे सह पाता है या प्रेरणा लेकर भविष्य का वाङ्मय रचता है। परम्परा से चली आ रही विकृतियों को समकालीन नजरिये से अवलोकन करने का जो वैचारिक औदार्य एवं सैद्धान्तिक अडिगता डॉ. वीरेन्द्र यादव के साहित्य में है। डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव की सद्यः प्रकाशित पुस्तक मोहन राकेश की रचनाओं में पारिवारिक सम्बन्धों की त्रासदी में वर्तमान समय की पारिवारिक विसंगतियों का जीवन्त वर्णन किया गया है। चार अध्यायों में विभाजित मोहन राकेश की सभी रचनाओं, कहानी, उपन्यास, नाटक एवं संस्मरणों को युवा विद्वान लेखन ने आधुनिक नजरिये से रेखांकित करने की कोशिश की है। आपका मोहन राकेश के बारे में मानना है कि मोहन राकेश की रचनाओं में परिवार का परम्परागत ढाँचा छिन्न–भिन्न सा हो गया है। स्त्री–पुरुष का निजीपन मानों आज की भीड़ में (विशेषकर महानगरों में) कहीं खो सा गया है उसे सबके बीच में जीते–जीते भी उफ, उदासी और आत्मीयहीन अपरिचय के साथ जीना पड़ रहा है। वर्तमान की वास्तविकता भी यही है कि आज स्त्री–पुरुष अपने जीवन में कई समस्याओं के बीच फंस गये हैं। दोनों मन ही मन कई समस्याओं में उलझे हुए हैं। कल्पनाएं यथार्थ के ताप में जलकर झुलस गई हैं, विवाह हुआ पर नौकरी नहीं, नौकरी मिली तो सन्तोषप्रद नहीं और जीवन की इच्छापूर्ण बन सके इतनी आय वाली नहीं, बोझ ढोते चल रहे हों वैसा महसूस होता है। पुरुष–पत्नी की खोज में भीतर ही घुलता जा रहा है, स्त्री भी बार–बार सहते–सहते विद्रोही तेवर अख्तियार करने पर उतारू हो गई है ।दोनों का मनद्विधाग्रस्त हो गया है अतीत इससे अच्छा था,वे अतीत में जाना चाहते हैं वे बहुत कुछ सोचते हैं पर कुछ कर नहीं सकते हैं आखिर विवश भाव से सभी. परिस्थितियों को आज के दम्पत्ति झेल रहें हैं किसी के जीवन में आनन्द नहीं,उत्साह नहीं बस है तो टूटन,विवशता,ऊब तथा निराशा, जिसमें वह मन ही मन डूबता–उतराता रहता है स्त्री–पुरुष के सम्बन्धों की यह स्थितिऔर पूरी कचोट भरी वेदना के साथ आज की रचनाओं में आकार पा रही है। जीवन की विसंगतियों से उपजा यह पीड़ा बोध न केवल मोहन राकेश की रचनाओं का विषय है वरन् समूची पीढ़ी द्वारा चित्रित कथा साहित्य का अनिवार्य सोपान भी हैं।आचार्य तुलसी ने लिखा है कि –''लेखनी और वाणी ये दो बड़ी शक्तियां हैं जिनके द्वारा व्यक्ति–लोक जीवन में प्रवेश करता है, उस पर प्रभाव छोड़ता है और उस युग की सभ्यता एवं संस्कृति को अपने अस्तित्व से अनुप्राणित कर देता है। लेखनी और वाणी दोनों बहने हैं, दोनों का अपने–अपने स्थान पर पूरा मूल्य है क्योंकि उसके कंधे पर सवार होकर ही मनुष्य का चिंतन सम्पादित होता है।'' और ये दोनों बहने डॉ. वीरेन्द्र यादव जैसे योग्य पात्र के साथ संयुक्त होकर कृत–कृत्य हैं।

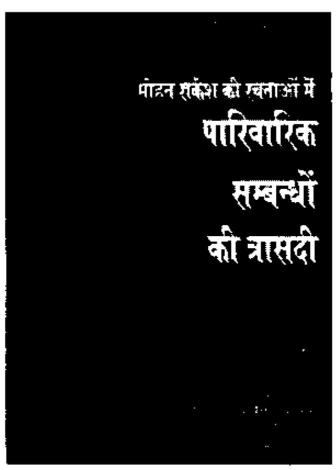

लेखक का मानना है कि मोहन राकेश समकालीन कथाकारों में अन्यतम हैं। आपने हिन्दी कथा को आडम्बर, कृत्रिमता, सस्ती भावुकता और जुमले से अलग करके एक आत्मीय रिश्ता प्रदान किया। यही कारण है कि मोहन राकेश के कथा साहित्य में संवेदना की आधुनिकता है, अनुभव का खरापन है और सम्प्रेषण का यथार्थ आधार है। मोहन राकेश की रचनाएं विशेषकर कहानी, उपन्यास और नाटकों में अधिकतर पारिवारिक विघटन के बीच आर्थिक सम्बन्धों की त्रासदी के अनेक कारण स्पष्ट तौर पर देखे जा सकते हैं, जिनमें व्यक्तिगत सम्बन्धों का अहम ,आर्थिक कारण, मानवीयता एवं मूल्यों के पतन के कारण, समकालीन भ्रष्टाचार के साथ विभाजन की त्रासदी के कारण भी पारिवारिक सम्बन्धों में खटास उत्पन्न हो रही है। पारिवारिक विघटन की प्रमुख रचनाओं में एक और जिन्दगी, गुंझल, सुहागिनें (कहानी) अंधेरे बंद कमरे, न आने वाला कल, अन्तराल (उपन्यास) तथा नाटकों में आधे–अधूरे, आषाढ़ का एक दिन एवं लहरों के राजहंस में विशेष रूप से देखने को मिलता है। यहाँ पुस्तक के अवलोकन से मैं यह कहना चाहूँगी कि वर्तमान युग जीवन में टूटते मानवीय सम्बन्धों और मूल्यों के फलस्वरूप व्यक्ति के आन्तरिक विघटन के सूक्ष्मातिसूक्ष्म पक्षों को भी स्वर देने का प्रयत्न किया गया है जो वर्तमान परिवेश की विसंगतियों से उद्भूत युग सत्य है।

डॉ. वीरेन्द्र यादव प्रस्तुत पुस्तक में यह स्पष्ट करते हैं कि मोहन राकेश के उपन्यास और कहानी का सफर सचमुच डिप्रेसिंग है, क्योंकि लेखक जो प्रश्न उठाता है, उसका उत्तर दुनिया से नहीं अपने आपसे मांगता है और इस मुकाम पर हम अपने ही सामने निर्वस्त्र होने को विवश होते हैं, वरना उन समस्याओं का अवसर मिल ही नहीं सकता है। मानवीय सम्बन्धों को एक नयी दृष्टि और हृदय की अटल गहराई को कुरेदने वाले राकेश जी ने जिंदगी भर मानवीय सम्बन्धो पर विचार किया क्योंकि उनकी मान्यताएं पुरानी लीक छोड़कर समाज को देखने की एक नवीन दृष्टि रखती थी। प्रस्तुत पुस्तक शोधार्थियों, अध्येयताओं एवं प्राध्यापकों के लिये उपयोगी होगी ऐसा मेरा मानना है।

✍ नेहरू सेन्टर, 8 साउथ आउडली स्ट्रीट, लंदन–डब्ल्यु 1 के 1 एच. एफ.

पोथी की परख / समीक्षायन

भारतीय मुसलमान : मिथक एक यथार्थ

✍ डॉ. चन्द्रमा सिंह

पुस्तक	:	भारतीय मुसलमान : दशा और दिशा
लेखक	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
प्रकाशक	:	राधा पब्लिकेशन 4231/1 अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली 110002
मूल्य	:	रु. 750.00

शैक्षणिक गतिविधियों से जुड़े युवा साहित्यकार डॉ वीरेन्द्र सिंह यादव ने साहित्यिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा पर्यावरणीय समस्यायों से सम्बन्धित गतिविधियों को केन्द्र में रखकर अपना सृजन किया है। इसके साथ ही आपने दलित विमर्श के क्षेत्र में 'दलित विकासवाद' की अवधारणा को स्थापित कर उनके सामाजिक, आर्थिक विकास का मार्ग भी प्रशस्त किया है। आपके एक हजार से अधिक लेखों का प्रकाशन राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर की स्तरीय पत्रिकाओं में हो चुका है। आपमें प्रज्ञा एवं प्रतिभा का अद्भुत सामंजस्य है। दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, राष्ट्रभाशा हिन्दी एवं पर्यावरण में अनेक पुस्तकों की रचना कर चुके डॉ. वीरेन्द्र ने विश्व की ज्वलंत समस्या पर्यावरण को शोधपरक ढंग से प्रस्तुत किया है। राष्ट्रभाषा महासंघ मुम्बई, राजमहल चौक कवर्धा द्वारा स्व. श्री हरि ठाकुर स्मृति पुरस्कार, बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर फेलोशिप सम्मान 2006, साहित्य वारिधि मानदोपाधि एवं निराला सम्मान 2008 सहित अनेक सम्मानों से उन्हें अलंकृत किया जा चुका है। वर्तमान में आप भारतीय उच्च शिक्षा अध्ययन संस्थान राष्ट्रपति निवास, शिमला (हि. प्र.) में नई आर्थिक नीति एवं दलितों के समक्ष चुनौतियाँ (2008–11) विषय पर तीन वर्ष के लिए एसोसियेट हैं।

समकालीन समाज विज्ञान एवं साहित्यिक परिदृश्य में डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव का नाम किसी औपचारिक परिचय का मोहताज नहीं हैं। हालाँकि डॉ. वीरेन्द्र यादव एक सामाजिक चिंतक एवं गद्यकार के रूप में जाने जाते हैं लेकिन आपके रचनात्मक क्रियाकलाप को किसी विधा विशेष की हदबंदी में नहीं बाँधा जा सकता है। आपने सामाजिक समस्याओं एवं समसामयिक समय के अनेक ज्वलंत मुद्दों को अपनी लेखनी का मुख्य विषय बनाया है। समय एवं समाज की नब्ज को बारीक से देखने वाले डॉ. वीरेन्द्र यादव ने एक ऐसा रचना संसार निर्मित किया है जिसमें तत्कालीन युग का पूरा परिवेश ही प्रतिबिम्बित हो उठा है।

इसी संदर्भ में डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव की सम्पादित पुस्तक भारतीय मुसलमान : दशा और दिशा को लिया जा सकता है। विश्व के सबसे बड़ा लोकतंत्र का पहरी भारत अपनी विशेषताओं के कारण विश्व का सिरमौर माना जाता था वहीं यहाँ वर्तमान समय में साम्प्रदायिक सदभाव एवं भाईचारे की भावना एवं विचारधारा को लेकर आपसी खेमेबन्दी हो गयी है। लेखक का प्रस्तुत पुस्तक के माध्यम से यही संदेश है कि अपनी स्वार्थ सिद्ध के लिये लोग आपस में ऊँचनीच का बंटवारा कर देते है जबकि ईश्वर ने सभी प्राणियों को श्रेष्ठ एवं समान बनाया है। केवल मानव ने इसमें भेद इसलिये किये हैं कि वह उनसे श्रेष्ठ एवं आगे बढ़ जाएं।

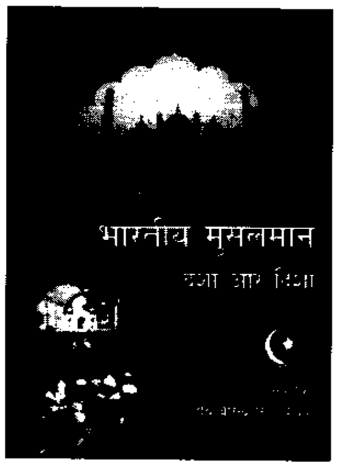

भारतीय मुसलमान : दशा और दिशा नामक इस सम्पादित पुस्तक में 63 विद्वानों के लेखों को समाहित किया गया है जिसमें भारत के हर प्रान्त एवं शिक्षा जगत के विभिन्न क्षेत्रों सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक क्षेत्रों से जुड़े विषय विशेषज्ञों ने अपने विचारों को निष्पक्ष भाव से रखा है। 363 पृष्ठ की इस पुस्तक मे सम्पादक ने इस आलेखों / शोधपत्रों को 8 भागों में वृहत्तर मुस्लिम समाज : पुराने प्रश्न, नये परिप्रेक्ष्य, राष्ट्रवाद, साम्प्रदायिकता एवं भारत विभाजन, मुस्लिम नारी : कल, आज और कल, साहित्यिक परिदृश्य में मुसलमान, संगीत, कला एवं शिक्षा में मुस्लिम समाज का योगदान, मुस्लिम संस्कृति का हिन्दू संस्कृति पर प्रभाव, 21वीं सदी में मुस्लिम नेतृत्व की सीमाएं और सम्भावनायें, मुसलमान और आधुनिक दलित चिंतन नामक उपखण्डों में बाँटकर पाठकों के लिये थोड़ा आसान कार्य कर दिया है : लेखक ने अपने सम्पादकीय में स्पष्ट रूप से कहा कि इस्लाम विश्व के किसी भी धर्म की अपेक्षा अपने अन्दर अनेक विशेषतायें एवं मानवतावाद की अवधारणा को लेकर आया है और जितना कम समय में अत्यधिक सुदीर्घकालीन प्रचार और प्रसार भारत में इस्लाम ने किया उतना कोई अन्य आक्रमण करने वाली (आक्रान्ता–जाति) या संस्कृति ने नहीं किया, यहाँ तक कि अठारहवीं–उन्नीसवीं शताब्दी में आने वाली पश्चिमी–पुर्तगाली, फ्रांसीसी, ब्रिट्रिश जातियाँ और ईसाई धर्म संस्कृति भी उतना प्रचार–प्रसार नहीं कर पायीं लेकिन उन साम्राज्यवादी शक्तियों ने हमारे समाज में भारतीयों के बीच फूट डालने के लिये प्रत्येक अवसर का लाभ उठाते हुये उन्हें दो परस्पर शत्रु खेमों में विभाजित कर दिया। पश्चिमी शक्तियों (अंग्रेजों) की इस कुटिल पृथकतावादी मनोवृत्ति से जो लोग आकर्षित हुए, वे मातृभूमि का विभाजन करके अपने लिये एक अन्य देश बनाने में सफल हो गये तथा इस समुदाय के जिन लोगों ने अपने जन्म स्थान में रहने का निर्णय किया वे ही मुस्लिम अल्पसंख्यक कहलाये।

पुस्तक के लगभग सभी लेखकों ने मुस्लिम समाज के प्रति भेदभाव एवं उनके बारे में फैले भ्रमों, गलतफहमियों, पूर्वाग्रहों एवं राष्ट्र के प्रति प्रेम को विश्लेषित किया है। यह बात सच है कि वैश्विक परिप्रेक्ष्य में यदि हम आज देखें तो विश्व का शायद ही ऐसा कोई कोना न होगा जहाँ मुस्लिम या इस्लाम धर्म के अनुयायी न रहते हों।

कुल मिलाकर प्रस्तुत पुस्तक में भारतीय मुसलमानों के ऐतिहासिक एवं सामाजिक कार्यों एवं सरोकारों को गहराई से विवेचित किया गया है, और उनके द्वारा किये गये सकारात्मक सहयोग को हादसों एवं घटनाओं के द्वारा लेखकों ने प्रमाणिक अमली जामा पहनाया है। प्रस्तुत पुस्तक शोध छात्रों, बुद्धिजीवियों एवं मुस्लिम समाज के बारे में जिज्ञासु विद्वानों के लिये मील का पत्थर साबित होगी ऐसा मैं व्यक्तिगत रूप से मानता हूँ।

✍ नयकागाँव जी.टी. रोड, सासाराम (बिहार)

पोथी की परख/समीक्षायन

हिन्दी कथा साहित्य में पारिवारिक विघटन

✍ डॉ. कुमारेन्द्र सिंह सेंगर

पुस्तक	:	हिन्दी कथा साहित्य में पारिवारिक विघटन
लेखक	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
प्रकाशक	:	नमन पब्लिकेशन 4231/1 अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली 110002
मूल्य	:	रु. 450.00

शैक्षणिक गतिविधियों से जुड़े युवा साहित्यकार डॉ वीरेन्द्र सिंह यादव ने साहित्यिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा पर्यावरणीय समस्यायों से सम्बन्धित गतिविधियों को केन्द्र में रखकर अपना सृजन किया है। इसके साथ ही आपने दलित विमर्श के क्षेत्र में 'दलित विकासवाद' की अवधारणा को स्थापित कर उनके सामाजिक, आर्थिक विकास का मार्ग भी प्रशस्त किया है। आपके एक हजार से अधिक लेखों का प्रकाशन राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर की स्तरीय पत्रिकाओं में हो चुका है। आपमें प्रज्ञा एवं प्रतिभा का अद्भुत सामंजस्य है। दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, राष्ट्रभाषा हिन्दी एवं पर्यावरण में अनेक पुस्तकों की रचना कर चुके डॉ. वीरेन्द्र ने विश्व की ज्वलंत समस्या पर्यावरण को शोधपरक ढंग से प्रस्तुत किया है। राष्ट्रभाषा महासंघ मुम्बई, राजमहल चौक कवर्धा द्वारा स्व. श्री हरि ठाकुर स्मृति पुरस्कार, बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर फेलोशिप सम्मान 2006, साहित्य वारिधि मानदोपाधि एवं निराला सम्मान 2008 सहित अनेक सम्मानों से उन्हें अलंकृत किया जा चुका है। वर्तमान में आप भारतीय उच्च शिक्षा अध्ययन संस्थान राष्ट्रपति निवास, शिमला (हि. प्र.) में नई आर्थिक नीति एवं दलितों के समक्ष चुनौतियाँ (2008–11) विषय पर तीन वर्ष के लिए एसोसियेट हैं।

एक ऐसा व्यक्तित्व जो न किसी तरह का दिखावा करता है और न ही अपने विचारों को किसी पर आरोपित करता है वह केवल संघर्ष–स्नात चेहरा वाला व्यक्तित्व जिसने अपने श्रम–बिन्दुओं से अपनी जिजीविषा को वह विशिष्ट पहचान दी है जो किसी विरले को ही प्राप्त होती है। वह व्यक्तित्व है डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव का जो डी. वी. महाविद्यालय में हिन्दी के वरिष्ठ प्रवक्ता हैं और समकालीन साहित्यिक, सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं पर अपनी पैनी एवं सक्रिय दृष्टि रखते हैं और वर्तमान में तीस से अधिक कृतियों के सृजनकर्ता हैं।

डॉ वीरेन्द्र सिंह यादव की नवीन पुस्तक हिन्दी कथा साहिन्य में पारिवारिक विघटन, चौदह अध्यायों में विभाजित इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी. फिल. उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबन्ध का परिष्कृत भाग है। युवा विद्वान लेखक डॉ. वीरेन्द्र यादव अपनी भूमिका में इस पुस्तक के बारे में कहते हैं कि यह पुस्तक मेरे प्रारम्भिक चिंतन का ब्लू प्रिन्ट मात्र ही है अर्थात् यह पुस्तक मेरे व्यवस्थित दृष्टिकोण या दृष्टि निर्माण की प्रक्रिया में आरम्भिक कड़ी मानी जा सकती है। कुल मिलाकर यह कहा जाए तो उचित ही होगा कि अभी इसका विस्तार एवं परिमार्जन होना शेष है। यह लेखक की व्यक्तिगत सोच ही कही जायेगी क्योंकि यह उनकी पहली पुस्तक है और मेरा मानना है कि इस पहली पुस्तक में ही लेखक का इतना गम्भीर चिंतन झलकता है कि जिसमें सम्पूर्ण सामाजिक यथार्थ का युगबोध परिलक्षित होता है।

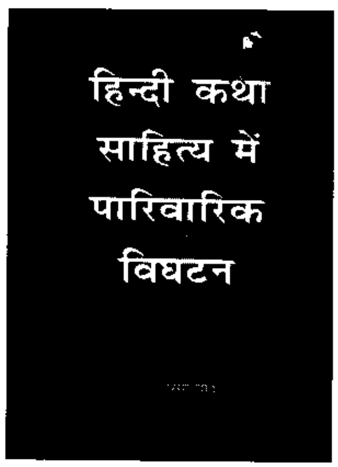

युवा विद्वान लेखक का मानना है कि वर्तमान संक्रमणशील समाज में मूल्य विघटन की प्रक्रिया से सम्बन्धों में बिखराव आ रहा है और आज सम्बन्धों को किसी ठोस धरातल पर स्थापित करना कठिन होता जा रहा है। आज सभी सम्बन्ध एक दबाव की नियति से गुजर रहे है तथा मानव मन आस्था, विश्वास एवं भावनात्मक गहराई के अभाव में कमजोर होता जा रहा है। प्रेम सम्बन्ध कुंठाओं के शिकार हो रहे हैं। दाम्पत्य सम्बन्धों में मुक्त भोग एवं अहम का विस्फोट हो रहा है तथा अन्य पारिवारिक सम्बन्ध आर्थिक अभावों एवं भावनात्मक लगाव की कमी के कारण कृत्रिम और मशीनी होते जा रहे हैं। उच्चतर मूल्यों में आस्था पारिवारिक सम्बन्धों को विकृत कर रही है। मैत्री सम्बन्ध गहन, संवेदना, पारस्परिक समझ और सहानुभूति के अभाव में समय काटने या सामाजिक औपचारिकताएं निभाने तक सीमित हो गये हैं। स्त्री –पुरुष के सम्बन्धों की यह स्थिति और परिणति पूरी कचोट भरी वेदना के साथ आज के कथा साहित्य में आकार पा रही है। पारिवारिक जीवन की विसंगतियों से उपजा यह पीड़ा बोध न केवल कथा साहित्य का ही विषय है वरन यह समूची पीढ़ी द्वारा भोगा जा रहा है यथार्थ का अनिवार्य सोपान भी है।

विघटन के इस स्वरूप को डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव ने अपनी पुस्तक में विभिन्न रूपों में रेखांकित किया है जिनमें अकेलापन, परम्परागत मान्यताओं और नैतिक बोध का पतन, आधुनिक नारी के परिवर्तित जीवन के कारण ,वर्तमान में बदलते स्त्री पुरुष सम्बन्धों के कारण, आर्थिक दबाव एवं मूल्यों के पतन, पीढ़ी संघर्ष, अस्तित्व रक्षा एवं उत्कट जिजीविषा के साथ–साथ ऐतिहासिक ,सामाजिक, मार्क्सवादी, राजनीतिक घटनाओं के साथ व्यक्तिपरक व्यक्तिवादी स्वरूप के कारण भी पारिवारिक विघटन के स्वरूपों को विश्लेषित एवं मूल्यांकित करने का सफल प्रयास प्रस्तुत पुस्तक के माध्यम से किया गया है। लेखक का मानना है कि वर्तमान समय में आज मानवीय सम्बन्ध अपनी विस्फोटक स्थिति में आ गये हैं और नये परिवर्तनों की आहट के लिए हमें तैयार रहने के लिए सजग रहना होगा। प्रस्तुत पुस्तक समकालीन समस्यायों पर नई दृष्टि रखने वाले पाठकों के लिये महत्वपूर्ण होगी।

✍ सम्पादक 'स्पंदन' एवं प्रवक्ता हिन्दी विभाग, गाँधी महाविद्यालय, उरई (जालौन) उ. प्र.

पोथी की परख / समीक्षायन

बदलते परिदृश्य में नई सहस्त्राब्दी का भारत

✍ डॉ. अजीत सिंह राही

पुस्तक	:	बदलते परिदृश्य में नई सहस्त्राब्दी का भारत
लेखक	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
प्रकाशक	:	राधा पब्लिकेशन 4231/1 अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली 110002
मूल्य	:	रु. 750.00

शैक्षणिक गतिविधियों से जुड़े युवा साहित्यकार डॉ वीरेन्द्र सिंह यादव ने साहित्यिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा पर्यावरणीय समस्यायों से सम्बन्धित गतिविधियों को केन्द्र में रखकर अपना सृजन किया है। इसके साथ ही आपने दलित विमर्श के क्षेत्र में 'दलित विकासवाद' की अवधारणा को स्थापित कर उनके सामाजिक, आर्थिक विकास का मार्ग भी प्रशस्त किया है। आपके एक हजार से अधिक लेखों का प्रकाशन राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर की स्तरीय पत्रिकाओं में हो चुका है। आपमें प्रज्ञा एवं प्रतिभा का अदभुत सामंजस्य है। दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, राष्ट्रभाषा हिन्दी एवं पर्यावरण में अनेक पुस्तकों की रचना कर चुके डॉ. वीरेन्द्र ने विश्व की ज्वलंत समस्या पर्यावरण को शोधपरक ढंग से प्रस्तुत किया है। राष्ट्रभाषा महासंघ मुम्बई, राजमहल चौक कवर्धा द्वारा स्व. श्री हरि ठाकुर स्मृति पुरस्कार, बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर फेलोशिप सम्मान 2006, साहित्य वारिधि मानदोपाधि एवं निराला सम्मान 2008 सहित अनेक सम्मानों से उन्हें अलंकृत किया जा चुका है। वर्तमान में आप भारतीय उच्च शिक्षा अध्ययन संस्थान राष्ट्रपति निवास, शिमला (हि. प्र.) में नई आर्थिक नीति एवं दलितों के समक्ष चुनौतियाँ (2008–11) विषय पर तीन वर्ष के लिए एसोसियेट हैं।

21वीं सदी का आगमन कई मायनों में अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है। मानव–जीवन के विविध पक्षों पर, उसकी सोच पर, जीवन–शैली पर 21 वीं सदी का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा गया है। समाज का निर्माण व्यक्तियों की आपसी सामूहिकता और सह–सम्बन्ध से होता है। स्वाभाविक है कि व्यक्तियों के ऊपर होते प्रभावों और परिवर्तनों का असर समाज पर, देश पर भी होना था। 'बदलते परिदृश्य में नई सहस्त्राब्दी का भारत' कैसा होगा, उसके विचार–बिन्दु क्या होंगे, उसकी परिवर्तन यात्रा किन–किन पड़ावों से होकर गुजरेगी... आदि–आदि मुद्दों को डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव ने अपने सम्पादन में सभी के सामने रखा है।

21वीं सदी के भारत के बदलते स्वरूप को उन्होंने किसी एक बँधे–बँधाये अथवा विशेष विषय के आधार पर रेखांकित नहीं किया है वरन् इसको एक प्रकार का विस्तार देते दिखे हैं। आतंकवाद, नक्सलवाद, मानवाधिकार, आपदा प्रबन्धन एवं ग्लोबल वॉर्मिंग, आन्तरिक सुरक्षा जैसे राष्ट्रीय समस्यागत मुद्दों को आधार बनाकर प्रस्तुत किया है तो विज्ञान और प्रौद्योगिकी, पंचायती राजव्यवस्था, संचार माध्यम जैसी विकासपरक स्थितियों को भी सामने रखा है। इन विषयों और ज्वलन्त बिन्दुओं के अतिरिक्त डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव साहित्य, संगीत, स्त्री–चिन्तन, पारिवारिक विघटन जैसे बिन्दुओं पर अपनी पैनी सम्पादकीय दृष्टि बिखेरते दिखते हैं।

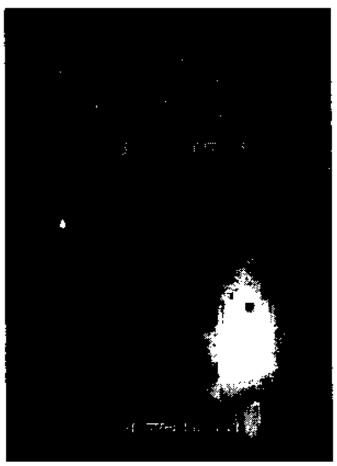

कुल 73 लेखों के विशाल संग्रह की शुरुआत जीवन के लिए महत्वपूर्ण स्वीकारे गये चिकित्सा क्षेत्र से करते हुए पुस्तक का समापन संचार माध्यमों की कल्याणकारी योजनाओं पर होता है। यह गहन सम्पादकीय दृष्टि का ही परिचायक है कि लेख चयन के अतिरिक्त उनके संयोजन पर भी विशेष ध्यान दिया गया है। चिकित्सा विज्ञान का परिवर्तित स्वरूप और इसमें संगीत तथा मंत्र विज्ञान की सार्थकता को सिद्ध करती स्थितियों का समावेश है तो मानव की जीवन–शैली में लोक साहित्य, मंत्रों एवं वैदिक सूत्रों की महत्ता की सारगर्भित जानकारी है। 21वीं सदी की आधुनिक स्थिति में भी लोक की स्वीकार्यता, वैदिक संस्कृति की महत्ता भारतीय संस्कृति के उच्चीकृत होने के संकेत हैं।

साहित्य के द्वारा डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव ने शिक्षा को, स्त्री–चिन्तन को सहेजा है। वे उच्च शिक्षा में नीति की गुणवत्ता का प्रश्न खड़ा करते हुए इसके मुद्दे और विकल्पों को तलाशते दिखते हैं। शिक्षा क्षेत्र में समस्याएँ 21वीं सदी की सबसे बड़ी समस्या है, इससे निपटने के लिए सरकारी तन्त्र क्रियाशील है तो गैर–सरकारी तन्त्र भी अपनी भूमिका का निर्वाह कर रहा है। इसी विषय के आधार पर नैतिक मूल्यों के अध्ययन, शिक्षा में मानवाधिकार, यौन शिक्षा की आवश्यकता आदि पर भी महत्वपूर्ण विचारों का संकलन कर इनकी उपादेयता को सिद्ध करने का प्रयास किया गया दिखता है।

21वीं सदी मात्र आधुनिकता, स्वच्छन्दता, भौतिकवाद, उच्छृंखलता आदि से भरी हुई ही नहीं है। इस कालखण्ड में भी भारती संस्कृति का पोषण–संवर्द्धन लगातार किया जा रहा है। बुन्देली लोक–साहित्य, लोक–कला, लोक–गीत, मनुस्मृति और याज्ञवल्क्यस्मृति की प्रासंगिकता आदि जैसे विशयों का संकलन सम्पादक की उस विस्तृत और सूक्ष्म दृष्टि को दर्शाता है जो आधुनिकता का विस्तार देखता तथा सहेजता है तो लोक की सूक्ष्मता को भी अंगीकार करता है। विस्तृत सोच के साथ लघु का समावेश और संरक्षण इस पुस्तक की विशालतम उपलब्धि है जिसे कम से कम सहेजा तो जा ही सकता है।

✍ पो. बॉ. 119, हानउड 2680, एन.एस.डब्ल्यु., आस्ट्रेलिया

नई सहस्त्राब्दी का स्त्री–विमर्श : मिथक एवं यथार्थ

✍ डॉ. हेमा देवरानी

पुस्तक	:	नई सहस्त्राब्दी का स्त्री–विमर्श : साहित्यिक अवधारणा एवं यथार्थ
लेखक	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
प्रकाशक	:	राधा पब्लिकेशन 4231/1 अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली 110002
मूल्य	:	रु. 450.00

शैक्षणिक गतिविधियों से जुड़े युवा साहित्यकार डॉ वीरेन्द्र सिंह यादव ने साहित्यिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा पर्यावरणीय समस्यायों से सम्बन्धित गतिविधियों को केन्द्र में रखकर अपना सृजन किया है। इसके साथ ही आपने दलित विमर्श के क्षेत्र में 'दलित विकासवाद' की अवधारणा को स्थापित कर उनके सामाजिक, आर्थिक विकास का मार्ग भी प्रशस्त किया है। आपके एक हजार से अधिक लेखों का प्रकाशन राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर की स्तरीय पत्रिकाओं में हो चुका है। आपमें प्रज्ञा एवं प्रतिभा का अद्भुत सामंजस्य है। दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, राष्ट्रभाशा हिन्दी एवं पर्यावरण में अनेक पुस्तकों की रचना कर चुके डॉ. वीरेन्द्र ने विश्व की ज्वलंत समस्या पर्यावरण को शोधपरक ढंग से प्रस्तुत किया है। राष्ट्रभाषा महासंघ मुम्बई, राजमहल चौक कवर्धा द्वारा स्व. श्री हरि ठाकुर स्मृति पुरस्कार, बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर फेलोशिप सम्मान 2006, साहित्य वारिधि मानदोपाधि एवं निराला सम्मान 2008 सहित अनेक सम्मानों से उन्हें अलंकृत किया जा चुका है। वर्तमान में आप भारतीय उच्च शिक्षा अध्ययन संस्थान राष्ट्रपति निवास, शिमला (हि. प्र.) में नई आर्थिक नीति एवं दलितों के समक्ष चुनौतियाँ (2008–11) विषय पर तीन वर्ष के लिए एसोसियेट हैं।

स्त्री मुक्ति आन्दोलन को आगे बढ़ाने वालीं तथा नारी जीवन को जीवन जीने का नया स्वर प्रदान करने वाली प्रगतिशील नारियों को समर्पित पुस्तक 'नई सहस्त्राब्दी का स्त्री–विमर्श : साहित्यिक अवधारणा एवं यथार्थ' स्त्री–लेखन से जुड़े और स्त्री–चिन्तन से सम्बन्धित विविध पहलुओं पर विस्तार से चर्चा के नये आयाम स्थापित करता है। डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव के कुशल सम्पादन में कुल 38 लेखों में स्त्री–विमर्श के सकारात्मक पहलुओं पर शोधपरक दृष्टि आरोपित कर उसका साहित्यिक मूल्यांकन किया गया है। स्त्री लेखन और उसकी अस्मिता, स्त्री लेखन के चिन्तनपरक सरोकारों के अतिरिक्त कृतित्व के आधार पर नारी चेतना के विविध आयामों को विस्तृत दृष्टिकोण प्रदान किया गया है।

स्त्री–विमर्श के नाम पर स्त्री के स्वतन्त्र दृष्टिकोण को उभारने का प्रयास इस पुस्तक के द्वारा होता आसानी से दिखता है। नारी चेतना का स्वरूप हिन्दी साहित्य के आविर्भाव से अद्यतन उपस्थित रहा है और नारी का संघर्ष भी इसी समय के साथ–साथ
चलता रहा है। स्वामी विवेकानन्द का कथन कि स्त्रियों की अवस्था में सुधार न होने तक
विश्व के कल्याण का कोई मार्ग नहीं। किसी भी पक्षी का एक पंख के सहारे उड़ना
नितान्त असम्भव है, समाज में स्त्री को पुरुष के बराबर का स्थान प्रदान करता है। इस
बराबरी के स्थान का पर्याप्त 'स्पेस' डॉ0 वीरेन्द्र निर्मित करते नजर आये हैं।
महिलाओं की भूमिका को साहित्य के विविध प्रतिरूपों में दर्शाते हुए
उसके शोषण–संघर्ष को तो रेखांकित किया ही है साथ ही स्त्री की विकासपरक मनोवृत्ति
का भी चित्रण किया है। साहित्यिक धरातल पर स्त्री–विमर्श के नाम पर कुछ कालजयी
रचनाओं और रचनाकारों के द्वारा स्त्री–चेतना की सशक्तता को भी स्थान
प्राप्त हुआ है। मीराबाई को भारतीय स्त्री–विमर्श संदर्भ में अग्रणी स्थान प्राप्त है
जिसने तत्कालीन अभिजात्य वर्ग की, पुरुषवाद की सामंती सोच से सीधे–सीधे
विद्रोह कर संघर्ष किया था वहीं दूसरी ओर स्वतन्त्रता के आसपास की महिला कथाकारों
में कृष्णा सोबती का उग्र बुर्जुआ लेखन स्त्री की स्वतन्त्र छवि का पोषण करता भरतीय
संदर्भों में अपने आप में क्रान्तिकारी कदम था। स्त्री–विमर्श के ऐसे स्तम्भों को प्रमुखता
के साथ स्थान देना सम्पादक का स्त्री–विमर्श और स्त्री–चिन्तन के प्रति
सकारात्मकता को ही सिद्ध करता है।

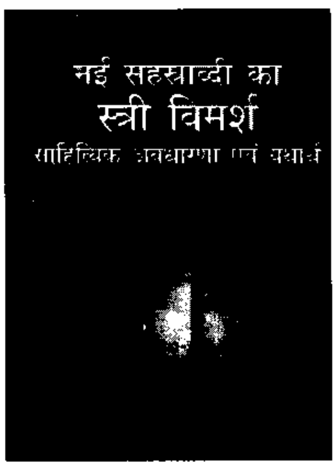

स्त्री को हाशिए पर हमेशा से रखा जाता रहा है और उसकी इस स्थिति को साहित्य में स्थान भी प्राप्त होता रहा है किन्तु 21वीं सदी के साहित्य जगत की विस्मयकारी घटना हाशिए की औरत सेक्सवर्कर की आत्मकथा का आना रहा है। इससे पहले अपने–अपने क्षेत्र के स्वनामधन्य लोगों को आत्मकथा का लेखन अथवा स्त्रियों द्वारा आत्मकथा लिखना उनके स्वतन्त्र चिन्तन को परिभाषित करता रहा है किन्तु साहित्य के तथा समाज के हाशिये पर खड़ी एक स्त्री की आत्मकथा को तथा एक अन्य दलित स्त्री के शोषण–संघर्ष को इस पुस्तक में स्थान मिलना स्त्री के प्रति सकारात्मक तथा विस्तारपरक सोच का प्रतीक है।

स्त्री चेतना के साहित्यिक स्वरूप का विस्तृत फलक होने के बाद भी स्त्री–विमर्श के सम्बन्धों में नया व्याकरण तलाशा जा रहा है। स्त्री–विमर्श की अस्मिता के यक्ष प्रश्नों से दो–चार होते हुए, इस पुस्तक की पठन यात्रा से गुजरते हुए बीच–बीच में कहीं एहसास होता है कि स्त्री को अब तोड़ने ही होंगे मठ और गढ़ सब।

✍ 55, ए. आर. जी. अलवर (राजस्थान)

पोथी की परख / समीक्षायन

इक्कीसवीं सदी का भारत – मुद्दे, विकल्प और नीतियाँ

डॉ. परमात्मा शरण गुप्ता

पुस्तक	:	इक्कीसवीं सदी का भारत – मुद्दे, विकल्प और नीतियाँ
लेखक	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
प्रकाशक	:	ओमेगा पब्लिकेशन 4231/1 अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली 110002
मूल्य	:	रु. 995.00

शैक्षणिक गतिविधियों से जुड़े युवा साहित्यकार डॉ वीरेन्द्र सिंह यादव ने साहित्यिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा पर्यावरणीय समस्यायों से सम्बन्धित गतिविधियों को केन्द्र में रखकर अपना सृजन किया है। इसके साथ ही आपने दलित विमर्श के क्षेत्र में 'दलित विकासवाद' की अवधारणा को स्थापित कर उनके सामाजिक, आर्थिक विकास का मार्ग भी प्रशस्त किया है। आपके एक हजार से अधिक लेखों का प्रकाशन राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर की स्तरीय पत्रिकाओं में हो चुका है। आपमें प्रज्ञा एवं प्रतिभा का अद्भुत सामंजस्य है। दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, राष्ट्रभाशा हिन्दी एवं पर्यावरण में अनेक पुस्तकों की रचना कर चुके डॉ. वीरेन्द्र ने विश्व की ज्वलंत समस्या पर्यावरण को शोधपरक ढंग से प्रस्तुत किया है। राष्ट्रभाषा महासंघ मुम्बई, राजमहल चौक कवर्धा द्वारा स्व. श्री हरि ठाकुर स्मृति पुरस्कार, बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर फेलोशिप सम्मान 2006, साहित्य वारिधि मानदोपाधि एवं निराला सम्मान 2008 सहित अनेक सम्मानों से उन्हें अलंकृत किया जा चुका है। वर्तमान में आप भारतीय उच्च शिक्षा अध्ययन संस्थान राष्ट्रपति निवास, शिमला (हि. प्र.) में नई आर्थिक नीति एवं दलितों के समक्ष चुनौतियाँ (2008–11) विषय पर तीन वर्ष के लिए एसोसियेट हैं।

प्रत्येक कालखण्ड अपने आपमें कुछ यक्ष प्रश्न समेटकर हम सभी के सामने आता है। ऐसा ही कुछ 21वीं सदी के द्वारा भी हो रहा है। नई सदी का आगमन एक ओर हम सभी को रोमांचित कर रहा है वहीं दूसरी ओर एक प्रकार की असमंजस वाली स्थिति में भी खड़ा करता है। तमाम सारे मुद्दे, विषय, समस्याएँ 21वीं सदी के आगमन पर उसके स्वागत में खड़े मिले और इसके विकल्प को, नीतियों को, समाधान को तलाशने का दायित्व 21वीं सदी हमको सौंपती दिखती है। अपने इसी दायित्वबोध को पूर्णता का एहसास कराने के लिए डॉ वीरेन्द्र सिंह यादव प्रयासरत् दिखाई देते हैं और 21वीं सदी में प्रमुखता से सामने आते विषयों पर सम्पादित दृष्टिकोण को समग्रता प्रदान करते हैं।

'इक्कीसवीं सदी का भारत – मुद्दे विकल्प और नीतियाँ' जैसे दुरुह और विस्तृत विषय पर संयमित ढंग से सम्पादकीय कलम चलाते हुए डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव ने 69 लेखों का संग्रह कर प्रत्येक विषय को टटोलने का सराहनीय प्रयास किया है। 21वीं सदी की आधुनिक सोच के प्रति अपनी सोच साथ ही विषय की गम्भीरता को विस्मृत नहीं और 21वीं सदी को एक परिस्थिति स्वीकार सामने आता है जो सतत विकास, भारतीय वैश्वीकरण, ग्रामीण विकास, कृषि के औद्योगिक और आर्थिक नीति के प्रति है। शिक्षा क्षेत्र से जुड़े विविध बिन्दुओं की समलैंगिकता, एड्स, वेश्यावृत्ति, हत्या, खाद्यान्न संकट जैसी शिक्षित एवं उनके निदानात्मक स्वरूप को सहेजा है।

समीक्ष्य पुस्तक की विशेषता यह भी कहीं भटकाव की स्थिति पैदा नहीं करता समस्यापरक मुद्दों पर सम्पादकीय उनका विश्लेषणात्मक स्वरूप प्रदर्शित होता चुनौतयाँ सामने दिखतीं हैं तो 21वीं सदी में आता है। भाषाई संकट, घरेलू हिंसा, नैतिक भारतीय कला आदि विषय जो सीधे–सीधे का सुखद प्रयास दिखाई देता है।

को आधुनिकता का अमली जामा पहनाने के किया गया है। देश को केन्द्रबिन्दु मानकर कर उसका समग्र चिन्तन पुस्तकाकार रूप में अर्थव्यवस्था और भूमण्डलीकरण, आधुनिकीकरण की चर्चा कर राष्ट्र की सकारात्मक सोच का परिदृश्य स्पष्ट किया विकासपरक अवस्था के साथ ही साम्प्रदायिकता, सूखा, बालश्रम, कन्याभ्रूण उन्नत समाज की समस्याओं को शमिल कर

कही जायेगी कि विषयों का व्यापक विस्तार है। राष्ट्रीय स्तर के विकासपरक और दृष्टिकोण थोपा हुआ सा प्रतीत न होकर नजर आता है। यही कारण है कि यदि भी चुनौतियों का गाँधीवादी समाधान नजर मूल्यों का ह्रास, सामाजिक परिवर्तन, आम आदमी से जुड़े होते हैं को भी सहेजने

यह बात और है कि 21वीं सदी में समाज की बहुत सी वर्जनाओं को तोड़ डाला गया है; सामाजिक परिवर्तन के दौर ने पारिवारिक विघटन की स्थिति को पैदा कर दिया है; विकेन्द्रीकरण के चलते समग्रतावादी संरचनाएँ टूट रहीं हैं; विकास के समकालीन मॉडल के साथ विकृतियाँ भी अपना 'रोल' निभा रहीं हैं पर इस पुस्तक के आलेख और सम्पादकीय दृष्टि दर्शाती है कि यक्षप्रश्नों का उत्तर देने के लिए प्रत्येक कालखण्ड में एक युधिष्ठिर पैदा होता है। मुद्दे विकल्प और नीतियों के रूप में सामने दिखते प्रयासों के बाद यक्षप्रश्नों के लिए हम समीक्ष्य पुस्तक के सम्पादक डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव से युधिष्ठिर की भूमिका जैसी आशा तो कर ही सकते हैं।

अर्थशास्त्र विभाग, डी. वी. (पी. जी.) कालेज, उरई (जालौन) उ. प्र.

रजिस्ट्रेशन ऑफ न्यूज पेपर्स रूल्स 1956 (सेन्ट्रल) के अन्तर्गत 'कृतिका' – हिन्दी अर्द्धवार्षिक के सम्बन्ध में स्वामित्व तथा अन्य विवरण विषयक जानकारी

घोषणा–पत्र

(फार्म–4)

1.	प्रकाशन स्थल	:	1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.
2.	प्रकाशन अवधि	:	अर्द्धवार्षिक
3.	मुद्रक का नाम नागरिकता पता	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव भारतीय 1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.
4.	प्रकाशक का नाम नागरिकता पता	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव भारतीय 1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.
5.	सम्पादक का नाम नागरिकता पता	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव भारतीय 1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.
6.	उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र के स्वामी हों, तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों।	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव 1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.

मैं डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव एतद्द्वारा घोषित करता हूँ कि उपरोक्त विवरण मेरी अधिकतम जानकारी तथा विश्वास के अनुसार दिये गये विवरण सत्य हैं।

दिनांक : जनवरी 2010

हस्ताक्षर
डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
प्रकाशक

मुद्रक : महक कम्प्यूटर्स एण्ड प्रिण्टर्स, 15, आजाद नगर, उरई (जालौन) ✦ सम्पादक : डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

कृतिका परिवार

मुख्य परामर्शदाता एवं मानद संरक्षक

- डॉ. आदित्य कुमार, एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, डी. वी. कालेज, उरई (जालौन) उ. प्र.
- डॉ. रामेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, रीडर एवं विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग, रामस्वरूप ग्रामोद्योग (पी. जी.) महाविद्यालय, पुखरायां, कानपुर देहात (उ. प्र.)
- डॉ. उमारतन यादव, रीडर, अर्थशास्त्र विभाग, बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झाँसी (उ. प्र.)

प्रमुख अप्रवासी सम्पादकीय सलाहकार समिति

- डॉ. भारतेन्दु श्रीवास्तव, 64 लांगसवर्ड, ड्राइव, स्कारवोरो ओनटारियो, कनाडा, एम.आई.वी. 3 ए. 3
- डॉ. अजीत सिंह राही, पो. बॉ. 119, हानउड 2680, एन.एस.डब्ल्यु., आस्ट्रेलिया
- डॉ. तिलकराज चोपड़ा, हाज़ल वेग 15ए 53340 मेकन्हाईम, जर्मनी
- डॉ. दिव्या माथुर, नेहरू सेन्टर, 8 साउथ आउडली स्ट्रीट, लंदन–डब्ल्यु 1 के 1 एच. एफ.
- श्री धनंजय कुमार, 7806 वेन्डीराइड लेन आनन्दले वर्जीनिया, यू.एस.ए. 22003

विशेष परामर्शदात्री समिति

- डॉ. वीणा श्रीवास्तव, एसोसिएट प्रोफेसर, संगीत विभाग, डी. वी. कालेज, उरई (जालौन)
- डॉ. आनन्द कुमार खरे, एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, डी. वी. कालेज, उरई (जालौन) उ. प्र.
- डॉ. ज्योति सिन्हा, प्रवक्ता, संगीत विभाग, महिला पी. जी. कॉलेज, जौनपुर (उ. प्र.)
- डॉ. पुनीत बिसारिया, वरिष्ठ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, नेहरू पी. जी. कालेज, ललितपुर

संपादकीय परामर्शदात्री समिति

- परमात्मा शरण गुप्ता, अर्थशास्त्र विभाग, डी. वी. कालेज, उरई (जालौन) 285001
- डॉ. अंजु दुआ जैमिनी, 839ए सेक्टर–21 सी. पार्ट–2, फरीदाबाद (हरियाणा)
- डॉ. हरिनिवास पाण्डेय, प्रवक्ता हिन्दी, जवाहर लाल नेहरू कालेज, पासीघाट (अ. प्र.)
- डॉ. शुभा जौहरी, रीडर इतिहास, विभाग–राष्ट्र संत तुकादोजी महाराज नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर (महाराष्ट्र)
- डॉ. गोवर्धन सिंह, अध्यक्ष, भोजपुरी विभाग, वीर कुंअर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)
- डॉ. हितेन्द्र जे मौर्या, प्रवक्ता, इतिहास विभाग, महाराजा सयाजी राव विश्वविद्यालय, बड़ोदरा (गुजरात)
- डॉ. प्रतिभा पटेल, गौरक्षणी, सासाराम (बिहार)
- डॉ. सतीश यादव, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, शिवाजी महाविद्यालय, रेणापुर (महाराष्ट्र)
- श्री राघवेन्द्र सिंह राजू, 7 जाफ़लिन रोड, लखनऊ (उ.प्र.)
- डॉ. प्रदीप कुमार दीक्षित, एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, अकबर कालेज, अकबरपुर (कानपुर देहात) उ. प्र.

- डॉ. आलोक रंजन, प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, मारवाड़ी कॉलेज, भागलपुर (बिहार)
- डॉ. आनन्द प्रकाश सिंह, प्रवक्ता समाजशास्त्र विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय गोपेश्वर, चमोली (उत्तराखंड)
- डॉ. आशा वर्मा, एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, डी. बी. एस. कालेज, कानपुर
- डॉ. सुशील कुमार शर्मा, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग (मेघालय)
- डॉ. सुनीता शर्मा, प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, गुरूनानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर (पंजाब)
- डॉ. एल. के. कुन्दन, रीडर, राजनीति विज्ञान विभाग, राँची कालेज, राँची
- डॉ. अखिलेश शुक्ल, सहायक प्राध्यापक, समाजशास्त्र विभाग, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म. प्र.)

मुख्य सम्पादक मण्डल

- डॉ. चन्द्रमा सिंह, नयकागाँव जी.टी. रोड, सासाराम (बिहार)
- डॉ. किशन यादव, रीडर, राजनीति विज्ञान विभाग, बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झाँसी (उ.प्र.)
- डॉ. सुरेश एफ कानडे, प्लाट नं. 48, साईं बंगला, प्रोफेसर कॉलोनी, विजडम हाईस्कूल के पीछे, रामेश्वर नगर, गंगापुर रोड, नासिक–422013 (महाराष्ट्र)
- डॉ. नीना शर्मा 'हरेश', व्याख्याता हिन्दी, आनन्द आर्ट्स कालेज, गुजरात (गुजरात)
- डॉ. कश्मीरी देवी, म. नं. 1651/21 हैफेड चौक, रोहतक (हरियाणा) 821115
- डॉ. राधा वर्मा, वर्मा निवास, गाहन, कमला नगर, संजौली, शिमला (हि. प्र.)
- डॉ. सुरेन्द्र कुमार सिंह, म. नं. नन्दन सदन II फ्लोर, शेरशाह रोड, शकरी गली, पो. आ. गुलजार बाग, पटना 800007 (बिहार)

विशेष सम्पादन सहयोग

- डॉ. अजय कुमार सिंह, रीडर, राजनीति विज्ञान विभाग, हंडिया (पी. जी.) कालेज, हंडिया
  मोबाइल : 09415638535 ✦ ई–मेल : drajaysingh@gmail.com
- रणविजय सिंह, शोध छात्र, राजनीति शास्त्र, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी (उ.प्र.)
  मोबाइल : 09919123763 ✦ ई–मेल : rajuranvijay@gmail.com

सम्पादक

- **डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव**

  1760, नया रामनगर, उरई जिला–जालौन 285001 (उ. प्र.) भारत

  सम्पर्क : 05162–252888, 09415924888, 09670732121

  Email : kritika_orai@rediffmail.com

  Email : virendra_kritika@rediffmail.com

  Email : dr.virendrayadav@gmail.com

  http://kritika-shodh.blogspot.com